हिन्दी पत्रकारिता

भाषिक एवं शैलीगत अध्ययन

(Hindi Journalism: Linguistic and Stylistic Studies)

कीर्ति शिखर

हिंदी पत्रकारिता : भाषिक एवं शैलीगत अध्ययन

हिन्दी पत्रकारिता : भाषिक एवं शैलीगत अध्ययन

(Hindi Journalism: Linguistic and Stylistic Studies)

कीर्ति शिखर

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-6258-6

प्रथम संस्करण : 2022

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिन्दी जिसके मानकीकृत रूप को मानक हिंदी कहा जाता है, विश्व की एक प्रमुख भाषा है एवं भारत की एक राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर भारत में दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। यह हिन्दुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिन्दी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है क्योंकि भारत के संविधान में किसी भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया है। एथनोलॉग के अनुसार हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। हिन्दी पत्रकारिता के आदि उन्नायक जातीय चेतना, युगबोध और अपने महत् दायित्व के प्रति पूर्ण सचेत थे। कदाचित् इसलिए विदेशी सरकार की दमन-नीति का उन्हें शिकार होना पड़ा था, उसके नृशंस व्यवहार की यातना झेलनी पड़ी थी। उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी गद्य-निर्माण की चेष्टा और हिन्दी-प्रचार आन्दोलन अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भयंकर कठिनाइयों का सामना करते हुए भी कितना तेज और पुष्ट था। इसका साक्ष्य 'भारतमित्र' (सन् 1878 ई, में) 'सार सुधानिधि' (सन् 1879 ई.) और 'उचित वक्ता' (सन् 1880 ई.) के जीर्ण पृष्ठों पर मुखर है।

भारत में प्रकाशित होने वाला पहला हिंदी भाषा का अखबार, उदंत मार्तंड (द राइजिंग सन), 30 मई 1826 को शुरू हुआ। इस दिन को 'हिंदी पत्रकारिता

दिवस' के रूप में मनाया जाता है, क्योंकि इसने हिंदी भाषा में पत्रकारिता की शुरुआत को चिह्नित किया था। वर्तमान में हिन्दी पत्रकारिता ने अंग्रेजी पत्रकारिता के दबदबे को खत्म कर दिया है। पहले देश-विदेश में अंग्रेजी पत्रकारिता का दबदबा था लेकिन आज हिन्दी भाषा का झण्डा चहुंदिश लहरा रहा है। 30 मई को 'हिन्दी पत्रकारिता दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

–लेखिका

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	पत्रकारिता का अर्थ	1
	पत्रकारिता की परिभाषा	2
	हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास	3
	तीसरा चरण : बीसवीं शताब्दी के प्रथम बीस वर्ष	8
	आधुनिक युग	10
	पत्रकारिता के सिद्धांत	13
	पत्रकारिता के क्षेत्र	16
	खेल पत्रकारिता	16
	साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रकारिता	17
	विकास पत्रकारिता	18
	ग्रामीण एवं कृषि पत्रकारिता	18
	विज्ञान पत्रकारिता	19
	समय के साथ बदली हिन्दी पत्रकारिता	19
2.	**हिन्दी भाषा का स्वरूप**	**22**
	हिन्दी भाषा का इतिहास	23
	हिन्दी भाषा के विविध रूप	27
	शैलियाँ	30
	हिन्दी एवं उर्दू	31
	मानकीकरण	32

महत्त्वपूर्ण कदम 33
भारतीय हिन्दी परिषद 34
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय 34
विश्व हिन्दी सम्मेलन 34
पूर्वी हिंदी 36
राजस्थानी हिंदी 37
पहाड़ी हिंदी 37
विश्व हिन्दी सम्मेलन 39
अब तक हुए सम्मेलन 41
हिन्दी आन्दोलन 45
सांस्कृतिक आवश्यकता एवं अपरिहार्यता 46
राजभाषा हिन्दी का वर्तमान स्वरूप 47
राजभाषा नियावली 57
3. भारतेन्दु युग में हिंदी पत्रकारिता 67
औपनिवेशिक राजनैतिक परिदृश्य 67
उन्नीसवीं सदी का लोकवृत्त और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 69
मंजीत सिंह की पेंटिंग 70
भारतेन्दु का अंतर्विरोध 77
4. द्विवेदीयुगीन हिन्दी पत्रकारिता 79
आचार्य' की उपाधि 79
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 84
जीवन परिचय 85
प्रकाशित कृतियाँ 85
परिचयात्मक शैली 87
आलोचनात्मक शैली 88
विचारात्मक अथवा गवेषणात्मक शैली 88
महत्त्वपूर्ण कार्य 88
हिंदी पत्रकारिता में योगदान 89
5. मीडिया और हिंदी 98
मीडिया का अर्थ 100
मीडिया शब्द की उत्पत्ति 101

मीडिया के क्षेत्र में हिंदी का स्थान 104
मीडिया में हिंदी की सार्थकता 110
सोशल मीडिया एवं हिंदी 115
6. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं हिन्दी पत्रकारिता 118
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अवधारणा 118
विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक माध्यम एवं हिन्दी पत्रकारिता 121
डिजिटल युग में हिन्दी पत्रकारिता 123
हिंदी के विकास में वेब मीडिया का योगदान 125
7. हिन्दी पत्रकारिता एवं साहित्य का परस्पर संबंध 128
साहित्यिक पत्रकारिता 130
सिनेमा और पत्रकारिता का साहित्य में योगदान 148
सिनेमा 152
साहित्यिक पत्रकारिता के नए आयाम 156
पत्रकार और साहित्यकार का परस्पर संबंध 161
8. प्रमुख समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ 164
समाचार पत्र का इतिहास 166
बीसवीं सदी व वर्तमान परिप्रेक्ष्य 169
सरस्वती 171
दीपशील भारत 173
स्वतंत्र भारत 173
राजस्थान पत्रिका 173
हरिभूमि 174
दैनिक भास्कर 175
दैनिक जागरण 177
दैनिक जलते दीप 177
नवभारत टाइम्स 178
नई दुनिया 179
मिशन जयहिन्द 179
दैनिक हिन्दुस्तान 180
बनारस अखबार 181
अरबी तथा फारसी शब्दों का प्रयोग 181

हिन्दी प्रदीप 182
कवि वचन सुधा 186
वर्तमान साहित्य 188
सम्पादन एवं प्रकाशन 188
महत्त्वपूर्ण विशेषांक 190
कहानी महाविशेषांक 190
कविता विशेषांक 190
आलोचना विशेषांक 191
महिला लेखन विशेषांक 191
'शताब्दी साहित्य' श्रृंखला के विशेषांक 192
शताब्दी कथा विशेषांक 192
शताब्दी पंजाबी साहित्य विशेषांक 193
शताब्दी कविता विशेषांक 193
शताब्दी नाटक विशेषांक 194
बांग्ला साहित्य : शताब्दी विशेषांक 194
शताब्दी सिनेमा विशेषांक 195
शताब्दी आलोचना पर एकाग्र 196
अन्य विशेषांक 197
विज्ञान कथा 200
भारत दर्शन 202
9. भारत के प्रमुख हिन्दी पत्रकार 204
प्रताप नारायण मिश्र 204
बाबूराव विष्णु पराड़कर 214
पत्रकारिता के प्रेरणा स्रोत 220
सम्मान और पुरस्कार 221
हिंदी की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा 222
लोकप्रिय अग्रलेख 222
संपादक और पत्रकारिता : ज्ञान सीमा और धर्म 223
गणेश शंकर विद्यार्थी 224
सम्पादन कार्य 225
लोकप्रियता 225

साहित्यिक अभिरुचि 225
भाषा–शैली 226
पत्रकारिता के पुरोधा 226
'प्रताप' का प्रकाशन 227
बाल गंगाधर तिलक 228
समाचार पत्र का प्रकाशन 228
लाला जगत नारायण 229
हिन्द समाचार समूह के संस्थापक 230
रामहरख सिंह सहगल 230
साहित्यिक परिचय 231

1

विषय बोध

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। हिन्दी पत्रकारिता के आदि उन्नायक जातीय चेतना, युगबोध और अपने महत् दायित्व के प्रति पूर्ण सचेत थे। कदाचित् इसलिए विदेशी सरकार की दमन-नीति का उन्हें शिकार होना पड़ा था, उसके नृशंस व्यवहार की यातना झेलनी पड़ी थी। उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी गद्य-निर्माण की चेष्टा और हिन्दी-प्रचार आन्दोलन अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भयंकर कठिनाइयों का सामना करते हुए भी कितना तेज और पुष्ट था इसका साक्ष्य 'भारतमित्र' (सन् 1878 ई, में) 'सार सुधानिधि' (सन् 1879 ई.) और 'उचित वक्ता' (सन् 1880 ई.) के जीर्ण पृष्ठों पर मुखर है।

भारत में प्रकाशित होने वाला पहला हिंदी भाषा का अखबार, उदंत मार्तंड (द राइजिंग सन), 30 मई 1826 को शुरू हुआ। इस दिन को 'हिंदी पत्रकारिता दिवस' के रूप में मनाया जाता है, क्योंकि इसने हिंदी भाषा में पत्रकारिता की शुरुआत को चिह्नित किया था। वर्तमान में हिन्दी पत्रकारिता ने अंग्रेजी पत्रकारिता के दबदबे को खत्म कर दिया है। पहले देश-विदेश में अंग्रेजी पत्रकारिता का दबदबा था लेकिन आज हिन्दी भाषा का झण्डा चहुंदिश लहरा रहा है। 30 मई को 'हिन्दी पत्रकारिता दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

पत्रकारिता का अर्थ

पत्रकारिता शब्द अंग्रेजी के 'जर्नलिज्म' का हिन्दी रूपांतर है। 'जर्नलिज्म' शब्द 'जर्नल' से निर्मित है और इसका अर्थ है 'दैनिकी', 'दैनंदिनी', 'रोजनामा' अर्थात जिसमें दैनिक कार्यों का विवरण हो। आज जर्नल शब्द 'मैगजीन',

'समाचार पत्र', 'दैनिक अखबार' का द्योतक हो गया है। 'जर्नलिज्म' यानी पत्रकारिता का अर्थ समाचार पत्र, पत्रिका से जुड़ा व्यवसाय, समाचार संकलन, लेखन, संपादन, प्रस्तुतीकरण, वितरण आदि होगा। आज के युग में पत्रकारिता के अभी अनेक माध्यम हो गये हैं, जैसे-अखबार, पत्रिकाएँ, रेडियो, दूरदर्शन, वेब-पत्रकारिता, सोशल मीडिया, इंटरनेट आदि।

हिन्दी में भी पत्रकारिता का अर्थ भी लगभग यही है। 'पत्र' से 'पत्रकार' और फिर 'पत्रकारिता' से इसे समझा जा सकता है। 'पत्रकार' का अर्थ समाचार पत्र का संपादक या लेखक। और 'पत्रकारिता' का अर्थ पत्रकार का काम या पेशा, समाचार के संपादन, समाचार इकट्ठे करने आदि का विवेचन करने वाली विद्या। वृहत शब्दकोश में साफ है कि पत्र का अर्थ वह कागज या साधन जिस पर कोई बात लिखी या छपी हो जो प्रामाणिक हो, जो किसी घटना के विषय को प्रमाणरूप पेश करता है। और पत्रकार का अर्थ उस पत्र, कागज को लिखने वाला, संपादन करने वाला।

पत्रकारिता की परिभाषा

विभिन्न मनीषियों द्वारा पत्रकारिता को अलग-अलग शब्दों में परिभाषित किया है। पत्रकारिता के स्वरूप को समझने के लिए यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण पत्रकारिता की परिभाषा का उल्लेख किया जा रहा है–

न्यू वेबस्टर्स डिक्शनरी–प्रकाशन, सम्पादन, लेखन एवं प्रसारणयुक्त समाचार माध्यम का व्यवसाय ही पत्रकारिता है।

विल्वर श्रम–जनसंचार माध्यम दुनिया का नक्शा बदल सकता है।

सी.जी. मूलर–सामयिक ज्ञान का व्यवसाय ही पत्रकारिता है। इसमें तथ्यों की प्राप्ति उनका मूल्यांकन एवं ठीक-ठाक प्रस्तुतीकरण होता है।

जेम्स मैकडोनल्ड–पत्रकारिता को मैं रणभूमि से ज्यादा बड़ी चीज समझता हूँ। यह कोई पेशा नहीं वरन पेशे से ऊँची को चीज है। यह एक जीवन है, जिसे मैंने अपने को स्वेच्छापूर्वक समर्पित किया।

विखेम स्टीड–मैं समझता हूँ कि पत्रकारिता कला भी है, वृत्ति भी और जनसेवा भी। जब कोई यह नहीं समझता कि मेरा कर्त्तव्य अपने पत्र के द्वारा लोगों का ज्ञान बढ़ाना, उनका मार्गदर्शन करना है, तब तक से पत्रकारिता की चाहे जितनी ट्रेनिंग दी जाए, वह पूर्ण रूपेण पत्रकार नहीं बन सकता।

हिन्दी शब्द सागर–पत्रकार का काम या व्यवसाय ही पत्रकारिता है।

डा. अर्जुन–ज्ञान और विचारों को समीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ शब्द, ध्वनि तथा चित्रों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाना ही पत्रकारिता है। यह वह विद्या है जिसमें सभी प्रकार के पत्रकारों के कार्यों, कर्त्तव्यो और लक्ष्यों का विवेचन होता है। पत्रकारिता समय के साथ-साथ समाज की दिग्दर्शिका और नियामिका है।

रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर–ज्ञान और विचार शब्दों तथा चित्रों के रूप में दूसरे तक पहुँचाना ही पत्रकला है। छपने वाले लेख-समाचार तैयार करना ही पत्रकारी नहीं है।

आकर्षक शीर्षक देना, पृष्ठों का आकर्षक बनाव-ठनाव, जल्दी से जल्दी समाचार देने की त्वरा, देश-विदेश के प्रमुख उद्योग-धन्धों के विज्ञापन प्राप्त करने की चतुराई, सुन्दर छपा और पाठक के हाथ में सबसे जल्दी पत्र पहुँचा देने की त्वरा, ये सब पत्रकार कला के अंतर्गत रखे गए।

डॉ.बद्रीनाथ –पत्रकारिता पत्र-पत्रिकाओं के लिए समाचार लेख आदि एकत्रित करने, सम्पादित करने, प्रकाशन आदेश देने का कार्य है।

डॉ. शंकरदयाल –पत्रकारिता एक पेशा नहीं है बल्कि यह तो जनता की सेवा का माध्यम है। पत्रकारों को केवल घटनाओं का विवरण ही पेश नहीं करना चाहिए, आम जनता के सामने उसका विश्लेषण भी करना चाहिए। पत्रकारों पर लोकतांत्रिक परम्पराओं की रक्षा करने और शांति एवं भाईचारा बनाए रखने की भी जिम्मेदारी आती है।

इन्द्रविद्यावचस्पति–पत्रकारिता पांचवां वेद है, जिसके द्वारा हम ज्ञान-विज्ञान संबंधी बातों को जानकर अपना बंद मस्तिष्क खोलते हैं।

हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास

भारतवर्ष में आधुनिक ढंग की पत्रकारिता का जन्म अठारहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में हुआ। 1780 ई. में प्रकाशित हिके (Hickey) का 'कलकत्ता गजट' कदाचित् इस ओर पहला प्रयत्न था। हिंदी के पहले पत्र उदंत मार्तण्ड (1826) के प्रकाशित होने तक इन नगरों की ऐंग्लोइंडियन अंग्रेजी पत्रकारिता काफी विकसित हो गई थी।

इन अंतिम वर्षों में फारसी भाषा में भी पत्रकारिता का जन्म हो चुका था। 18वीं शताब्दी के फारसी पत्र कदाचित् हस्तलिखित पत्र थे। 1801 में 'हिंदुस्थान

इंटेलिजेंस ओरिऐंटल ऐंथॉलॉजी' (Hindusthan Intelligence Oriental Anthology) नाम का जो संकलन प्रकाशित हुआ उसमें उत्तर भारत के कितने ही 'अखबारों' के उद्धरण थे। 1810 में मौलवी इकराम अली ने कलकत्ता से लीथो पत्र 'हिंदोस्तानी' प्रकाशित करना आरंभ किया। 1816 में गंगाकिशोर भट्टाचार्य ने 'बंगाल गजट' का प्रवर्तन किया। यह पहला बंगला पत्र था। बाद में श्रीरामपुर के पादरियों ने प्रसिद्ध प्रचारपत्र 'समाचार दर्पण' को (27 मई 1818) जन्म दिया। इन प्रारंभिक पत्रों के बाद 1823 में हमें बँगला भाषा के 'समाचारचंद्रिका' और 'संवाद कौमुदी', फारसी उर्दू के 'जामे जहाँनुमा' और 'शमसुल अखबार' तथा गुजराती के 'मुंबई समाचार' के दर्शन होते हैं।

यह स्पष्ट है कि हिंदी पत्रकारिता बहुत बाद की चीज नहीं है। दिल्ली का 'उर्दू अखबार' (1833) और मराठी का 'दिग्दर्शन' (1837) हिंदी के पहले पत्र 'उदंत मार्तंड' (1826) के बाद ही आए। 'उदंत मार्तंड' के संपादक पंडित जुगलकिशोर थे। यह साप्ताहिक पत्र था। पत्र की भाषा पछाँही हिंदी रहती थी, जिसे पत्र के संपादकों ने 'मध्यदेशीय भाषा' कहा है।

यह पत्र 1827 में बंद हो गया। उन दिनों सरकारी सहायता के बिना किसी भी पत्र का चलना असंभव था। कंपनी सरकार ने मिशनरियों के पत्र को डाक आदि की सुविधा दे रखी थी, परंतु चेष्टा करने पर भी 'उदंत मार्तंड' को यह सुविधा प्राप्त नहीं हो सकी।

हिंदी पत्रकारिता का पहला चरण

1826 ई. से 1873 ई. तक को हम हिंदी पत्रकारिता का पहला चरण कह सकते हैं। 1873 ई. में भारतेन्दु ने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' की स्थापना की। एक वर्ष बाद यह पत्र 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैसे भारतेन्दु का 'कविवचन सुधा' पत्र 1867 में ही सामने आ गया था और उसने पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था, परंतु नई भाषाशैली का प्रवर्तन 1873 में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' से ही हुआ। इस बीच के अधिकांश पत्र प्रयोग मात्र कहे जा सकते हैं और उनके पीछे पत्रकला का ज्ञान अथवा नए विचारों के प्रचार की भावना नहीं है। 'उदन्त मार्तण्ड' के बाद प्रमुख पत्र हैं–

बंगदूत (1829), प्रजामित्र (1834), बनारस अखबार (1845), मार्तंड पंचभाषीय (1846), ज्ञानदीप (1846), मालवा अखबार (1849), जगद्दीप भास्कर (1849), सुधाकर (1850), साम्यदन्त मार्तंड (1850), मजहरुलसरूर (1850), बुद्धिप्रकाश (1852), ग्वालियर गजेट (1853), समाचार सुधावर्षण

(1854), दैनिक कलकत्ता, प्रजाहितैषी (1855), सर्वहितकारक (1855), सूरजप्रकाश (1861), जगलाभचिंतक (1861), सर्वोपकारक (1861), प्रजाहित (1861), लोकमित्र (1835), भारतखंडामृत (1864), तत्त्वबोधिनी पत्रिका (1865), ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका (1866), सोमप्रकाश (1866), सत्यदीपक (1866), वृत्तांतविलास (1867), ज्ञानदीपक (1867), कविवचनसुधा (1867), धर्मप्रकाश (1867), विद्याविलास (1867), वृत्तांतदर्पण (1867), विद्यादर्श (1869), ब्रह्मज्ञानप्रकाश (1869), अलमोड़ा अखबार (1870), आगरा अखबार (1870), बुद्धिविलास (1870), हिंदू प्रकाश (1871), प्रयागदूत (1871), बुंदेलखंड अखबर (1871), प्रेमपत्र (1872) और बोधा समाचार (1872)।

इन पत्रों में से कुछ मासिक थे, कुछ साप्ताहिक। दैनिक पत्र केवल एक था 'समाचार सुधावर्षण' जो द्विभाषीय (बंगला हिंदी) था और कलकत्ता से प्रकाशित होता था। यह दैनिक पत्र 1871 तक चलता रहा। अधिकांश पत्र आगरा से प्रकाशित होते थे जो उन दिनों एक बड़ा शिक्षा केंद्र था और विद्यार्थी समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। शेष ब्रह्मसमाज, सनातन धर्म और मिशनरियों के प्रचार कार्य से संबंधित थे। बहुत से पत्र द्विभाषीय (हिंदी उर्दू) थे और कुछ तो पंचभाषीय तक थे। इससे भी पत्रकारिता की अपरिपक्व दशा ही सूचित होती है।

हिंदीप्रदेश के प्रारंभिक पत्रों में 'बनारस अखबार' (1845) काफी प्रभावशाली था और उसी की भाषानीति के विरोध में 1850 में तारामोहन मैत्र ने काशी से साप्ताहिक 'सुधाकर' और 1855 में राजा लक्ष्मणसिंह ने आगरा से 'प्रजाहितैषी' का प्रकाशन आरंभ किया था। राजा शिवप्रसाद का 'बनारस अखबार' उर्दू भाषाशैली को अपनाता था तो ये दोनों पत्र पंडिताऊ तत्समप्रधान शैली की ओर झुकते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि 1867 से पहले भाषाशैली के संबंध में हिंदी पत्रकार किसी निश्चित शैली का अनुसरण नहीं कर सके थे। इस वर्ष 'कवि वचनसुधा' का प्रकाशन हुआ और एक तरह से हम उसे पहला महत्त्वपूर्ण पत्र कह सकते हैं। पहले यह मासिक था, फिर पाक्षिक हुआ और अंत में साप्ताहिक। भारतेन्दु के बहुविध व्यक्तित्त्व का प्रकाशन इस पत्र के माध्यम से हुआ, परंतु सच तो यह है कि 'हरिश्चंद्र मैगजीन' के प्रकाशन (1873) तक वे भी भाषाशैली और विचारों के क्षेत्र में मार्ग ही खोजते दिखाई देते हैं।

हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग–भारतेन्दु युग

हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग 1873 से 1900 तक चलता है। इस युग के एक छोर पर भारतेन्दु का 'हरिश्चंद्र मैगजीन' था ओर नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा अनुमोदनप्राप्त 'सरस्वती'। इन 27 वर्षों में प्रकाशित पत्रों की संख्या 300–350 से ऊपर है और ये नागपुर तक फैले हुए हैं। अधिकांश पत्र मासिक या साप्ताहिक थे। मासिक पत्रों में निबंध, नवल कथा (उपन्यास), वार्ता आदि के रूप में कुछ अधिक स्थायी संपत्ति रहती थी, परन्तु अधिकांश पत्र 10–15 पृष्ठों से अधिक नहीं जाते थे और उन्हें हम आज के शब्दों में 'विचारपत्र' ही कह सकते हैं। साप्ताहिक पत्रों में समाचारों और उनपर टिप्पणियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। वास्तव में दैनिक समाचार के प्रति उस समय विशेष आग्रह नहीं था और कदाचित् इसीलिए उन दिनों साप्ताहिक और मासिक पत्र कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थे। उन्होंने जनजागरण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के इन 25 वर्षों का आदर्श भारतेन्दु की पत्रकारिता थी। 'कविवचनसुधा' (1867), 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (1874), श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका' (1874), बालबोधिनी (स्त्रीजन की पत्रिका, 1874) के रूप में भारतेन्दु ने इस दिशा में पथप्रदर्शन किया था। उनकी टीकाटिप्पणियों से अधिकारी तक घबराते थे और 'कविवचनसुधा' के 'पंच' पर रुष्ट होकर काशी के मजिस्ट्रेट ने भारतेन्दु के पत्रों को शिक्षा विभाग के लिए लेना भी बंद करा दिया था। इसमें संदेह नहीं कि पत्रकारिता के क्षेत्र भी भारतेन्दु पूर्णतया निर्भीक थे और उन्होंने नए-नए पत्रों के लिए प्रोत्साहन दिया। 'हिंदी प्रदीप', 'भारतजीवन' आदि अनेक पत्रों का नामकरण भी उन्होंने ही किया था। उनके युग के सभी पत्रकार उन्हें अग्रणी मानते थे।

भारतेन्दु के बाद

भारतेन्दु के बाद इस क्षेत्र में जो पत्रकार आए उनमें प्रमुख थे पंडित रुद्रदत्त शर्मा, (भारतमित्र, 1877), बालकृष्ण भट्ट (हिंदी प्रदीप, 1877), दुर्गाप्रसाद मिश्र (उचित वक्ता, 1878), पंडित सदानंद मिश्र (सारसुधानिधि, 1878), पंडित वंशीधर (सज्जन-कीर्त्ति-सुधाकर, 1878), बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' (आनंदकादंबिनी, 1881), देवकीनंदन त्रिपाठी (प्रयाग समाचार, 1882), राधाचरण गोस्वामी (भारतेन्दु, 1882), पंडित गौरीदत्त (देवनागरी प्रचारक, 1882), राज रामपाल सिंह (हिंदुस्तान, 1883), प्रतापनारायण मिश्र (ब्राह्मण, 1883), अंबिकादत्त व्यास, (पीयूषप्रवाह, 1884), बाबू रामकृष्ण वर्मा (भारतजीवन,

1884), पं. रामगुलाम अवस्थी (शुभचिंतक, 1888), योगेशचंद्र वसु (हिंदी बंगवासी, 1890), पं. कुंदनलाल (कवि व चित्रकार, 1891) और बाबू देवकीनंदन खत्री एवं बाबू जगन्नाथदास (साहित्य सुधानिधि, 1894)। 1895 ई. में 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ होता है। इस पत्रिका से गंभीर साहित्यसमीक्षा का आरंभ हुआ और इसलिए हम इसे एक निश्चित प्रकाशस्तंभ मान सकते हैं। 1900 ई. में 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के अवतरण के साथ हिंदी पत्रकारिता के इस दूसरे युग पर पटाक्षेप हो जाता है।

इन 25 वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता अनेक दिशाओं में विकसित हुई। प्रारंभिक पत्र शिक्षाप्रसार और धर्मप्रचार तक सीमित थे। भारतेन्दु ने सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दिशाएँ भी विकसित कीं। उन्होंने ही 'बालाबोधिनी' (1874) नाम से पहला स्त्री-मासिक-पत्र चलाया। कुछ वर्ष बाद महिलाओं को स्वयं इस क्षेत्र में उतरते देखते हैं - 'भारतभगिनी' (हरदेवी, 1888), 'सुगृहिणी' (हेमंतकुमारी, 1889)। इन वर्षों में धर्म के क्षेत्र में आर्यसमाज और सनातन धर्म के प्रचारक विशेष सक्रिय थे।

ब्रह्मसमाज और राधास्वामी मत से संबंधित कुछ पत्र और मिर्जापुर जैसे ईसाई केंद्रों से कुछ ईसाई धर्म संबंधी पत्र भी सामने आते हैं, परंतु युग की धार्मिक प्रतिक्रियाओं को हम आर्यसमाज के और पौराणिकों के पत्रों में ही पाते हैं। आज ये पत्र कदाचित् उतने महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ते, परंतु इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने हिन्दी की गद्यशैली को पुष्ट किया और जनता में नए विचारों की ज्योति भी। इन धार्मिक वादविवादों के फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्ग और संप्रदाय सुधार की ओर अग्रसर हुए और बहुत शीघ्र ही सांप्रदायिक पत्रों की बाढ़ आ गई। सैकड़ों की संख्या में विभिन्न जातीय और वर्गीय पत्र प्रकाशित हुए और उन्होंने असंख्य जनों को वाणी दी।

आज वही पत्र हमारी इतिहास चेतना में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं जिन्होंने भाषा शैली, साहित्य अथवा राजनीति के क्षेत्र में कोई अप्रतिम कार्य किया हो। साहित्यिक दृष्टि से 'हिंदी प्रदीप' (1877), ब्राह्मण (1883), क्षत्रियपत्रिका (1880), आनंदकादंबिनी (1881), भारतेन्दु (1882), देवनागरी प्रचारक (1882), वैष्णव पत्रिका (पश्चात् पीयूषप्रवाह, 1883), कवि के चित्रकार (1891), नागरी नीरद (1883), साहित्य सुधानिधि (1894) और राजनीतिक दृष्टि से भारतमित्र (1877), उचित वक्ता (1878), सार सुधानिधि (1878), भारतोदय (दैनिक, 1883), भारत जीवन (1884), भारतोदय (दैनिक, 1885),

शुभचिंतक (1887) और हिंदी बंगवासी (1890) विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन पत्रों में हमारे 19वीं शताब्दी के साहित्यरसिकों, हिंदी के कर्मठ उपासकों, शैलीकारों और चिंतकों की सर्वश्रेष्ठ निधि सुरक्षित है। यह क्षोभ का विषय है कि हम इस महत्त्वपूर्ण सामग्री का पत्रों की फाइलों से उद्धार नहीं कर सके। बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, सदानं मिश्र, रुद्रदत्त शर्मा, अंबिकादत्त व्यास और बालमुकुंद गुप्त जैसे सजीव लेखकों की कलम से निकले हुए न जाने कितने निबंध, टिप्पणी, लेख, पंच, हास परिहास औप स्केच आज में हमें अलभ्य हो रहे हैं। आज भी हमारे पत्रकार उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। अपने समय में तो वे अग्रणी थे ही।

तीसरा चरण : बीसवीं शताब्दी के प्रथम बीस वर्ष

बीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता हमारे लिए अपेक्षाकृत निकट है और उसमें बहुत कुछ पिछले युग की पत्रकारिता की ही विविधता और बहुरूपता मिलती है। 19वीं शती के पत्रकारों को भाषा-शैलीक्षेत्र में अव्यवस्था का सामना करना पड़ा था। उन्हें एक ओर अंग्रेजी और दूसरी ओर उर्दू के पत्रों के सामने अपनी वस्तु रखनी थी। अभी हिंदी में रुचि रखनेवाली जनता बहुत छोटी थी। धीरे-धीरे परिस्थिति बदलीं और हम हिंदी पत्रों को साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में नेतृत्व करते पाते हैं। इस शताब्दी से धर्म और समाजसुधार के आंदोलन कुछ पीछे पड़ गए और जातीय चेतना ने धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का रूप ग्रहण कर लिया। फलत: अधिकांश पत्र, साहित्य और राजनीति को ही लेकर चले। साहित्यिक पत्रों के क्षेत्र में पहले दो दशकों में आचार्य द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' (1903-1918) का नेतृत्व रहा।

वस्तुत: इन बीस वर्षों में हिंदी के मासिक पत्र एक महान साहित्यिक शक्ति के रूप में सामने आए।शृंखलित उपन्यास कहानी के रूप में कई पत्र प्रकाशित हुए - जैसे उपन्यास 1901, हिंदी नाविल 1901, उपन्यास लहरी 1902, उपन्याससागर 1903, उपन्यास कुसुमांजलि 1904, उपन्यासबहार 1907, उपन्यास प्रचार 1912 केवल कविता अथवा समस्यापूर्ति लेकर अनेक पत्र उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में निकलने लगे थे। वे चले रहे। समालोचना के क्षेत्र में 'समालोचक' (1902) और ऐतिहासिक शोध से संबंधित 'इतिहास' (1905) का प्रकाशन भी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। परंतु सरस्वती ने 'मिस्लेनी' के रूप में जो आदर्श रखा था, वह अधिक लोकप्रिय रहा और इस श्रेणी के पत्रों

में उसके साथ कुछ थोड़े ही पत्रों का नाम लिया जा सकता है, जैसे 'भारतेन्दु' (1905), नागरी हितैषिणी पत्रिका, बाँकीपुर (1905), नागरीप्रचारक (1906), मिथिलामिहिर (1910) और इंदु (1909)। 'सरस्वती' और 'इंदु' दोनों हिन्दी की साहित्यचेतना के इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और एक तरह से हम उन्हें उस युग की साहित्यिक पत्रकारिता का शीर्षमणि कह सकते हैं। 'सरस्वती' के माध्यम से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'इंदु' के माध्यम से पंडित रूपनारायण पांडेय ने जिस संपादकीय सतर्कता, अध्यवसाय और ईमानदारी का आदर्श हमारे सामने रखा वह हिन्दी पत्रकारिता को एक नई दिशा देने में समर्थ हुआ।

परंतु राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दी पत्रकारिता को नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सका। पिछले युग की राजनीतिक पत्रकारिता का केंद्र कलकत्ता था। परंतु कलकत्ता हिंदी प्रदेश से दूर पड़ता था और स्वयं हिंदी प्रदेश को राजनीतिक दिशा में जागरूक नेतृत्व कुछ देर में मिला। हिंदी प्रदेश का पहला दैनिक राजा रामपालसिंह का द्विभाषीय 'हिंदुस्तान' (1883) है, जो अंग्रेजी और हिंदी में कालाकाँकर से प्रकाशित होता था। दो वर्ष बाद (1885 में), बाबू सीताराम ने 'भारतोदय' नाम से एक दैनिक पत्र कानपुर से निकालना शुरू किया। परंतु ये दोनों पत्र दीर्घजीवी नहीं हो सके और साप्ताहिक पत्रों को ही राजनीतिक विचारधारा का वाहन बनना पड़ा।

वास्तव में उन्नीसवीं शतब्दी में कलकत्ता के भारत मित्र, बंगवासी, सारसुधानिधि और उचित वक्ता ही हिंदी प्रदेश की राजनीतिक भावना का प्रतिनिधित्व करते थे। इनमें कदाचित् 'भारतमित्र' ही सबसे अधिक स्थायी और शक्तिशाली था। उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल और महाराष्ट्र लोक जाग्रति के केंद्र थे और उग्र राष्ट्रीय पत्रकारिता में भी ये ही प्रांत अग्रणी थे। हिंदी प्रदेश के पत्रकारों ने इन प्रांतों के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया और बहुत दिनों तक उनका स्वतंत्र राजनीतिक व्यक्तित्त्व विकसित नहीं हो सका। फिर भी हम 'अभ्युदय' (1905), 'प्रताप' (1913), 'कर्मयोगी', 'हिंदी केसरी' (1904-1908) आदि के रूप में हिंदी राजनीतिक पत्रकारिता को कई डग आगे बढ़ाते पाते हैं। प्रथम महायुद्ध की उत्तेजना ने एक बार फिर कई दैनिक पत्रों को जन्म दिया। कलकत्ता से 'कलकत्ता समाचार', 'स्वतंत्र' और 'विश्वमित्र' प्रकाशित हुए, बंबई से 'वेंकटेश्वर समाचार' ने अपना दैनिक संस्करण प्रकाशित करना आरंभ किया और दिल्ली से 'विजय' निकला। 1921 में काशी से 'आज' और कानपुर

से 'वर्तमान' प्रकाशित हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि 1921 में हिंदी पत्रकारिता फिर एक बार करवटें लेती है और राजनीतिक क्षेत्र में अपना नया जीवन आरंभ करती है। हमारे साहित्यिक पत्रों के क्षेत्र में भी नई प्रवृत्तियों का आरंभ इसी समय से होता है। फलतः बीसवीं शती के पहले बीस वर्षों को हम हिंदी पत्रकारिता का तीसरा चरण कह सकते हैं।

आधुनिक युग

1921 के बाद हिंदी पत्रकारिता का समसामयिक युग आरंभ होता है। इस युग में हम राष्ट्रीय और साहित्यिक चेतना को साथ-साथ पल्लवित पाते हैं। इसी समय के लगभग हिंदी का प्रवेश विश्वविद्यालयों में हुआ और कुछ ऐसे कृती संपादक सामने आए जो अंग्रेजी की पत्रकारिता से पूर्णतः परिचित थे और जो हिंदी पत्रों को अंग्रेजी, मराठी और बँगला के पत्रों के समकक्ष लाना चाहते थे। फलतः साहित्यिक पत्रकारिता में एक नए युग का आरंभ हुआ।

राष्ट्रीय आंदोलनों ने हिंदी की राष्ट्रभाषा के लिए योग्यता पहली बार घोषित की ओर जैसे-जैसे राष्ट्रीय आंदोलनों का बल बढ़ने लगा, हिंदी के पत्रकार और पत्र अधिक महत्त्व पाने लगे। 1921 के बाद गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन मध्यवर्ग तक सीमित न रहकर ग्रामीणों और श्रमिकों तक पहुँच गया और उसके इस प्रसार में हिंदी पत्रकारिता ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। सच तो यह है कि हिंदी पत्रकार राष्ट्रीय आंदोलनों की अग्र पंक्ति में थे और उन्होंने विदेशी सत्ता से डटकर मोर्चा लिया। विदेशी सरकार ने अनेक बार नए-नए कानून बनाकर समाचारपत्रों की स्वतंत्रता पर कुठाराघात किया परंतु जेल, जुर्माना और अनेकानेक मानसिक और आर्थिक कठिनाइयाँ झेलते हुए भी हिन्दी पत्रकारों ने स्वतंत्र विचार की दीपशिखा जलाए रखी।

1921 के बाद साहित्यक्षेत्र में जो पत्र आए उनमें प्रमुख हैं-

स्वार्थ (1922), माधुरी (1923), मर्यादा, चाँद (1923), मनोरमा (1924), समालोचक (1924), चित्रपट (1925), कल्याण (1926), सुधा (1927), विशालभारत (1928), त्यागभूमि (1928), हंस (1930), गंगा (1930), विश्वमित्र (1933), रूपाभ (1938), साहित्य संदेश (1938), कमला (1939), मधुकर (1940), जीवनसाहित्य (1940), विश्वभारती (1942), संगम (1942), कुमार (1944), नया साहित्य (1945), पारिजात (1945), हिमालय (1946) आदि।

वास्तव में आज हमारे मासिक साहित्य की प्रौढ़ता और विविधता में किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता। हिंदी की अनेकानेक प्रथम श्रेणी की रचनाएँ मासिकों द्वारा ही पहले प्रकाश में आईं और अनेक श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार पत्रकारिता से भी संबंधित रहे। आज हमारे मासिक पत्र जीवन और साहित्य के सभी अंगों की पूर्ति करते हैं और अब विशेषज्ञता की ओर भी ध्यान जाने लगा है। साहित्य की प्रवृत्तियों की जैसी विकासमान झलक पत्रों में मिलती है, वैसी पुस्तकों में नहीं मिलती। वहाँ हमें साहित्य का सक्रिय, सप्राण, गतिशील रूप प्राप्त होता है।

राजनीतिक क्षेत्र में इस युग में जिन पत्र-पत्रिकाओं की धूम रही वे हैं - कर्मवीर (1924), सैनिक (1924), स्वदेश (1921), श्रीकृष्णसंदेश (1925), हिंदूपंच (1926), स्वतंत्र भारत (1928), जागरण (1929), हिंदी मिलाप (1929), सचित्र दरबार (1930), स्वराज्य (1931), नवयुग (1932), हरिजन सेवक (1932), विश्वबंधु (1933), नवशक्ति (1934), योगी (1934), हिंदू (1936), देशदूत (1938), राष्ट्रीयता (1938), संघर्ष (1938), चिनगारी (1938), नवज्योति (1938), संगम (1940), जनयुग (1942), रामराज्य (1942), संसार (1943), लोकवाणी (1942), सावधान (1942), हुंकार (1942) और सन्मार्ग (1943), जनवार्ता (1972)।

इनमें से अधिकांश साप्ताहिक हैं, परंतु जनमन के निर्माण में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। जहाँ तक पत्र कला का संबंध है वहाँ तक हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि तीसरे और चौथे युग के पत्रों में धरती और आकाश का अंतर है। आज पत्रसंपादन वास्तव में उच्चकोटि की कला है। राजनीतिक पत्रकारिता के क्षेत्र में 'आज' (1921) और उसके संपादक स्वर्गीय बाबूराव विष्णु पराड़कर का लगभग वही स्थान है, जो साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को प्राप्त है। सच तो यह है कि 'आज' ने पत्रकला के क्षेत्र में एक महान संस्था का काम किया है और उसने हिंदी को बीसियों पत्रसंपादक और पत्रकार दिए हैं।

आधुनिक साहित्य के अनेक अंगों की भाँति हिन्दी पत्रकारिता भी नई कोटि की है और उसमें भी मुख्यत: हमारे मध्यवित्त वर्ग की सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनीतिक हलचलों का प्रतिबिंब भास्वर है। वास्तव में पिछले 200 वर्षों का सच्चा इतिहास हमारी पत्र-पत्रिकाओं से ही संकलित

हो सकता है। बँगला के 'कलेर कथा' ग्रंथ में पत्रों के अवतरणों के आधार पर बंगाल के उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यवित्तीय जीवन के आकलन का प्रयत्न हुआ है। हिंदी में भी ऐसा प्रयत्न वांछनीय है। एक तरह से उन्नीसवीं शती में साहित्य कही जा सकनेवाली चीज बहुत कम है और जो है भी, वह पत्रों के पृष्ठों में ही पहले-पहल सामने आई है। भाषाशैली के निर्माण और जातीय शैली के विकास में पत्रों का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है, परंतु बीसवीं शती के पहले दो दशकों के अंत तक मासिक पत्र और साप्ताहिक पत्र ही हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियों को जन्म देते और विकसित करते रहे हैं।

द्विवेदी युग के साहित्य को हम 'सरस्वती' और 'इंदु' में जिस प्रयोगात्मक रूप में देखते हैं, वही उस साहित्य का असली रूप है। 1921 ई. के बाद साहित्य बहुत कुछ पत्र-पत्रिकाओं से स्वतंत्र होकर अपने पैरों पर खड़ा होने लगा, परंतु फिर भी विशिष्ट साहित्यिक आंदोलनों के लिए हमें मासिक पत्रों के पृष्ठ ही उलटने पड़ते हैं। राजनीतिक चेतना के लिए तो पत्र-पत्रिकाएँ हैं ही। वस्तुतः पत्र-पत्रिकाएँ जितनी बड़ी जनसंख्या को छूती हैं, विशुद्ध साहित्य का उतनी बड़ी जनसंख्या तक पहुँचना असंभव है।

1990 के बाद

90 के दशक में भारतीय भाषाओं के अखबारों, हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अमर उजाला, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण आदि के नगरों-कस्बों से कई संस्करण निकलने शुरू हुए। जहां पहले महानगरों से अखबार छपते थे, भूमंडलीकरण के बाद आयी नई तकनीक, बेहतर सड़क और यातायात के संसाधनों की सुलभता की वजह से छोटे शहरों, कस्बों से भी नगर संस्करण का छपना आसान हो गया। साथ ही इन दशकों में ग्रामीण इलाकों, कस्बों में फैलते बाजार में नई वस्तुओं के लिए नये उपभोक्ताओं की तलाश भी शुरू हुई। हिंदी के अखबार इन वस्तुओं के प्रचार-प्रसार का एक जरिया बन कर उभरा है। साथ ही साथ अखबारों के इन संस्करणों में स्थानीय खबरों को प्रमुखता से छापा जाता है। इससे अखबारों के पाठकों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है।

मीडिया विशेषज्ञ सेवंती निनान ने इसे 'हिंदी की सार्वजनिक दुनिया का पुनर्विष्कार' कहा है। वे लिखती हैं, "प्रिंट मीडिया ने स्थानीय घटनाओं के कवरेज द्वारा जिला स्तर पर हिंदी की मौजूद सार्वजनिक दुनिया का विस्तार किया

है और साथ ही अखबारों के स्थानीय संस्करणों के द्वारा अनजाने में इसका पुनर्विष्कार किया है। 1990 में राष्ट्रीय पाठक सर्वेक्षण की रिपोर्ट बताती थी कि पांच अगुवा अखबारों में हिन्दी का केवल एक समाचार पत्र हुआ करता था। पिछले (सर्वे) ने साबित कर दिया कि हम कितनी तेजी से बढ़ रहे हैं। इस बार (2010) सबसे अधिक पढ़े जाने वाले पांच अखबारों में शुरू के चार हिंदी के हैं।

एक उत्साहजनक बात और भी है कि आईआरएस सर्वे में जिन 42 शहरों को सबसे तेजी से उभरता माना गया है, उनमें से ज्यादातर हिन्दी हृदय प्रदेश के हैं। मतलब साफ है कि अगर पिछले तीन दशक में दक्षिण के राज्यों ने विकास की जबरदस्त पींगें बढ़ाई तो आने वाले दशक हम हिन्दी वालों के हैं। ऐसा नहीं है कि अखबार के अध्ययन के मामले में ही यह प्रदेश अगुवा साबित हो रहे हैं। आईटी इंडस्ट्री का एक आंकड़ा बताता है कि हिन्दी और भारतीय भाषाओं में नेट पर पढ़ने-लिखने वालों की तादाद लगातार बढ़ रही है।

मतलब साफ है। हिन्दी की आकांक्षाओं का यह विस्तार पत्रकारों की ओर भी देख रहा है। प्रगति की चेतना के साथ समाज की निचली कतार में बैठे लोग भी समाचार पत्रों की पंक्तियों में दिखने चाहिए। पिछले आईएएस, आईआईटी और तमाम शिक्षा परिषदों के परिणामों ने साबित कर दिया है कि हिन्दी भाषियों में सबसे निचली सीढ़ियों पर बैठे लोग भी जबरदस्त उछाल के लिए तैयार हैं। हिन्दी के पत्रकारों को उनसे एक कदम आगे चलना होगा ताकि उस जगह को फिर से हासिल सकें, जिसे पिछले चार दशकों में हमने लगातार खोया।

पत्रकारिता के सिद्धांत

पत्रकारिता की साख बनाए रखने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन करना जरूरी है-

यथार्थता

पत्रकार पर सामाजिक और नैतिक मूल्य की जवाबदेही है। यह वास्तविकता या यथार्थता की ओर इशारा करती है। एक पत्रकार संगठन को अपनी साख बनाए रखने के लिए समाज के यथार्थ को दिखाना होगा। यहां पर कल्पना की कोई जगह नहीं होती है। यह पत्रकारिता की पहली कसौटी है। समाचार समाज के किसी न किसी व्यक्ति, समूह या देश का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए

इसका जुड़ाव सीधे समाज की सच्चाई यानी वास्तविकता से हो जाता है। यानी कि यह कह सकते हैं कि समाचार समाज का प्रतिबिंब होता है। पत्रकार हमेशा समाचार यथार्थ को पेश करने की कोशिश करता है। यह अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया है। दरअसल मनुष्य यथार्थ की नहीं यथार्थ की छवियों की दुनिया में रहता है। किसी भी घटना के बारे में हमें जो भी जानकारियां प्राप्त होती हैं उसी के अनुसार हम उस यथार्थ की एक छवि अपने मस्तिष्क में बना लेते हैं। और यही छवि हमारे लिए वास्तविक यथार्थ का काम करती है।

वस्तुपरकता

वस्तु की अवधारणा हमें सामाजिक माहौल से मिलते हैं। बचपन से ही हम घर में, स्कूल में, सड़क पर चलते समय हर कदम, हर पल सूचनाएँ प्राप्त करते हैं और दुनिया भर के स्थानों लोगों संस्कृतियों आदि सैकड़ों विषय के बारे में अपनी एक धारणा या छवि बना लेते हैं। हमारे मस्तिष्क में अनेक मौकों पर इस तरह छवियां वास्तविक भी हो सकती हैं और वास्तविकता से दूर भी हो सकती है। वस्तुपरकता का संबंध सीधे-सीधे पत्रकार के कर्त्तव्य से जुड़ा है। जहां तक वस्तुपरकता की बात है पत्रकार समाचार के लिए तथ्यों का संकलन और उसे प्रस्तुत करते हुए अपने आकलन को अपनी धारणाओं या विचारों से प्रभावित नहीं होने देना चाहिए क्योंकि वस्तुपरकता का संबंध हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक मूल्यों से कहीं अधिक है।

निष्पक्षता

पत्रकारिता सही और गलत, न्याय और अन्याय जैसे मसलों के बीच तटस्थ नहीं होना चाहिए बल्कि वह निष्पक्ष होते हुए सही एवं न्याय के साथ होना चाहिए। इसलिए पत्रकारिता का प्रमुख सिद्धान्त है उसका निष्पक्ष होना। पत्रकार को उसका शतप्रतिशत पालन करना जरूरी है तभी उसके समाचार संगठन की साख बनी रहेगी। पत्रकार को समाचार लिखते समय न किसी से दोस्ती न किसी से बैर वाले सिद्धांत को अपनाना चाहिए तभी वह समाचार के साथ न्याय कर पाएगा।

संतुलन

जब किसी समाचार के कवरेज पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह संतुलित नहीं है तो यहां यह बात सामने आती है कि समाचार किसी एक पक्ष

की ओर झुका हुआ है। यह ऐसे समाचार में सामने आती है जब किसी घटना में अनेक पक्ष शामिल हों और उनका आपस में किसी न किसी रूप में टकराव हो ऐसी स्थिति में पत्रकार को चाहिए कि संबद्ध पक्षों की बात समाचार में अपने-अपने समाचारीय महत्त्व के अनुसार स्थान देकर समाचार को संतुलित बनाना होगा। एक और स्थिति में जब किसी पर कोई किसी तरह के आरोप लगाए गए हों या इससे मिलती जुलती कोई स्थिति हो। उस स्थिति में निष्पक्षता और संतुलन की बात आती है।

ऐसे समाचारों में हर पक्ष की बात को रखना अनिवार्य हो जाता है अन्यथा एक पक्ष के लिए चरित्र हनन का हथियार बन सकता है। तीसरी स्थिति में व्यक्तिगत किस्म के आरोपों में आरोपित व्यक्ति के पक्ष को भी स्थान मिलना चाहिए। यह स्थिति तभी संभव हो सकती है जब आरोपित व्यक्ति सार्वजनिक जीवन में है और आरोपों के पक्ष में पक्के सबूत नहीं हैं। लेकिन उस तरह के समाचार में इसकी जरूरत नहीं होती है, जो घोषित अपराधी हों या गंभीर अपराध के आरोपी। संतुलन के नाम पर मीडिया इस तरह के तत्त्वों का मंच नहीं बन सकता है। दूसरी बात यह कि यह सिद्धांत सार्वजनिक मसलों पर व्यक्त किए जानेवाले विचारों और दृष्टिकोणों पर लागू नहीं किया जाना चाहिए।

स्रोत

समाचार में कोई सूचना या जानकारी होती है। पत्रकार उस सूचना एवं जानकारी के आधार पर समाचार तैयार करता है, लेकिन किसी सूचना का प्रारंभिक स्रोत पत्रकार नहीं होता है। आमतौर पर वह किसी घटना के घटित होने के समय घटनास्थल पर उपस्थित नहीं होता है। वह घटना के घटने के बाद घटनास्थल पर पहुँचता है इसलिए यह सब कैसे हुआ यह जानने के लिए उसे दूसरे स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है।

उस सूचना एवं जानकारी में क्या सही है, क्या असली घटना है, कौन शामिल है उसकी पूरी जानकारी के बिना यह अधूरा एवं एक पक्ष होती है, जो हमने पत्रकारिता के सिद्धांतों में यथार्थता, वस्तुपरकता, निष्पक्षता और संतुलन पर चर्चा करते हुए देखा है। किसी भी समाचार के लिए जरूरी सूचना एवं जानकारी प्राप्त करने के लिए समाचार संगठन एवं पत्रकार को कोई न कोई स्रोत की आवश्यकता होती है। यह समाचार स्रोत समाचार संगठन के या पत्रकार के अपने हाते हैं। स्रोतों में समाचार एजेंसियां भी आती हैं।

पत्रकारिता के क्षेत्र

अपराध पत्रकारिता

समाज में घटने वाली दैनिक घटनायें जैसे- लूट, डकैती, हत्या, बलात्कार, अपहरण, दुर्घटना आदि की कवरेज करने वाले को अपराध संवाददाता कहा जाता है। अपराध संवाददाता की समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अगर वह गलत तथ्य प्रस्तुत कर देता है, तो इससे समाज को काफी नुकसान भी हो सकता है। अगर अपराध संवाददाता अपने पेशे का सम्मान करते हुए समाज के सामने असलियत प्रस्तुत करने की हिम्मत करता है तो वह बेखौफ पत्रकार की ख्याति अर्जित कर लेता है।

राजनीतिक पत्रकारिता

किसी भी समाचार पत्र के लिए राजनीति की खबरें बेहद महत्त्वपूर्ण होती है इस समय अखबारों से लेकर टीवी चैनलों में राजनीति की खबरों को ज्यादा ही प्रमुखता दी जा रही है।

न्यायिक पत्रकारिता

अदालतों के समाचारों में सबसे अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होती हैं। न्यायिक कार्रवाई के समाचारों को लिखते समय विषेश रूप से ध्यान रखना होता है। जब तक किसी व्यक्ति पर अभियोग सिद्ध नहीं हो जाता है, वह अपराधी नहीं हो सकता है। इसलिए समाचार लिखते समय ध्यान रहे कि उसे अपराधी न लिखा जा सकता है। अपराधी तभी लिखा जाए जब मुकदमे के फैसले के बाद अपराध सिद्ध हो जाए। अपराध सिद्ध न होने तक उसे आरोपी या अभियुक्त लिखा जा सकता है। मुकदमे से पहले लिखाई गई रिपोर्ट के आधार पर भी समाचार लिखा जा सकता है, लेकिन इसमें सूत्र का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिये। शिकायतों, आरोपों, गिरफ्तारियों तथा कानूनी कागजों के आधार पर समाचार लिखे जा सकते हैं।

खेल पत्रकारिता

वर्तमान में खेलों के प्रति लोगों का रुझान अधिक बढ़ गया है। इसके चलते देश के प्रमुख समाचार पत्रों में एक या दो पृष्ठ खेल समाचारों के ही होते

हैं। इसमें सबसे अधिक समाचार क्रिकेट से संबंधित होते हैं। इसके अलावा हाकी, फुटबाल से लेकर जूडो, बास्केटबॉल, शतरंज, एथलैटिक्स, निशानेबाजी, बैडमिंटन, तैराकी, स्कीइंग, घुडदौड़, डॉग शो जैसे खेल मुख्य हैं। जिनसे संबंधित समाचार समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। इसलिए अब प्रत्येक अखबारों व चैनलों में खेल पत्रकार मांग बढ गयी है।

एक सफल खेल पत्रकार बनने के लिए खेल की समझ होना सबसे जरूरी है। खेल पत्रकारिता एक तरह की विशेषज्ञता पत्रकारिता है इसलिए यदि खेल पत्रकार को खेलों के नियम, प्रतियोगिताओं आदि की जानकारी नहीं होगी तो वे अच्छी रिर्पोटिंग कर ही नहीं सकता। एक अच्छा खेल पत्रकार बनने के लिए खेलों से जुड़ी शब्दावली व भाषा की समझ भी विकसित करनी पड़ती है।

साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रकारिता

शहर में कोई कलाकार आया हो, सांस्कृतिक कार्यक्रम हो रहे हों, रंगमंच की गतिविधियां हों, किसी मूर्तिकार की कृति पर लिखना हो तो यह कला व सास्कृतिक रिपोर्टर का काम है। इस बीट के रिपोर्टर को सांस्कृतिक संगठनों, सभागारों के प्रबंधकों, कला से जुडे लोगों से निरंतर संपर्क बनाये रखना होता है। इससे समय-समय पर आयोजित कार्यक्रमों की जानकारी मिल जाती है।

शिक्षा पत्रकारिता

विश्वविद्यालयों की गतिविधियों, कैंपस की हलचल, विभिन्न पाठयक्रमों से संबंधित जानकारी आदि की खबरें इस बीट की महत्त्वपूर्ण खबरें हो सकती हैं। इसके अलावा विद्यालयों में होने वाले आयोजन भी अपने आप में खबरें होती हैं। शिक्षा विभाग के नई योजनाओं के अलावा उनके क्रियान्वयन का तरीका, शिक्षक संगठनों की बैठकें और उनके आंदोलनों की खबरें भी शिक्षा बीट के रिपोर्टर को निरंतर मिलते रहती हैं। सरकारी स्कूलों की हालत कैसी है? क्या विभागीय मानकों के आधार पर सब ठीक-ठाक चल रहा है? सरकारी स्कूलों की शिक्षा प्रणाली के अलावा निजी स्कूलों के शिक्षा व्यवस्था पर भी खबरें बनायी जा सकती हैं।

बाल पत्रकारिता

बच्चों का ज्ञानवर्धन करने के साथ ही उनका मनोरंजन करने के लिए शिक्षाप्रद कहानियां लिखनी होती हैं। अब कुछ प्रमुख समाचार पत्र सप्ताह में एक

बार बच्चों के लिए कुछ न कुछ प्रकाशित करते रहते हैं। इसमें विज्ञान व तकनीकी की जानकारी होती है। जानवरों से संबंधित कहानियां होती हैं। स्वास्थ्य संबंधी टिप्स दिये होते हैं। इसके जरिये बच्चों को विश्व स्तरीय अनेक जानकारियां दिये जाने का प्रयास रहता है।

खोजी पत्रकारिता

खोजी पत्रकारिता को आरंभ करने का श्रेय अमेरिका के समाचार पत्र न्यूयार्क वर्ल्ड के संपादक जोसेफ पुलित्जर को दिया जाता है। पश्चिम में खोजी पत्रकारिता आज भी बहुत अधिक महत्त्व रखती है। भारत में अभी इसके और विस्तार की अत्याधिक सम्भावनाएं हैं।

विकास पत्रकारिता

पत्रकारिता केवल सीमित विषयों पर ही केन्द्रित नहीं रह गयी हैं। नई पत्रकारिता सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक संबंधी समग्र विकास के पहलुओं पर प्रकाश डालने वाली विकास पत्रकारिता है। विकास पत्रकारिता विकास पर आधारित होती है।

यह विकास चाहे उद्योग, औषधि, विज्ञान अथवा किसी अन्य क्षेत्र का हो अथवा मानव संसाधन का हो इस क्षेत्र में आता है। राज्य सरकारें अपनी विकास योजनाओं को जनता तक पहुँचाने के लिए पत्र तक निकालती हैं। इन योजनाओं को खबरों के माध्यम से भी किया जाता है।

ग्रामीण एवं कृषि पत्रकारिता

आकाशवाणी से प्रसारित ग्राम जगत, दूरदर्शन से प्रसारित कृषि जगत कार्यक्रम एवं कृषि से सम्बन्धित पत्रिकाएं ग्रामीण एवं कृषि पत्रकारिता से हमारा परिचय कराते हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है यहां की लगभग 70 प्रतिशत जनता गांव में निवास करती है और गांव की अधिकतम जनसंख्या कृषि पर निर्भर है।

भारत एक कृषि प्रधान देश तो है, लेकिन अत्यन्त विकास के बावजूद भी गांवों में आज तक पिछड़ेपन की झलक स्पष्ट नजर आती है। गांवों में नवीन चेतना और जागृति तथा विज्ञान के विकास के स्वरों को समाचार पत्र-पत्रिकाओं व जनसंचार माध्यमों द्वारा ही यहां तक पहुँचाया जा सकता है।

विज्ञान पत्रकारिता

आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। विज्ञान पत्रकारिता एक ऐसी कड़ी है, जो जन-जन को आकर्षित करती हुई मानव को विज्ञान से जोड़ देती है। तकनीकी, मानव द्वारा चन्द्रमा पर अवतरण, मानव-रहित अन्तरिक्ष यानों की सफलता, ऊर्जा के साधन, पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, मकान, वातावरण की रक्षा, कृषि आदि सभी विषय विज्ञान से सम्बन्धित है। विज्ञान से जुड़े समाचार, विचार का संकलन, संयोजन, लेखन, सम्पादन व प्रस्तुतीकरण विज्ञान पत्रकारिता है।

समय के साथ बदली हिन्दी पत्रकारिता

उदन्त-मार्तण्ड हिन्दी पत्रकारिता का विस्तार और विकास अभिभूत करनेवाला है। 30 मई, 1826 को पं. युगुल किशोर शुक्ल ने प्रथम हिन्दी समाचार पत्र उदन्त मार्तण्ड का प्रकाशन आरम्भ किया था। उदन्त मार्तण्ड इसलिए बंद हुआ कि उसे चलाने लायक पैसे पं युगुल किशोर शुक्ल के पास नहीं थे। उस दौर में किसी ने भी यह कल्पना नहीं की थी कि हिन्दी पत्रकारिता इतना लम्बा सफर तय करेगी। 190 वर्षों में हिन्दी अखबारों एवं हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में काफी तेजी आई है।

नई तकनीक और प्रौद्योगिकी ने अखबारों की ताकत और ऊर्जा का व्यापक विस्तार किया है। समय के साथ-साथ हिन्दी पत्रकारिता की प्रकृति, स्वरूप और व्यवहार में व्यापक बदलाव आया है। बदलाव के इस दौर में पत्रकारिता के क्षेत्र में दिन प्रतिदिन गिरावट आ रही है, जो चिंता का विषय है। बीते कुछ वर्षों में के दौरान हिन्दी पत्रकारिता की चुनौतियां बढ़ी हैं, वहीं मुक्त बाजार का कुप्रभाव भी इस पर देखने को मिला है। गुणवत्ता व विश्वसनीयता का संकट भी सामने खड़ा है।

उदारीकरण के बाद जिस तरह नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ, पत्रकारिता भी उससे अछूती नहीं रह पायी। पत्रकारिता में आये बदलाव के कारण पत्रकारिता की मिशनरी भावना पर बाजारवाद हावी हो गया। पत्रकारिता एक मिशन न होकर व्यवसाय में तब्दील गई। बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों ने इस क्षेत्र में कदम रख दिया है। जिनका उद्देश्य सिर्फ पैसा कमाना है। इस कारण से पत्रकारिता अपने मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन करने लगी है और उसने उत्तेजना, सनसनी और खुलेपन को पूरी तरह से अपना लिया है। वर्तमान दौर की

पत्रकारिता में तथ्यपरक्ता, यथार्थवादिता, निष्पक्षता, निर्भीकता, वस्तुनिष्ठता, सत्यनिष्ठा और संतुलन का अभाव दिखता है। संपादकीय विभाग की भूमिका गौण हो गई है और उसका स्थान मार्केटिंग विभाग ने ले लिया है। अखबारों को खबरों का गंभीर माध्यम बनाने के बजाय इन्हें लोक लुभावन बनाया जा रहा है। यहां भी जो बिकता है वहीं दिखता है वाली कहावत चरितार्थ होने लगी है। पैकेज पत्रकारिता के उद्‌भव के साथ ही अखबारों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगने लगा है।

पत्रकारिता लोकभावना की अभिव्यक्ति एवं नैतिकता की पीठिका है। भारत में पत्रकारिता की शुरूआत एक मिशन के रूप में हुई थी। स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि यहां के पत्रों एवं पत्रकारों ने ही तैयार की थी। आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता देशभक्ति और समग्र राष्ट्रीय चेतना के साथ जुड़ी रही। इसमें देशभक्ति के अलावा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना भी शामिल है। स्वाधीनता से पहले देश के लिए संघर्ष का समय था। इस संघर्ष में जितना योगदान राजनेताओं का था उससे तनिक भी कम पत्रों एवं पत्रकारों का नहीं था। स्वतंत्रता पूर्व का पत्रकारिता का इतिहास तो स्वतंत्रता आन्दोलन का मुख्य हिस्सा ही है।

तब पत्रकारिता घोर संघर्ष के बीच अपना अस्तित्त्व बचाये रखने के लिए प्रयत्नशील थी। व्यावसायिक विस्तार के साथ ही वह साख के संकट से गुजरने लगी है। कोई भी कारोबार पैसे के बगैर नहीं चलता। पर सूचना के माध्यमों की अपनी कुछ सीमाएं भी होतीं हैं। पत्रकारिता की सबसे बड़ी पूँजी उसकी साख है। यह साख ही पाठक पर प्रभाव डालती है। साख ही पत्रकारिता का प्राण है, लेकिन इसकी रक्षा तभी संभव है जब पूर्णरूप से निष्पक्ष समाचारों का प्रकाशन हो। पत्रकारिता कर यह दायित्व है कि वह सही और संतुलित खबरें पाठकों तक पहुँचाए।

यह बड़े अफसोस की बात है कि मुख्यधारा की मीडिया में भारत का वास्तविक चेहरा दिखलाई नहीं देता है। खबरों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया जाता है। मीडिया को वही दिखता है, जो उसके द्वारा तैयार बाजार पसंद करता है। जब तक प्रिंट की पत्रकारिता थी, पत्रकारिता में कुछ हद तक मिशनरी भावना बची हुई थी। पत्रकारिता के क्षेत्र में इलेक्ट्रोनिक मीडिया के आगमन से मिशन पूरी तरह से प्रोफेशन में बदल गया। मुख्यधारा की पत्रकारिता से मोहभंग की स्थिति है और विकल्पों की तलाश शुरू हुई हो गयी है। वैकल्पिक मीडिया के

रूप में अलग-अलग प्रयोग किये जाने लगे हैं। वेब पत्रकारिता और सोशल मीडिया का विस्तार ने पत्रकारिता को नया रूप दिया है। नागरिक आधारित पत्रकारिता के विभिन्न मंचों की सुगबुगाहट बढ़ रही है। इसके साथ ही नेटवर्किंग और सोशल साइट्स की उपस्थिति एक दीवानगी के रूप में बढ़ रही है। पत्रकारिता के क्षेत्र में चुनौती तो हमेशा रही है, लेकिन आज की पत्रकारिता पहले से अधिक चुनौतीपूर्ण है। जहाँ तक आंचलिक पत्रकारिता का सवाल है यह सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण है। जनसरोकारों से जुड़ी समस्याओं को प्राथमिकता देना आवश्यक और चुनौतीपूर्ण है, इस उत्तरदायित्व का निर्वहन करनेवाला ही सही मायने में पत्रकार है। अपनी कला, संस्कृति, परम्परा और मान्यता को बचाना हिंदी पत्रों और पत्रकारों का उत्तरदायित्व है।

मीडिया पर बढ़ते बाजारवाद और उपभोक्तावाद के कारण ही आम आदमी हाशिए पर है। आम लोगों की समस्याओं और जरूरतों के लिए मीडिया में जगह और सहानुभूति नहीं दिखलाई देती है। हर जगह पाठकों को हासिल करने की भीषण स्पर्धा दिखाई देती है। पत्रकारिता में ऐसे लोग आ गए हैं जिनका लक्ष्य सीधे-सीधे पैसा कमाना और पावर पाना है, उस पर एक सतर्क नजर रखने की भी जरूरत है। अब समय आ गया है कि पत्रकारिता की जवाबदेही तय की जाये और उसमें पारदर्शिता लायी जाये। साख बेचकर और पाठकों का विश्वास खोकर पत्रकारिता को बहुत दिनों तक जिंदा नहीं रखा जा सकता है।

2

हिन्दी भाषा का स्वरूप

हिन्दी जिसके मानकीकृत रूप को मानक हिंदी कहा जाता है, विश्व की एक प्रमुख भाषा है एवं भारत की एक राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर भारत में दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। यह हिन्दुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिन्दी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है क्योंकि भारत के संविधान में किसी भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया है। एथनोलॉग के अनुसार हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

भारत की जनगणना 2011 में 57.1% भारतीय जनसंख्या हिन्दी जानती है जिसमें से 43.63% भारतीय लोगों ने हिन्दी को अपनी मूल भाषा या मातृभाषा घोषित किया था। इसके अतिरिक्त भारत, पाकिस्तान और अन्य देशों में 14 करोड़ 10 लाख लोगों द्वारा बोली जाने वाली उर्दू, व्याकरण के आधार पर हिन्दी के समान है, एवं दोनों ही हिन्दुस्तानी भाषा की परस्पर-सुबोध्य रूप हैं। एक विशाल संख्या में लोग हिन्दी और उर्दू दोनों को ही समझते हैं।

भारत में हिन्दी, विभिन्न भारतीय राज्यों की 14 आधिकारिक भाषाओं और क्षेत्र की बोलियों का उपयोग करने वाले लगभग 1 अरब लोगों में से अधिकांश की दूसरी भाषा है। हिन्दी भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य करती है और कुछ हद तक पूरे भारत में सामान्यत: एक सरल रूप में समझी जानेवाली भाषा है। कभी-कभी 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग नौ भारतीय राज्यों के सन्दर्भ में भी उपयोग

किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिन्दी है और हिन्दी भाषी बहुमत है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखण्ड, जम्मू और कश्मीर (2020 से) उत्तर प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिन्दी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात में भी हिन्दी या इसकी मान्य बोलियों का उपयोग करने वाले लोगों की बड़ी संख्या मौजूद है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

'देशी', 'भाखा' (भाषा), 'देशना वचन' (विद्यापति), 'हिन्दवी', 'दक्खिनी', 'रेखता', 'आर्यभाषा' (दयानन्द सरस्वती), 'हिन्दुस्तानी', 'खड़ी बोली', 'भारती' आदि हिन्दी के अन्य नाम हैं, जो विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में एवं विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी, यूरोपीय भाषा-परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द ईरानी शाखा की हिन्द आर्य उपशाखा के अन्तर्गत वर्गीकृत है।

हिन्दी भाषा का इतिहास

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना गया है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही 'पद्य' रचना प्रारम्भ हो गयी थी। हिन्दी भाषा व साहित्य के जानकार अपभ्रंश की अंतिम अवस्था 'अवहट्ट' से हिन्दी का उद्भव स्वीकार करते हैं। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने इसी अवहट्ट को 'पुरानी हिन्दी' नाम दिया।

साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, धर्म, नीति, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राजाश्रित कवि और चारण नीति, शृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शौरसेनी अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने 'देसी भाषा' कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि 'हिन्दी' शब्द

का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था। इस शब्द से उनका तात्पर्य 'भारतीय भाषा' का था।

हिंदी भाषा के स्वरूप

अब, आगे हम हिंदी भाषा के उन स्वरूपों से परिचय करना चाहेंगे जो इनके प्रकृतिगत रूप हैं और प्रयोगपरक रूप अर्थात प्रयोजनपरक अथवा व्यवसायगत रूप हैं।

1 . हिंदी के प्रकृतिक रूप पाँच हैं

(क) मातृभाषा हिंदी–हिंदी का मातृभाषिक प्रदेश दिल्ली और दिल्ली से लगा उत्तर प्रदेश का जिला मेरठ मात्र है। वस्तुत: मातृभाषा वह भाषा है जिसे व्यक्ति अपनी माता की गोद में सीखता है, अर्थात् उसे माँ-बाप, उसे अड़ोस-पड़ोस, उसके अपने संस्कार की भाषा मातृभाषा होती है। मातृभाषा की पहचान के संबंध में गुलाब राय ने अपने लेख "मातृभाषा की महत्ता" में लिखा है कि यदि किसी की मातृभाषा का पता करना हो और, यह किसी भी प्रकार पता नहीं चल पाए तो अचानक पीछे से उसकी पीठ पर मुक्का मारो। ऐसी स्थिति में जिस भाषा में वह अपनी आह व्यक्त करे वहीं उसकी मातृभाषा होगी। कारण, कोई कितना भी विदेशी भाषा का ज्ञान रखने वाला हो, अतिशय सुख अथवा अतिशय दु:ख की अवस्था में वह अपनी मातृभाषा में ही अपने हृदय का भाव व्यक्त करेगा।

यह एक अजीब-सी बात देखने को मिलती है कि जो हिंदी मातृभाषा के रूप में मात्र दिल्ली और उससे लगे मेरठ जिले एवं उसके आसपास के एक छोटे से भू-भाग में प्रयोग में रही, द्वितीय भाषा के रूप में लगभग सारे भारत के विस्तार में प्राजल संपर्क का एकमात्र साधन बन चुकी है।

(ख) संपर्क भाषा हिंदी–एक भाषा भाषी जिसे भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ संपर्क स्थापित कर सके, उसे संपर्क भाषा कहते हैं। ऐसी भाषा मात्र दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा भाषियों के बीच संपर्क का माध्यम नहीं बनती जो एक-दूसरे की भाषा से परिचित नहीं हैं, अपितु दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषाभाषी राज्यों के बीच तथा केंद्र और राज्यों के बीच भी संपर्क स्थापित करने का माध्यम बन सकती है। भारत के ही प्राचीन इतिहास पर यदि हम नजर डालते हैं तो पाते हैं कि यहाँ हर युग

में राष्ट्र की एक प्रमुख भाषा संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वाह करती रही है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌भव और विकास से पहले संपर्क भाषा की इसी परंपरा के क्रम में हम संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का प्राजल प्रयोग पाते हैं। बाद में, मुगल शासन, देशी राजाओं और अंग्रेजी शासन काल में हिंदी को संपूर्ण रूप से तो नहीं, किंतु आंशिक रूप से संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार किया गया। आजादी की लड़ाई के समय में गाँधी और सुभाष जैसे गैर हिंदी भाषी नेताओं ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति संदेश देने और दो भिन्न-भाषियों के बीच संपर्क के लिए हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया। आजादी के बाद हमारी यहां हिंदी देश की सर्वमान्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

(ग) राष्ट्र भाषा हिंदी–राष्ट्रभाषा का अर्थ है राष्ट्र की भाषा। इस तरह राष्ट्र की जितनी भी भाषाएं हैं, सभी राष्ट्रभाषा हैं। फल्स्वरूप भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं के अतिरिक्त देश की दर्जनों अन्य भाषाएं भी जो अपने-अपने क्षेत्रों में लोक सम्प्रेषण के माध्यम हैं हमारी राष्ट्र भाषाएं है। यही कारण है कि भारत के संविधान में इनमें से किसी भी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के नाम से अभिहित नहीं किया गया है।

यही राजभाषा, संघभाषा अथवा संपर्क भाषा जैसे शब्दों का ही व्यवहार हुआ है। परंतु इतना होते हुए भी एक विशिष्ट अर्थ में राष्ट्रभाषा की संकल्पना और उसकी सार्थकता से हम इन्कार नहीं कर सकते और इस सार्थकता एवं यथार्थता के हकदार भी अपनी स्थिति के चलते हिंदी हो रही है।

राजभाषा अथवा संपर्क भाषा अपनी एक सीमा में परिधि में बंधी है, परन्तु, उस परिधि की सीमा के आर-पार विस्तृत व्यापक आयामों में परिव्याप्त, राष्ट्र के प्रशासन समस्त कार्य व्यापार, व्यवसाय रीति-नीति तकनीक तथा संस्कृति और परंपरा को अभिव्यक्ति देने वाली तथा विश्व के विभिन्न देशों तक इन्हें पहुँचाने में समर्थ राष्ट्र की एक सुगम सुबोध एवं सशक्त भाषा राष्ट्र भाषा होती है।

भारत में इस रूप में राष्ट्रभाषा के स्वरूप में भी हिंदी स्वभावत: प्रतिष्ठित है। वस्तुत: राष्ट्रभाषा राष्ट्र की वह भाषा होती है, जो अपने व्यापक परिवेश और विकासोन्मुख प्रवर्धमान शक्तियों के चलते अपनी क्षेत्रीयता की सीमा से उपर उठते हुए देश के विभिन्न क्षेत्रों संवेदन स्पंदन को अपनी आत्मा में समेट कर उसे प्रकाश, अभिव्यक्ति देती है, और जो विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न भाषा भाषियों के बीच भावनात्मक ऐक्य स्थापित करने में सेतु का काम करता है। हिंदी

इन दोनों ही दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रही है, और इसलिए इसकी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा किसी कृत्रिम प्रयास का नहीं, स्वाभाविक गति का परिणाम है–

(घ) राजभाषा हिंदी–राजभाषा का अर्थ है वह भाषा जो राजकाज. प्रशासन–तंत्र के कार्य के संपादन को गतिविधि की कार्यकलापों की भाषा हो जैसे हर देश के अपने प्रतीक स्वरूप झंडे होते है और उसे राष्ट्रध्वज के नाम से पुकारते हैं, उसी तरह हर देश की समग्रता की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में सार्वदेशिक स्वरूप रखनेवाली उसकी राजकीय गतिविधि के संपादन की एक भाषा भी होती है और उस भाषा को राजभाषा की संज्ञा दी जाती है।

परंतु ऐसे संघ राष्ट्रों में जहां देश राष्ट के भिन्न–भिन्न राज्यों का अलग–अलग राजभाषाएं है वहां भाषा संघ की राजभाषा होती है, जो आमतौर पर समस्त देश में अथवा देश के अधिकांश भागों में परस्पर भिन्न–भिन्न भाषभाषियों के बीच संपर्क माध्यम का कार्य तो करती ही है , देश की शिक्षा, देश का ज्ञान–विज्ञान, रीति–नीति, कला संस्कृति आदि से संबंधित समस्त कार्यव्यापारी का निर्वाह भी करती है। हिंदी बखूबी इन दायित्वों का निर्वाह करती है। यह आजादी से पहले मुगल शासन काल में और अंग्रेजी शासन काल में अनेक देशी राजाओं के राज्य की राजभाषा देश के व्यापक क्षेत्रों की संपर्क भाषा तथा मुगल एवं अंग्रेजी शासन में ऊपरी तौर पर द्वितीय राजभाषा की तरह प्रयोग की जाती रही।

आजादी की लड़ाई में इसे विभिन्न भाषाभाषी सेनानियों के बीच भावों विचारों एवं कार्ययोजनाओं के संपादन के लिए संपर्क भाषा के रूप में अपनाया गया। यही कारण था कि संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को इस प्राजल भारतीय संपर्क भाषा एवं राष्ट्रभाषा को संघ की राजभाषा बनाने का संकल्प पारित किया। भारत के संविधान के अनुसार "देवनागरी लिपि में हिंदी संघ की राजभाषा होगी।"

वस्तुत: संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित देश की बाइसों (22) भाषाएं देश की राजभाषाएं है। परंतु जब हम पूरे देश को ध्यान में रखकर राजभाषा की चर्चा करते हैं तो उसका एकमात्र अर्थ होता है संघ की राजभाषा जो संघ के प्रशासनिक कार्यों संघ और राज्यों के बीच संपर्क तथा अपने देश का दूसरों देशों के साथ राजनायिक संबंध और परस्पर आदान–प्रदान के माध्यम के रूप में प्रायुक्त होता है। यही हिंदी भारत के संघ की राजभाषा है।

(ङ) बहुराष्ट्रीय भाषा हिंदी अथवा विश्वात्मक भाषा हिंदी–बहुराष्ट्रीय भाषा अथवा विश्वात्मक भाषा से उस भाषा का बोध होता है, जो एक से अधिक देशें में प्रयोग किया जाता है। हिंदी गुयाना, फिजी, सूरीनाम, मॉरीशस त्रिनिदाद आदि अनेक देशों में बहुसंख्यक जनता के बीच संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। भारत के पड़ोसी देश नेपाल, बर्मा, श्रीलंका आदि के अतिरिक्त इंग्लैंड अमेरिका, कनाडा, अफ्रीका, आदि देशों में का भी संख्या में एशियाई लोग हैं जिनके बीच हिंदी संपर्क भाषा है।

मुस्लिम देशों में तो हिंदी इतनी परिचित एवं सुलभ है कि वे अनेक हिंदी सीरियल बड़े चाव से और नियमित रूप से देखते हैं। विश्व के अधिकांश बड़े देशों में विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का पाठ्यक्रम है और उसमें काफी छात्र-छात्राएं अध्ययनरत है। आज. विश्वात्मक गणना के आधार पर हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली समझी जाने वाली भाषाओं में पहले स्थान पर है। तात्पर्य यह है कि विश्व में किसी एक भाषा बोलने-समझने वालों में हिंदी बोलने समझने वाले सर्वाधिक लोग है।

भारत में औद्योगिक उदारीकरण के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन और उनके द्वारा इस देश में अपने व्यवसाय के प्रसार के उद्देश्य से देश की व्यापक जन भाषा हिंदी को व्यावसायिक संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग तथा टी.वी चैनलों क्षरा हिंदी के अनेक कार्यक्रमों का एक साथ भारत अरब इंग्लैंड, अमेरिका आदि में प्रसारण से पहले विश्व के अनेक देशों में हिंदी का प्रयोग होने की जानकारी के बावजूद इस भाषा के बहुराष्ट्रीय भाषिक स्वरूप अथवा यूँ कहें कि विश्वात्मक स्वरूप से आमतौर पर इस देश के बुद्धिजीवी भी परिचित नहीं थे।

विश्व स्तर पर सबसे अधिक लोगों द्वारा जानी समझी जाने वाली भाषाओं के बीच प्रथम स्थान ग्रहण करने के पश्चात भी हमारे पढ़े-लिखे भारतीय की मानस दशा कुछ ऐसी हो चुकी है कि हम बुद्धिजीवी भी हिंदी के विश्वात्मक स्वरूप को अपने मानस-पटल पर उतार पाने में बड़ी कठिनाई अनुभव कर रहे हैं, जन सामान्य की तो बात ही क्या? फिर भी आज हिंदी के विश्वात्मक प्रकृति से हम अपना पल्ला नहीं झाड़ सकते, न ही इस तथ्य को झुठला सकते है।

हिन्दी भाषा के विविध रूप

1. बोलचाल की भाषा

'बोलचाल की भाषा' को समझने के लिए 'बोली' (Dialect) को समझना जरूरी है। 'बोली' उन सभी लोगों की बोलचाल की भाषा का वह मिश्रित रूप है जिनकी भाषा में पारस्परिक भेद को अनुभव नहीं किया जाता है। विश्व में जब किसी जन-समूह का महत्त्व किसी भी कारण से बढ़ जाता है तो उसकी बोलचाल की बोली 'भाषा' कही जाने लगती है, अन्यथा वह 'बोली' ही रहती है। स्पष्ट है कि 'भाषा' की अपेक्षा 'बोली' का क्षेत्र, उसके बोलने वालों की संख्या और उसका महत्त्व कम होता है। एक भाषा की कई बोलियाँ होती हैं क्योंकि भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है।

जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारस्परिक सम्पर्क होता है, तब बोलचाल की भाषा का प्रसार होता है। आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुई आपसी व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से भी जाना जाता है। यह भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है।

2. मानक भाषा

भाषा के स्थिर तथा सुनिश्चित रूप को मानक या परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। भाषाविज्ञान कोश के अनुसार 'किसी भाषा की उस विभाषा को परिनिष्ठित भाषा कहते हैं, जो अन्य विभाषाओं पर अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता स्थापित कर लेती है तथा उन विभाषाओं को बोलने वाले भी उसे सर्वाधिक उपयुक्त समझने लगते हैं।

मानक भाषा शिक्षित वर्ग की शिक्षा, पत्राचार एवं व्यवहार की भाषा होती है। इसके व्याकरण तथा उच्चारण की प्रक्रिया लगभग निश्चित होती है। मानक भाषा को टकसाली भाषा भी कहते हैं। इसी भाषा में पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन होता है। हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत तथा ग्रीक इत्यादि मानक भाषाएँ हैं।

किसी भाषा के मानक रूप का अर्थ है, उस भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, उस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता है। मानकता अनेकता में एकता की खोज है, अर्थात यदि किसी लेखन या भाषिक इकाई में विकल्प न हो तब तो वही मानक होगा, किन्तु यदि विकल्प हो तो अपवादों की बात छोड़ दें तो कोई एक मानक होता है। जिसका प्रयोग उस भाषा के अधिकांश शिष्ट लोग

करते हैं। किसी भाषा का मानक रूप ही प्रतिष्ठित माना जाता है। उस भाषा के लगभग समूचे क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग होता है। मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। मानक भाषा को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि समाज में एक वर्ग मानक होता है, जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा समाज में उसी का बोलना-लिखना, उसी का खाना-पीना, उसी के रीति-रिवाज अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलतः उसी वर्ग की भाषा होती है।

3. सम्पर्क भाषा

अनेक भाषाओं के अस्तित्त्व के बावजूद जिस विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है उसे सम्पर्क भाषा कहते हैं। एक ही भाषा परिपूरक भाषा और सम्पर्क भाषा दोनों ही हो सकती है। आज भारत में सम्पर्क भाषा के तौर पर हिन्दी प्रतिष्ठित होती जा रही है जबकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी सम्पर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। सम्पर्क भाषा के रूप में जब भी किसी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा के पद पर आसीन किया जाता है तब उस भाषा से कुछ अपेक्षाएँ भी रखी जाती हैं।

जब कोई भाषा 'lingua franca' के रूप में उभरती है तब राष्ट्रीयता या राष्ट्रता से प्रेरित होकर वह प्रभुतासम्पन्न भाषा बन जाती है। यह तो जरूरी नहीं कि मातृभाषा के रूप में इसके बोलने वालों की संख्या अधिक हो पर द्वितीय भाषा के रूप में इसके बोलने वाले बहुसंख्यक होते हैं।

4. राजभाषा

जिस भाषा में सरकार के कार्यों का निष्पादन होता है उसे राजभाषा कहते हैं। कुछ लोग राष्ट्रभाषा और राजभाषा में अन्तर नहीं करते और दोनों को समानार्थी मानते हैं। लेकिन दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। राष्ट्रभाषा सारे राष्ट्र के लोगों की सम्पर्क भाषा होती है जबकि राजभाषा केवल सरकार के कामकाज की भाषा है। भारत के संविधान के अनुसार हिन्दी संघ सरकार की राजभाषा है। राज्य सरकार की अपनी-अपनी राज्य भाषाएँ हैं। राजभाषा जनता और सरकार के बीच एक सेतु का कार्य करती है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की उसकी अपनी स्थानीय

राजभाषा उसके लिए राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान का प्रतीक होती है। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों की अपनी स्थानीय भाषाएँ राजभाषा हैं। आज हिन्दी हमारी राजभाषा है।

5. राष्ट्रभाषा

देश के विभिन्न भाषा-भाषियों में पारस्परिक विचार-विनिमय की भाषा को राष्ट्रभाषा कहते हैं। राष्ट्रभाषा को देश के अधिकतर नागरिक समझते हैं, पढ़ते हैं या बोलते हैं। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस देश के नागरिकों के लिए गौरव, एकता, अखंडता और अस्मिता का प्रतीक होती है। महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा को राष्ट्र की आत्मा की संज्ञा दी है। एक भाषा कई देशों की राष्ट्रभाषा भी हो सकती है, जैसे अंग्रेजी आज अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा कनाडा इत्यादि कई देशों की राष्ट्रभाषा है। संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा तो नहीं दिया गया हे लेकिन इसकी व्यापकता को देखते हुए इसे राष्ट्रभाषा कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में राजभाषा के रूप में हिन्दी, अंग्रेजी की तरह न केवल प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा है, बल्कि उसकी भूमिका राष्ट्रभाषा के रूप में भी है। वह हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा है। महात्मा गांधी जी के अनुसार किसी देश की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो, जिसको बोलने वाले बहुसंख्यक हों और जो पूरे देश के लिए सहज रूप में उपलब्ध हो। उनके अनुसार भारत जैसे बहुभाषी देश में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के निर्धारित अभिलक्षणों से युक्त है। उपर्युक्त सभी भाषाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। इसलिए यह प्रश्न निरर्थक है कि राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा आदि में से कौन सर्वाधिक महत्त्व का है, जरूरत है हिन्दी को अधिक व्यवहार में लाने की।

शैलियाँ

भाषाशास्त्र के अनुसार हिन्दी के चार प्रमुख रूप या शैलियाँ हैं–

(1) मानक हिन्दी – हिन्दी का मानकीकृत रूप, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसमें संस्कृत भाषा के कई शब्द है, जिन्होंने फारसी और अरबी के कई शब्दों की जगह ले ली है। इसे शुद्ध हिन्दी भी कहते हैं। आजकल इसमें अंग्रेजी के भी कई शब्द आ गये हैं (विशेष तौर पर बोलचाल की भाषा में)। यह खड़ीबोली पर आधारित है, जो दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती थी।

(2) दक्खिनी - उर्दू-हिन्दी का वह रूप जो हैदराबाद और उसके आसपास की जगहों में बोला जाता है। इसमें फारसी-अरबी के शब्द उर्दू की अपेक्षा कम होते हैं।

(3) रेख्ता - उर्दू का वह रूप जो शायरी में प्रयुक्त होता था।

(4) उर्दू - हिन्दवी का वह रूप जो देवनागरी लिपि के बजाय फारसी-अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं, और फारसी-अरबी के शब्द अधिक। यह भी खड़ीबोली पर ही आधारित है।

हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा कहा जाता है। हिन्दुस्तानी मानकीकृत हिन्दी और मानकीकृत उर्दू के बोलचाल की भाषा है। इसमें शुद्ध संस्कृत और शुद्ध फारसी-अरबी दोनों के शब्द कम होते हैं और तद्भव शब्द अधिक। उच्च हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा है (अनुच्छेद 343, भारतीय संविधान)। यह इन भारतीय राज्यों की भी राजभाषा है–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली।

इन राज्यों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पंजाब और हिन्दी भाषी राज्यों से लगते अन्य राज्यों में भी हिन्दी बोलने वालों की अच्छी संख्या है। उर्दू पाकिस्तान की और भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर की राजभाषा है, इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, तेलंगाना और दिल्ली में द्वितीय राजभाषा है। यह लगभग सभी ऐसे राज्यों की सह-राजभाषा है, जिनकी मुख्य राजभाषा हिन्दी है।

हिन्दी एवं उर्दू

भाषाविद हिन्दी ब्लॉग एवं उर्दू को एक ही भाषा समझते है। हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और शब्दावली के स्तर पर अधिकांशतः संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करती है। उर्दू, नास्तिलिक लिपि में लिखी जाती है और शब्दावली के स्तर पर फारसी और अरबी भाषाओं का प्रभाव अधिक है। हालाँकि व्याकरणिक रूप से उर्दू और हिन्दी में कोई अन्तर नहीं है मगर कुछ विशेष क्षेत्रों में शब्दावली के स्रोत (जैसा कि ऊपर लिखा गया है) में अन्तर है। कुछ विशेष ध्वनियाँ उर्दू में अरबी और फारसी से ली गयी हैं और इसी प्रकार फारसी और अरबी की कुछ विशेष व्याकरणिक संरचनाएँ भी प्रयोग की जाती हैं। उर्दू और हिन्दी को खड़ीबोली की दो आधिकारिक शैलियाँ हैं।

मानकीकरण

हिंदी भारतीय गणराज की राजकीय और मध्य भारतीय- आर्य भाषा है। सन 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं, जबकि लगभग 42.20 करोड़ लोग इसकी 50 से अधिक बोलियों में से एक इस्तेमाल करते हैं। सन 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था

मानक भाषा

मानक का अभिप्राय है–आदर्श, श्रेष्ठ अथवा परिनिष्ठित। भाषा का जो रूप उस भाषा के प्रयोक्ताओं के अलावा अन्य भाषा-भाषियों के लिए आदर्श होता है, जिसके माध्यम से वे उस भाषा को सीखते हैं, जिस भाषा-रूप का व्यवहार पत्राचार, शिक्षा, सरकारी काम-काज एवं सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में समान स्तर पर होता है, वह उस भाषा का मानक रूप कहलाता है। मानक भाषा किसी देश अथवा राज्य की वह प्रतिनिधि तथा आदर्श भाषा होती है, जिसका प्रयोग वहाँ के शिक्षित वर्ग के द्वारा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यापारिक व वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में किया जाता है। किसी भाषा का बोलचाल के स्तर से ऊपर उठकर मानक रूप ग्रहण कर लेना, उसका मानकीकरण कहलाता है। मानकीकरण (मानक भाषा के विकास) के तीन सोपान निम्नलिखित हैं-

प्रथम सोपान- 'बोली'

पहले स्तर पर भाषा का मूल रूप एक सीमित क्षेत्र में आपसी बोलचाल के रूप में प्रयुक्त होने वाली बोली का होता है, जिसे स्थानीय, आंचलिक अथवा क्षेत्रीय बोली कहा जा सकता है। इसका शब्द भंडार सीमित होता है। कोई नियमित व्याकरण नहीं होता। इसे शिक्षा, आधिकारिक कार्य-व्यवहार अथवा साहित्य का माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

द्वितीय सोपान- 'भाषा'

वही बोली कुछ भौगोलिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक व प्रशासनिक कारणों से अपना क्षेत्र विस्तार कर लेती है, उसका लिखित रूप विकसित होने

लगता है और इसी कारण से वह व्याकरणिक साँचे में ढलने लगती है, उसका पत्राचार, शिक्षा, व्यापार, प्रशासन आदि में प्रयोग होने लगता है, तब वह बोली न रहकर 'भाषा' की संज्ञा प्राप्त कर लेती है।

मतृतीय सोपान- 'मानक भाषा'

यह वह स्तर है जब भाषा के प्रयोग का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। वह एक आदर्श रूप ग्रहण कर लेती है। उसका परिनिष्ठित रूप होता है। उसकी अपनी शैक्षणिक, वाणिज्यिक, साहित्यिक, शास्त्रीय, तकनीकी एवं कानूनी शब्दावली होती है। इसी स्थिति में पहुँचकर भाषा 'मानक भाषा' बन जाती है। उसी को 'शुद्ध', 'उच्च-स्तरीय', 'परिमार्जित' आदि भी कहा जाता है।

मानक भाषा के तत्त्व
ऐतिहासिकता,
स्वायत्तता,
केन्द्रोन्मुखता,
बहुसंख्यक प्रयोगशीलता,
सहजता/बोधगम्यता,
व्याकरणिक साम्यता,
सर्वविध एकरूपता।

मानकीकरण का एक प्रमुख दोष यह है कि मानकीकरण करने से भाषा में स्थिरता आने लगती है। जिससे भाषा की गति अवरुद्ध हो जाती है।

महत्त्वपूर्ण कदम

राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' ने क ख ग ज फ पाँच अरबी–फारसी ध्वनियों के लिए चिह्नों के नीचे नुक्ता लगाने का रिवाज आरम्भ किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'हरिश्चन्द्र मैंगजीन' के जरिये खड़ी बोली को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया। अयोध्या प्रसाद खत्री ने प्रचलित हिन्दी को 'ठेठ हिन्दी' की संज्ञा दी और ठेठ हिन्दी का प्रचार किया। उन्होंने खड़ी बोली को पद्य की भाषा बनाने के लिए आंदोलन चलाया। हिन्दी भाषा के मानकीकरण की दृष्टि से द्विवेदी युग (1900-20) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण युग था। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली के मानकीकरण का सवाल सक्रिय रूप से और एक आंदोलन के रूप में उठाया। युग निर्माता

द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' पत्रिका के जरिये खड़ी बोली हिन्दी के प्रत्येक अंग को गढ़ने-सँवारने का कार्य खुद तो बहुत लगन से किया ही, साथ ही अन्य भाषा-साधकों को भी इस कार्य की ओर प्रवृत्त किया। द्विवेदीजी की प्रेरणा से कामता प्रसाद गुरु ने 'हिन्दी व्याकरण' के नाम से एक वृहद व्याकरण लिखा।

छायावादी युग (1918-1937) व छायावादोत्तर युग (1936 के बाद) में हिन्दी के मानकीकरण की दिशा में कोई आंदोलनात्मक प्रयास तो नहीं हुआ, किन्तु भाषा का मानक रूप अपने आप स्पष्ट होता चला गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद (1947 के बाद) हिन्दी के मानकीकरण पर नये सिरे से विचार-विमर्श शुरू हुआ, क्योंकि संविधान ने इसे राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया, जिससे हिन्दी पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ पड़ा। इस दिशा में दो संस्थाओं का विशेष योगदान रहा-इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के माध्यम से 'भारतीय हिन्दी परिषद' का तथा शिक्षा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का।

भारतीय हिन्दी परिषद

भाषा के सर्वांगीण मानकीकरण का प्रश्न सबसे पहले 1950 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने ही उठाया। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई, जिसमें डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. ब्रजेश्वर शर्मा, डॉ. माता प्रसाद गुप्त आदि सदस्य थे। धीरेन्द्र वर्मा ने 'देवनागरी लिपि चिह्नों में एकरूपता', हरदेव बाहरी ने 'वर्ण विन्यास की समस्या', ब्रजेश्वर शर्मा ने 'हिन्दी व्याकरण' तथा माता प्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी शब्द-भंडार का स्थिरीकरण' विषय पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने लिपि के मानकीकरण पर अधिक ध्यान दिया और देवनागरी लिपि तथा 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' (1983 ई.) का प्रकाशन किया।

विश्व हिन्दी सम्मेलन

उद्देश्य-संयुक्त राष्ट्र की भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिलाना व हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना।

हिंदी की उपभाषाएँ

हिंदी की उपभाषा को 5 उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं –
पश्चिमी हिंदी,
पूर्वी हिंदी,
बिहारी हिंदी,
राजस्थानी हिंदी,
पहाड़ी हिंदी।
पश्चिमी हिंदी

पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। उत्तरांचल प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र-विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यत: पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

कौरवी – प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी-बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी-बोली हिंदी का पर्याय रूप है। वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फर नगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ.प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुना नगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

ब्रजभाषा – इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है।

हरियाणवी – इसे बाँगारू या हरियानी नाम भी दिया जाता है। हरियाणा की सीमा उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

कन्नौजी – इसका प्रयोग फर्रूखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत हैं इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रयोग होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य है। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

बुंदेली - बुंदेलखंड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गयी हैं इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

पूर्वी हिंदी

पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग प्राचीन कोशल राज्य के उत्तरी-दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य प्रदेश के जबलपुर, रीवाँ आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं।

यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियाँ हैं - अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

अवधी -'अवध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है।

बघेली - इस बोली का केन्द्र रीवाँ हैं। मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है।

छत्तीसगढ़ - 'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है।

बिहारी हिंदी

बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्‌भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है।

भोजपुरी -भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में पूर्ण या आशिंक रूप में और बिहार के छपरा, चम्पारन तथा सारन में प्रयोग होता है।

मैथिली - मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरनगर, मुंगेर और भागलपुर में होता है।

मगही – 'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके नाम की इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है।

राजस्थानी हिंदी

राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं। राजस्थानी में चार प्रमुख बोलियों के रूप मिलते हैं- मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी।

मेवाती –मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर-पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है।

जयपुरी –इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और में होता है।

मारवाड़ी – राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुरानी मारवाड़ी डिंगल कहते थे।

मालवी- मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं।

पहाड़ी हिंदी

इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है – पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

पश्चिमी पहाड़ी- इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती है। यहाँ की बोलियों की संख्या तीस से अधिक है। ये मुख्यत: टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं।

मध्य पहाड़ी- नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते है। इसमें समृद्ध लोक-साहित्य और संक्षिप्त-साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

बोलियाँ

हिन्दी का क्षेत्र विशाल है तथा हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यन्त उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना भी हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। ये बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परम्परा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतन्त्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के विरुद्ध भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, बघेली, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि। किन्तु हिन्दी के मुख्य दो भेद हैं - पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी।

लिपि

हिन्दी को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। इसे नागरी के नाम से भी जाना जाता है। देवनागरी में 11 स्वर और 33 व्यंजन हैं। इसे बाईं से दाईं ओर लिखा जाता है।

शब्दावली

हिन्दी शब्दावली में मुख्यत: चार वर्ग हैं।

तत्सम शब्द- ये वे शब्द हैं जिनको संस्कृत से बिना कोई रूप बदले ले लिया गया है। जैसे अग्नि, दुग्ध दन्त, मुख। (परन्तु हिन्दी में आने पर ऐसे शब्दों से विसर्ग का लोप हो जाता है जैसे संस्कृत 'नाम:' हिन्दी में केवल 'नाम' हो जाता है।)।

तद्भव शब्द- ये वे शब्द हैं जिनका जन्म संस्कृत या प्राकृत में हुआ था, लेकिन उनमें बहुत ऐतिहासिक बदलाव आया है। जैसे–आग, दूध, दाँत, मुँह।

देशज शब्द- देशज का अर्थ है - 'जो देश में ही उपजा या बना हो'। तो देशज शब्द का अर्थ हुआ जो न तो विदेशी भाषा का हो और न किसी दूसरी भाषा के शब्द से बना हो। ऐसा शब्द जो न संस्कृत का हो, न संस्कृत-शब्द का अपभ्रंश हो। ऐसा शब्द किसी प्रदेश (क्षेत्र) के लोगों द्वारा बोल-चाल में यों ही बना लिया जाता है। जैसे- खटिया, लुटिया।

विदेशी शब्द- इसके अतिरिक्त हिन्दी में कई शब्द अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि से भी आये हैं। इन्हें विदेशी शब्द कहते हैं। जिस हिन्दी में अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्द लगभग पूर्ण रूप से हटा कर तत्सम शब्दों को ही प्रयोग में लाया जाता है, उसे 'शुद्ध हिन्दी' या 'मानकीकृत हिन्दी' कहते हैं।

विश्व हिन्दी सम्मेलन

विश्व हिन्दी सम्मेलन हिन्दी भाषा का सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन है, जिसमें विश्व भर से हिन्दी विद्वान, साहित्यकार, पत्रकार, भाषा विज्ञानी, विषय विशेषज्ञ तथा हिन्दी प्रेमी शामिल होते हैं। 'विश्व हिंदी सम्मेलन' की संकल्पना 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा द्वारा 1973 में की गई थी। संकल्पना के फलस्वरूप 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा के तत्त्वावधान में 'प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन' 10-12 जनवरी, 1975 को नागपुर, भारत में आयोजित किया गया था।

शुरुआत

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की राष्ट्रभाषा के प्रति जागरुकता पैदा करने, समय-समय पर हिन्दी की विकास यात्रा का आकलन करने, लेखक व पाठक दोनों के स्तर पर हिन्दी साहित्य के प्रति सरोकारों को और दृढ़ करने, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने तथा हिन्दी के प्रति प्रवासी भारतीयों के भावुकतापूर्ण व महत्त्वपूर्ण रिश्तों को और अधिक गहराई व मान्यता प्रदान करने के उद्देश्य से ही 1975 में 'विश्व हिन्दी सम्मेलनों' कीशृंखला शुरू हुई। इस बारे में पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने पहल की थी। पहला 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के सहयोग से नागपुर में सम्पन्न हुआ था। तब से अब तक नौ 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' हो चुके हैं।

उद्देश्य

सम्मेलन का उद्देश्य इस विषय पर विचार-विमर्श करना था कि तत्कालीन वैश्विक परिस्थिति में हिंदी किस प्रकार सेवा का साधन बन सकती है। महात्मा गाँधी की सेवा भावना से अनुप्राणित हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश पाकर विश्वभाषा के रूप में समस्त मानव जाति की सेवा की ओर अग्रसर हो। साथ

ही यह किस प्रकार भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र 'वसुधैव कुटुंबकम' विश्व के समक्ष प्रस्तुत करके 'एक विश्व एक मानव परिवार' की भावना का संचार करे। सम्मेलन के आयोजकों को विनोबा भावे का शुभाशीर्वाद तथा केंद्र सरकार के साथ-साथ महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, गुजरात आदि राज्य सरकारों का समर्थन भी प्राप्त हुआ। नागपुर विश्वविद्यालय के प्रांगण में 'विश्व हिंदी नगर' का निर्माण किया गया। तुलसीदास, मीरा, सूरदास, कबीर, नामदेव और रैदास के नाम से अनेक प्रवेश द्वार बनाए गए। प्रतिनिधियों और अतिथियों के आवास का नाम 'विश्व संगम', 'मित्र निकेतन' 'विद्या विहार' और 'पत्रकार निवास' रखा गया। भोजनालयों के नाम भी 'अन्नपूर्णा', 'आकाश गंगा' आदि रखे गए।

'विश्व हिन्दी सम्मेलन' में काका साहेब कालेलकर ने हिन्दी भाषा के सेवा धर्म को रेखांकित करते हुए कहा था कि- 'हम सबका धर्म सेवा धर्म है और हिन्दी इस सेवा का माध्यम है। सभी हिन्दी भाषियों ने हिन्दी के माध्यम से आजादी से पहले और आजाद होने के बाद भी समूचे राष्ट्र की सेवा की है और अब इसी हिन्दी के माध्यम से विश्व की, सारी मानवता की सेवा करने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

हिन्दी भाषा की अंतर्निहित शक्ति से प्रेरित होकर भारत के नेताओं ने इसे अहिंसा और सत्याग्रह पर आधारित स्वतंत्रता संग्राम के दौरान संवाद की भाषा बनाया। यह दिशा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने निर्धारित की, जिसका अनुपालन पूरे देश ने किया। स्वतंत्रता संग्राम में अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले अधिकांश सेनानी हिन्दीतर प्रदेशों से तथा अन्य भाषा-भाषी थे।

इन सभी ने देश को एक सूत्र में बांधने के लिए संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी के सामर्थ्य और शक्ति को पहचाना और उसका भरपूर उपयोग किया। हिन्दी को भावनात्मक धरातल से उठाकर ठोस एवं व्यापक स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से और यह रेखांकित करने के उद्देश्य से कि हिन्दी केवल साहित्य की ही भाषा नहीं बल्कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को अंगीकार करके अग्रसर होने में एक सक्षम भाषा है, 'विश्व हिंदी सम्मेलनों' की संकल्पना की गई।

एक अन्य उद्देश्य इसे व्यापकता प्रदान करना था न कि केवल भावनात्मक स्तर तक सीमित करना। इस संकल्पना को 1975 में नागपुर में आयोजित 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' में मूर्तरूप दिया गया।

अब तक हुए सम्मेलन

कुल नौ 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' अब तक हो चुके हैं और अब दसवाँ सम्मेलन 10 से 12 सितम्बर, 2015 तक मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में आयोजित हुआ है। इससे पूर्व में आयोजित हो चुके नौ विश्व हिन्दी सम्मेलनों का सारांश निम्न प्रकार है–

पहला सम्मेलन

पहला विश्व हिन्दी सम्मेलन 10 जनवरी से 12 जनवरी, 1975 तक नागपुर में आयोजित किया गया था। सम्मेलन का आयोजन 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा के तत्त्वावधान में हुआ। सम्मेलन से सम्बन्धित राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष महामहिम उपराष्ट्रपति बी. डी. जत्ती थे। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अध्यक्ष मधुकर राव चौधरी उस समय महाराष्ट्र के वित्त, नियोजन व अल्पबचत मन्त्री थे। इस सम्मेलन का बोधवाक्य था– वसुधैव कुटुम्बकम। सम्मेलन के मुख्य अतिथि मॉरीशस के प्रधानमंत्री शिवसागर रामगुलाम थे, जिनकी अध्यक्षता में मॉरीशस से आये एक प्रतिनिधिमण्डल ने भी सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में 30 देशों के कुल 122 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।

दूसरा सम्मेलन

दूसरा सम्मेलन का आयोजन मॉरीसस की राजधानी पोर्ट लुई में 28 अगस्त से 30 अगस्त, 1976 तक चला। इस सम्मेलन के आयोजक राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष, मॉरीशस के प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम थे। सम्मेलन में भारत से तत्कालीन केन्द्रीय स्वास्थ्य और परिवार नियोजन मन्त्री डॉ. कर्ण सिंह के नेतृत्व में 23 सदस्यीय प्रतिनिधिमण्डल ने भाग लिया था। भारत के अतिरिक्त इस सम्मेलन में 17 देशों के 181 प्रतिनिधियों ने भी हिस्सा लिया।

तीसरा सम्मेलन

तीसरा विश्व हिन्दी सम्मेलन भारत की राजधानी दिल्ली में 28 अक्टूबर से 30 अक्टूबर, 1983 तक आयोजित किया गया। सम्मेलन के लिये बनी राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष डॉ. बलराम जाखड़ थे। इसमें मॉरीशस से आये प्रतिनिधिमण्डल ने भी हिस्सा लिया, जिसके नेता हरीश

बुधू थे। सम्मेलन के आयोजन में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने प्रमुख भूमिका निभायी। सम्मेलन में कुल 6,566 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया, जिनमें विदेशों से आये 260 प्रतिनिधि भी शामिल थे। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा समापन समारोह की मुख्य अतिथि थीं। इस अवसर पर उन्होंने दो टूक शब्दों में कहा था कि- 'भारत के सरकारी कार्यालयों में हिन्दी के कामकाज की स्थिति उस रथ जैसी है, जिसमें घोड़े आगे की बजाय पीछे जोत दिये गये हों।'

चौथा सम्मेलन

चौथे विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन 2 दिसम्बर से 4 दिसम्बर, 1993 तक मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में किया गया। यह सम्मेलन 17 साल बाद दुबारा मॉरीशस में आयोजित हुआ था। इस बार के आयोजन का उत्तरदायित्व मॉरीशस के कला, संस्कृति, अवकाश एवं सुधार संस्थान मंत्री मुक्तेश्वर चुनी ने सम्भाला। उन्हें राष्ट्रीय आयोजन समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। इसमें भारत से गये प्रतिनिधिमण्डल के नेता मधुकर राव चौधरी थे। भारत के तत्कालीन गृह राज्यमंत्री रामलाल राही प्रतिनिधिमण्डल के उपनेता थे। सम्मेलन में मॉरीशस के अतिरिक्त लगभग 200 विदेशी प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया।

पाँचवाँ सम्मेलन

पाँचवें सम्मेलन का आयोजन त्रिनिदाद एवं टोबेगो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में 4 अप्रैल से 8 अप्रैल, 1996 तक हुआ। आयोजक संस्था थी- त्रिनीदाद की हिन्दी निधि। सम्मेलन के प्रमुख संयोजक हिन्दी निधि के अध्यक्ष चंका सीताराम थे। भारत की ओर से इस सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधिमण्डल के नेता अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल माता प्रसाद थे। सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था 'प्रवासी भारतीय और हिन्दी'। जिन अन्य विषयों पर इसमें ध्यान केन्द्रित किया गया, वे थे- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, कैरेबियाई द्वीपों में हिन्दी की स्थिति एवं कम्प्यूटर युग में हिन्दी की उपादेयता। सम्मेलन में भारत से 17 सदस्यीय प्रतिनिधिमण्डल ने हिस्सा लिया। अन्य देशों के 257 प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए थे।

छठा सम्मेलन

छठा 14 सितम्बर से 18 सितम्बर, 1999 तक लंदन में आयोजित किया गया। यू.के. हिन्दी समिति, गीतांजलि बहुभाषी समुदाय और बर्मिंघम भारतीय

भाषा संगम, यॉर्क ने मिलजुल कर इसके लिये राष्ट्रीय आयोजन समिति का गठन किया, जिसके अध्यक्ष डॉ. कृष्ण कुमार और संयोजक डॉ. पद्मेश गुप्त थे। सम्मेलन का केंद्रीय विषय था- हिन्दी और भावी पीढ़ी। सम्मेलन में विदेश राज्यमंत्री वसुंधरा राजे सिंधिया के नेतृत्व में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल ने भाग लिया। प्रतिनिधिमण्डल के उपनेता थे, प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ, विद्यानिवास मिश्र। इस सम्मेलन का ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए है, क्योंकि यह हिन्दी को राजभाषा बनाये जाने के 50वें वर्ष में आयोजित किया गया था। यही वर्ष सन्त कबीर की छठी जन्मशती का भी था। सम्मेलन में 21 देशों के 700 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इनमें भारत से 350 और ब्रिटेन से 250 प्रतिनिधि शामिल हुए थे।

सातवाँ सम्मेलन

सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन सुदूर सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में हुआ। यह सम्मेलन 6 जून से 9 जून, 2003 तक आयोजित हुआ। इक्कीसवीं सदी में आयोजित यह पहला विश्व हिन्दी सम्मेलन था। सम्मेलन के आयोजक जानकीप्रसाद सिंह थे और इसका केन्द्रीय विषय था- विश्व हिन्दी: नई शताब्दी की चुनौतियाँ। सम्मेलन में हिस्सा लेने वाले भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व विदेश राज्य मंत्री दिग्विजय सिंह ने किया। सम्मेलन में भारत से 200 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इसमें 12 से अधिक देशों के हिन्दी विद्वान व अन्य हिन्दी सेवी सम्मिलित हुए। सम्मेलन का उद्घाटन 5 जून को हुआ था। यह भी एक संयोग ही था कि कुछ दशक पहले इसी दिन सूरीनामी नदी के तट पर भारतवंशियों ने पहला कदम रखा था।

आठवाँ सम्मेलन

आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन 13 जुलाई से 15 जुलाई, 2007 तक संयुक्त राज्य अमरीका की राजधानी न्यूयॉर्क में हुआ। इस सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था- विश्व मंच पर हिन्दी। इसका आयोजन भारत सरकार के विदेश मन्त्रालय द्वारा किया गया था। न्यूयॉर्क में सम्मेलन के आयोजन से सम्बन्धित व्यवस्था अमरीका की हिन्दी सेवी संस्थाओं के सहयोग से भारतीय विद्या भवन ने की थी। इसके लिए एक विशेष वेवसाइट का निर्माण भी किया गया। इसे प्रभासाक्षी. कॉम के समूह सम्पादक बालेन्दु शर्मा दाधीच के नेतृत्व वाले प्रकोष्ठ ने विकसित किया था।

नौवाँ सम्मेलन

नौवाँ सम्मेलन वर्ष 2012 में 22 सितम्बर से 24 सितम्बर तक दक्षिण अफ्रीका के शहर जोहांसबर्ग में हुआ। इस सम्मेलन में 22 देशों के 600 से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इनमें लगभग 300 भारतीय शामिल हुए थे। सम्मेलन में तीन दिन चले मंथन के बाद कुल 12 प्रस्ताव पारित किए गए और विरोध के बाद एक संशोधन भी किया गया।

दसवाँ हिन्दी विश्व सम्मेलन

दसवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन वर्ष 2015 में 10 सितम्बर से 12 सितम्बर तक भारत में मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में आयोजित हुआ। इस दसवें सम्मेलन का मुख्य कथन रहा- 'हिन्दी जगत–विस्तार एवं सम्भावनाएँ'। कई प्रौद्योगिक कंपनियों ने भी इस सम्मेलन में हिस्सा लिया, जिसमें कई विदेशी कंपनियाँ जैसे- गूगल, एप्पल, माइक्रोसोफ्ट, वेबदुनिया हिन्दी के साथ-साथ कई भारतीय संस्थाएँ जैसे- सी-डेक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, भारतकोश, राष्ट्रीय विज्ञान प्रसार केन्द्र भी शामिल रहीं।

भारतकोश संस्थापक श्री आदित्य चौधरी जी को दसवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारतकोश का ऑनलाइन प्रकाशन एवं छात्रों को निःशुल्क कम्प्यूटर शिक्षा देने के लिए भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा निमंत्रण मिला। भारत के माननीय गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह ने 12 सितम्बर, 2015 को आदित्य चौधरी जी को 'विश्व हिन्दी सम्मान' से सम्मानित किया।

ग्यारहवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन

11वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन विदेश मंत्रालय द्वारा मॉरीशस सरकार के सहयोग से 18 अगस्त-20 अगस्त, 2018 तक मॉरीशस में आयोजित किया गया। 11वें विश्व हिन्दी सम्मेलन को मॉरीशस में आयोजित करने का निर्णय सितम्बर, 2015 में भारत के भोपाल शहर में आयोजित 10वें विश्व हिन्दी सम्मेलन में लिया गया था।

भारत के अलावा मॉरीशस ही दुनिया का एकमात्र देश है, जो 11वें विश्व हिन्दी सम्मेलन के आयोजन द्वारा तीसरी बार विश्व हिन्दी सम्मेलन की मेजबानी कर रहा है। 11वें विश्व हिन्दी सम्मेलन का पहला सत्र भोपाल से मॉरीशस तक होगा, जिसमें 10वें विश्व हिन्दी सम्मेलन में पारित अनुशंसाओं पर की गई

कार्रवाई से संबन्धित एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी। 11वां विश्व हिन्दी सम्मेलन तकनीक और डिजिटल प्रकाशन को भी समर्पित होगा।

हिन्दी आन्दोलन

हिन्दी आन्दोलन भारत में हिन्दी एवं देवनागरी को विविध सामाजिक क्षेत्रों में आगे लाने के लिये विशेष प्रयत्न हैं। यह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन में साहित्यकारों, समाजसेवियों (नवीन चन्द्र राय, श्रद्धाराम फिल्लौरी, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पंडित गौरीदत्त, पत्रकारों एवं स्वतंत्रतता संग्राम-सेनानियों (महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि) का विशेष योगदान था।

भारतेन्दु के समय में हिन्दी की स्थिति बड़ी विकट हो गयी थी। अंग्रेज अपने 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अनुसार अल्पसंख्यकों को बढ़ावा देते थे। वे हिन्दी के राह में तरह-तरह के रोड़े अटकाते थे। उर्दू-प्रेमी साहित्यकार नई हिन्दी को अपने लिये बहुत बड़ा खतरा मानते थे। इसके अतिरिक्त हिन्दी के रूढ़िवादी साहित्यकार पुरानी काव्य-परम्पराओं से चिपके हुए थे। वे आधुनिक हिन्दी में गद्य के विकास के प्रति उदासीन थे।

बहुत से लोगों का विचार है कि मुसलमानों के भारत आने से नई भाषा 'उर्दू' का जन्म हुआ। ऐसा नहीं है। मुसलमानों के भारत आने से किसी नई भाषा का जन्म नहीं हुआ। दो धर्मों के पास आने से कोई नई भाषा जन्म नहीं लेती। मुसलमानों ने यूरोप पर भी आक्रमण किया था और सैकड़ों वर्षों तक उनसे लड़ाई की थी किन्तु वहाँ किसी नई भाषा का जन्म नहीं हुआ। मुसलमानों का भारत में प्रवेश आठवीं शताब्दी से ही आरम्भ हो गया था किन्तु 'उर्दू' ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही सामने आया और जनपदीय बोलियों के शब्दों के व्यवहार का बहिष्कार इसी समय हुआ जब भारत पर अंग्रेजों की पकड़ मजबूत हो रही थी।

किसी एक ही धर्म के मानने वाले एक ही भाषा बोलें यह भी आवश्यक नहीं। अरब, ईरान, तुर्की तीनों मुसलमान देश हैं, किन्तु तीनों की भाषाएँ अलग-अलग ही नहीं, तीन भिन्न परिवारों की हैं। जब हम यह विचार करें कि भारत में मुसलमानों के आने से वहाँ की भाषाओं एवं संस्कृति में क्या परिवर्तन हुए, तो ये प्रश्न अवश्य पूछना चाहिए - ये मुसलमान कहाँ के निवासी थे? इनकी मातृभाषा क्या थी? दिल्ली में शासन करने वाले मुसलमान न इरानी थे न अरब।

हिन्दी का उर्दू से विलगाव इसलिये आवश्यक था कि उर्दू कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, रसखान आदि द्वारा प्रयुक्त देशी शब्दों की परम्परा से अपने को जानबूझकर अलग कर लिया था। ('मत:कात' का सिद्धान्त - अर्थात् भाषा में 'हिन्दीपन' के बदले फारसीपन का बोलबाला)। मत:कात के दो पहलू हैं - एक तो बहुत से प्रचलित शब्द 'गंवारू' कहकर छोड़ दिये गये, दूसरे उच्च सांस्कृतिक शब्दावली के लिये केवल अरबी-फारसी से शब्द उधार लिये गये। बंगला, मराठी, तेलगू के विपरीत उर्दू में संस्कृत का तिरस्कार होता रहा।

उर्दू में जितने अरबी शब्द अंग्रेजों के राज में आये उतने मुसलमानों के राज में भी नहीं आये थे। 'उर्दू अलग जबान है', 'मजहब के आधार पर भी कौमें बनतीं हैं' - ये विचार अंग्रेजी राज में ही प्रचारित किये गये, मुसलमानों के शासनकाल में नहीं।

सांस्कृतिक आवश्यकता एवं अपरिहार्यता

उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार की जनता अपनी सांस्कृतिक आवश्यकताएं किस प्रकार पूरी करती? समस्त भारतीय भाषाओं की लीक पर चलकर या उसे छोड़कर? फारसी लिपि अपनाकर, मत:कात का सिलसिला मानकर और संस्कृत शब्दावली का बहिष्कार करके?

यदि पटना, दिल्ली, उज्जैन के विशाल त्रिकोण में हिन्दी आन्दोलन न चलाया जाता, यदि यहाँ फारसी-लिपि और फारसी-अरबी के शिष्ट शब्द लेने की नीति को मान लिया जाता तो यह नीति केवल यहाँ की जनता के लिये ही नहीं, वरन समस्त देश की जनता के लिये घातक होता। बंगला, मराठी, तेलुगू के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ने के बदले विशाल हिन्दी-भाषी क्षेत्र उन्हें पीछे ठेलता, उनकी प्रगति में बाधक बनता, उनके विकास को रोकता।

भारतेन्दु का यह युगान्तकारी महत्त्व है कि उन्होंने अपने प्रदेश के सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पहचाना, उन्होंने हिन्दी के लिये संघर्ष किया, सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में उसका व्यवहार सुदृढ़ किया, मत:कात का सिलसिला खत्म करके उन्होंने हिन्दी को उसी मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा दी जिस पर बंगला, मराठी, तेलुगू आदि पहले से ही बढ़ रहीं थीं।

हिन्दी का विकास हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिये आवश्यक और अपरिहार्य था। विशाल हिन्दी प्रदेश का सांस्कृतिक विकास उर्दू के माध्यम से सम्भव न था। सन् 1928 में ख्वाजा हसन निजामी ने कुरान का हिन्दी अनुवाद कराया तो

उन्होंने भूमिका में बताया कि उत्तर भारत के अधिकांश मुसलमान हिन्दी जानते हैं, उर्दू नहीं। भारतेन्दु ने जो हिन्दी आन्दोलन चलाया वह मुसलमानों के लिये भी उपयोगी था न केवल हिन्दुओं के लिये, ठीक उसी तरह जैसे बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बंगला-सेवा हिन्दू-मुसलमान सबके लिये थी।

परिणाम

हिन्दी आन्दोलन के कारण-

हिन्दी क्षेत्र में एक नई सांस्कृतिक एवं राजनैतिक नवचेतना आयी।

देश के सामने हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में उभरी।

हिन्दी की पत्रकारिता बड़ी तेजी से विकास के रास्ते पर चल पड़ी और देश को आजाद कराने में इसकी अग्रणी भूमिका रही।

राजभाषा हिन्दी का वर्तमान स्वरूप

राजकाज के प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी का प्रयोग होता रहा है। राम बाबू शर्मा के अनुसार यह प्रयोग बारहवीं सदी से होता रहा है। (बारहवीं सदी से राजकाज में हिन्दी, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, (1980)। राजभाषा हिन्दी में हिन्दी भाषा-क्षेत्र की जिस खड़ी बोली को भारतीय संविधान द्वारा स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक महत्त्व मिला है, उसे लगभग प्रायः छह सौ वर्ष पूर्व दक्षिण में यह महत्त्व प्राप्त हो चुका था।

प्रशासनिक हिन्दी के सम्बंध में मेरे निर्देशन में मोतीलाल चतुर्वेदी ने "रेलवे विभाग में प्रयुक्त प्रशासनिक हिन्दी का शब्दकोशीय एवं व्याकरणिक अध्ययन" विषय पर जबलपुर के विश्वविद्यालय की पीएचडी उपाधि के लिए शोध कार्य किया। उनके शोध-प्रबंध के एक अध्याय का शीर्षक है-'स्वतंत्रतापूर्व भारत में प्रशासनिक हिन्दी'।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 'भारत की भाषा समस्या' शीर्षक अपनी पुस्तक की भूमिका में इस विषय पर धारदार टिप्पणी की है। उनके शब्द हैं-"राजा बलवंत सिंह कालेज के हिन्दी अध्यापक डॉ. मोहन द्विवेदी की देखरेख में महेश चन्द्र गुप्त 'राजस्थान के प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी का प्रयोग' विषय पर शोध कार्य कर रहे हैं। उन्होंने सन् 1857 के पहले के और उसके बाद के भी काफी दस्तावेज इकट्ठे किए हैं। इन दस्तावेजों में वे पत्र हैं, जो अंग्रेजों ने राजाओं को

लिखे, राजाओं ने अंग्रेजों को लिखे, साथ ही ऐसे पत्र हैं, जो राजाओं ने एक-दूसरे को लिखे। यदि राजस्थान में 19 वीं सदी में हिन्दी राजभाषा के रूप में काम आती थी और उसका व्यवहार हिन्दुस्तान के लोग ही नहीं अंग्रेज भी करते थे तो कोई कारण नहीं कि 20 वीं सदी के अन्तिम चरण में अंग्रेजी प्रेमी भारतवासी अपना अंग्रेजी मोह त्यागकर हिन्दी का उपयोग न कर सकें। (भारत की भाषा समस्या, पृष्ठ 13, तीसरा संस्करण, राजकामल प्रकाशन (2003))

संविधान सभा में राजभाषा हिन्दी का मामला 14 जुलाई, 1947 के पहले ही सुलझ गया था। 14 जुलाई के पहले संविधान सभा में बहस का मुद्दा यह नहीं था कि देश की राजभाषा हिन्दी हो अथवा अंग्रेजी हो। बहस का मुद्दा यह था कि राजषाषा हिन्दी हो अथवा हिन्दुस्तानी हो। इसको विस्तार से समझने की जरूरत है। सन् 1928 में भारत को स्वतंत्र कराने वाली पार्टियों (जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग शामिल थीं) का स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए सम्मेलन हुआ। इसमें पंडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में तैयार रिपोर्ट में देश की सर्वमान्य भाषा 'हिन्दुस्तानी' मानी गई (रिपोर्ट, पृष्ठ 165-166)। सन् 1937 में प्रांतीय सरकार बनने पर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा-'हर प्रांत की सरकारी भाषा राज्य के कामकाज के लिए उस प्रांत की भाषा होनी चाहिए। परन्तु हर जगह अखिल भारतीय भाषा होने के नाते 'हिन्दुस्तानी' को सरकारी तौर पर माना जाना चाहिए। अखिल भारतीय भाषा कोई हो सकती है तो वह सिर्फ हिन्दी या हिन्दुस्तानी कुछ भी कह लीजिए-ही हो सकती है'। (पंडित जवाहर लाल नेहरू-राष्ट्रभाषा का सवाल, पृष्ठ 23 एवं पृष्ठ 33, अहमदाबाद (1949)।

सन् 1946 में संविधान सभा गठित हुई तथा इसकी पहली बैठक दिनांक 9 दिसम्बर, 1946 को हुई तथा दिनांक 11 दिसम्बर, 1946 की बैठक में राजेन्द्र प्रसाद इसके अध्यक्ष चुने गए। दिनांक 14 जुलाई,1947 की संविधान सभा के सत्र में यह प्रस्ताव आया कि 'हिन्दुस्तानी' के स्थान पर 'हिन्दी को देश की सर्वमान्य भाषा माना जाए। इस मुद्दे पर विचार करने के लिए संविधान सभा के कांग्रेस पार्टी के सदस्यों की बैठक बुलाई गई। इस मुद्दे पर विचार-विमर्श हुआ। कुछ सदस्यों ने हिन्दी के पक्ष में तथा कुछ सदस्यों ने हिन्दुस्तानी के पक्ष में अपने विचार व्यक्त किए। हिन्दी के पक्ष में सबसे अकाट्य दलीलें पुरुषोत्तम दास टंडन, सेठ गोविन्द दास, डॉ. रघुवीर तथा दक्षिण भारत के अधिकांश सदस्यों की थीं। अब्दुल कलाम आजाद आदि ने हिन्दुस्तानी के पक्ष में दलीलें दीं। इस मुद्दे

पर जब सहमति नहीं बनी तब मतदान का निर्णय लिया गया। मतदान में हिन्दी के पक्ष में 63 मत पड़े तथा हिन्दुस्तानी के पक्ष में 32 मत पड़े।

हिन्दी की लिपि के मुद्दे पर भी बहस हुई। कुछ सदस्यों ने अरबी–फारसी तथा कुछ सदस्यों ने रोमन लिपि को अपनाने के सम्बंध में दलीलें पेश कीं। इस मुद्दे पर अधिकांश सदस्य देवनागरी लिपि को अपनाने के पक्ष में थे। इस पर भी मतदान कराया गया। मतदान में देवनागरी लिपि के पक्ष में 63 तथा रोमन लिपि के पक्ष में केवल 18 मत पड़े। इस प्रकार भारत के स्वतंत्रता दिवस के पहले ही दिनांक 14 जुलाई, 1947 को संविधान सभा के कांग्रेस पार्टी के सदस्यों ने देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी को राजभाषा बनाने का निर्णय ले लिया था।

15 अगस्त,1947 को भारत की स्वतंत्रता के बाद तथा पाकिस्तान बनने के कारण मुस्लिम लीग के सदस्य संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे।

14 जुलाई, 1947 से लेकर 14 सितम्बर, 1949 तक बहस इस मुद्दे पर होती रही कि संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए अंकों का रूप क्या हो।

14 सितम्बर, 1949 को जब संविधान सभा की बैठक हुई तब सभापति के सम्बोधन के वक्तव्य को मूल अंग्रेजी में प्रस्तुत कर रहा हूँ जिससे मेरे मत की पुष्टि हो सके तथा किसी प्रकार के संदेह या भ्रम की स्थिति न रहे–

ConstituentAssembly Debates

Constituent Assembly Debates on 14 September, 1949 PART II

CONSTITUENT ASSEMBLY OF INDIA-VOLUME IX

Wednesday, the 14th September, 1949

"May I ask how long has this idea about the numerals been before the

Country\ No member could have the courage of coming before this Assembly, with a proposition about the acceptance of the Hindi language if that language had not already been more or less accepted by the people for years and years- It is on that basis that that clause in the Draft Constitution relating to language has been framed- But how long have people been discussing about these numerals?"

हम पहले कह चुके हैं कि 14 जुलाई, 1947 से लेकर 14 सितम्बर, 1949 तक बहस इस मुद्दे पर होती रही कि संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए अंकों का रूप क्या हो। ये देवनागरी लिपि में प्रयुक्त होने वाले अंक हों अथवा

अन्तरराष्ट्रीय अंक हों। कुछ सदस्यों का मत था कि जब हमने यह निर्णय ले लिया है कि संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी होगी तो हमें अंकों के मामले में भी देवनागरी लिपि के अंकों को स्वीकार कर लेना चाहिए। कुछ सदस्यों का मत था कि वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय अंक अंग्रेजी की तरह विदेशी नहीं हैं अपितु ये भारत से ही पहले अरब तथा अरब से यूरोप पहुँचे हैं।

इस कारण हमें अंकों के मामले में, भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप को स्वीकार कर लेना चाहिए। दक्षिण भारत के कुछ सदस्यों ने जिन्होंने हिन्दुस्तानी की अपेक्षा देवनारी लिपि में लिखित हिन्दी को संघ की राजभाषा बनाने के पक्ष में मतदान किया था उनमें से कुछ सदस्यों का मत था कि दक्षिण में हम हिन्दी के प्रचार में अन्तरराष्ट्रीय अंकों का ही प्रयोग करते हैं। इस मुद्दे पर अन्तरराष्ट्रीय अंकों के पक्ष में सबसे जोरदार बहस अब्दुल कलाम आजाद की रही। उनके शब्द थे–

"These Indian numerals first reachedArabia, and then from Arabia they reached Europe- This is the reason why in Europe they were known as Arabic numerals, though they originated from India- This style of the numerals is the greatest scientific invention of India, which she is rightly entitled to be proud of, and today the whole world recognizes it, the story of how these numerals had reached Arabia has been preserved in the pages of history- In the eighth century A-D- during the reign of the second Abbasside Caliph, Al Mansoor a party of the Indian Vedic physicians had reached Baghdad and bad got admittance at the court of Al Mansoor- A certain physician of this party was a specialist in astronomy and lie had Brahmaguptas' book "Siddhanta¸ with him, Al Mansoor, having learnt this, ordered an Arab philosopher, Ibraheem Algazari, to translate the "Siddhanta¸ into Arabic with the help of the Indian scholar-

It is said that the Arabs learnt about the Indian numerals in connection

With this translation, and having seen its overwhelming advantage, they

At once adopted it in Arabic- Like Latin, in Arabic also there were no

Specific symbols for counting figures- Every number and fig-

ure was expressed in words- In cases of abbreviations various letters were made use of, which were given certain numerals values- At that time Indian numerals put before them a very easy way of counting- They became famous as Arabic numerals- And after reaching Europe they took that form in which we find them in International numerals at present- I have emphasized that these numerals are India's own It- is not a foreign thing,-

दक्षिण भारत के श्री संतानम ने भी अन्तरराष्ट्रीय अंकों के प्रयोग का समर्थन करते हुए सभा के सदस्यों को अवगत कराया–

"I may inform the honourable Member that

this question came up before us in the South in connection with the Hindi

Prachar Sabha at least fifteen years ago and we decided that Hindi Prachar

in the South should be conducted with international numerals".

इस मुद्दे पर बहस होती रही। देवनागरी के अंकों को अपनाने के सम्बंध में सबसे अधिक दलीलें पुरुषोत्म दास टंडन की थी। इस मुद्दे पर अनेक बैठकों में जोरदार बहस होती रहीं। भाषा सम्बंधी अनुच्छेदों पर संविधान सभा के सभापति को लगभग तीन सौ या उससे भी अधिक संशोधन मिले। मैं इस बात को दुबारा तिबारा दोहराना चाहता हूँ कि 14 जुलाई, 1947 से लेकर 14 सितम्बर, 1949 तक बहस इस मुद्दे पर होती रही कि संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए अंकों का रूप क्या हो। ये देवनागरी लिपि में प्रयुक्त होने वाले अंक हों अथवा अन्तरराष्ट्रीय अंक हों।

संविधान सभा में भाषा विषयक बहस 278 पृष्ठों में मुद्रित है जिसका अधिकांश भाग अंकों के स्वरूप को लेकर हुई बहस से है। राजभाषा सम्बंधी विधेयक एकमतेन पास हो इसके लिए डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी तथा श्री गोपाल स्वामी आयंगार की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। अंकों के मुद्दे पर उन्होंने देवनागरी के अंकों के प्रयोग का मोह त्यागने तथा अन्तरराष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करने के लिए वातावरण बनाने की कोशिश की। संविधान सभा के सदस्यों में से दो माननीय सदस्यों (श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी तथा मोटूरि सत्यनारायण) ने मुझे इस बात से अवगत कराया कि उनका तर्क था कि देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी को राजभाषा बनाने की बात उन सदस्यों ने स्वीकार कर ली है जिनकी

मातृभाषा हिन्दी नहीं है। इस कारण हिन्दी भाषा सदस्यों को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि वे अन्तरराष्ट्रीय अंकों के प्रयोग की बात मान लें जिससे राजभाषा सम्बंधी विधेयक सर्वसम्मति से पास हो सके। उनकी भूमिका के कारण यह सहमति बनी थी कि संघ की भाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। वास्तव में अंकों को छोड़कर संघ की राजभाषा के प्रश्न पर अधिकांश सदस्यों में कोई मतभेद नहीं था। अंकों के बारे में भी यह स्पष्ट था कि अंतर्राष्ट्रीय अंक भारतीय अंकों का ही एक नया संस्करण है।

अंत में अंको के स्वरूप पर 2 सितम्बर, 1949 ई. की बैठक में मतदान कराया गया। मतदान में दोनों पक्षों को बराबर अर्थात् 77-77 मत प्राप्त हुए। अंत में संविधान सभा के सभापति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमी सदस्यों की भावना तथा डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी एवं गोपाल स्वामी आयंगार की इस भावना को ध्यान में रखकर कि राजभाषा सम्बंधी विधेयक का प्रारूप ऐसा हो जिस पर सभा के सदस्यों की आम सहमति हो तथा जब दक्षिण भारत के अधिकांश सदस्यों ने देश के हित को ध्यान में रखकर देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को संघ की राजभाषा बनाना स्वीकार कर लिया है तो अंकों के मुद्दे पर लचीला रुख अपनाया जा सकता है, अपना निर्णायक मत (कास्टिंग वोट) अन्तरराष्ट्रीय अंकों के प्रयोग के पक्ष में दिया तथा एक मत के अधिक होने को कारण (एक मत से) अन्तरराष्ट्रीय अंकों के प्रयोग का प्रस्ताव पास हो गया। देवनागरी के अंक बनाम अन्तरराष्ट्रीय अंक के प्रयोग के मुद्दे को अंग्रेजी के विद्वानों ने हिन्दी बनाम अंग्रेजी नाम दे दिया।

उनके वक्तव्य को प्रमाण मानकर तथा उसका संदर्भ देकर अंग्रेजी में लिखे हुए भारत विषयक संदर्भ ग्रंथों में यह प्रतिपादित किया गया है कि एक मत अधिक होने के कारण अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राजभाषा बना दिया गया। यह भ्रांति उन सभी लोगों को है जिनका ज्ञान अंग्रेजी के भारत विषयक संदर्भ ग्रंथों पर आधारित है। उदाहरण के लिए मनोरमा ईयर बुक से सम्बंधित अंश पेश है–

"With independence, the question of a common language naturally came up- The Constituent Assembly could not arrive at a consensus in the matter- The question was put to vote and Hindi won on a single vote-the casting vote of the President."

(Manorama Year Book 2004, Page 509 (2004)

अंग्रेजी में लिखे हुए भारत विषयक संदर्भ ग्रंथों के आधार पर संघ की राजभाषा के सम्बंध में भ्रामक धारणा बनाने वालों से मेरा यह विनम्र निवेदन एवं आग्रह है कि वे "India, Constituent Assembly Debates" के सभी भागों का अध्ययन करें जिससे अंग्रेजी के ग्रंथों द्वारा गढ़ा गया मिथक टूट सके तथा उनको वास्तविकता का पता चल सके।

14 सितम्बर, 1949 को पूरे दिन की बहस के समापन के बाद शाम को भारी तालियों की गड़गड़ाहट में 'मुंशी आयंगर' फार्मूला स्वीकार करते हुए राजभाषा सम्बंधी भाग पारित हो गया। (देखें–Constituent Assembly Debates on 14 September, 1949 PART III

PART XIV–A CHAPTER I–LANGUAGE OF THE UNION/301। Official language of the Union- (1) The official language of the Union shall be Hindi in Devanagari script-The form of numerals to be used for the official purposes of the Union

shall be the international form of Indian numerals.)

सभा में राजभाषा सम्बंधी भाग के पारित होने के बाद सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने जो उद्‌गार व्यक्त किए वे तत्कालीन सभा के सदस्यों के मनोभावों को आत्मसात करने का लिखित दस्तावेज है–

"अब आज की कार्यवाही समाप्त होती है, किंतु सदन को स्थगित करने से पूर्व मैं बधाई के रूप में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मेरे विचार में हमने अपने संविधान में एक अध्याय स्वीकार किया है जिसका देश के निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। हमारे इतिहास में अब तक कभी भी एक भाषा को शासन और प्रशासन की भाषा के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। हमारा धार्मिक साहित्य और प्रकाशन संस्कृत में सन्निहित था।

निस्संदेह उसका समस्त देश में अध्ययन किया जाता था, किंतु वह भाषा भी कभी समूचे देश के प्रशासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त नहीं होती थी। आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जब कि हमने अपने संविधान में एक भाषा लिखी है, जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी और उस भाषा का विकास समय की परिस्थितियों के अनुसार ही करना होगा।

मैं हिन्दी का या किसी अन्य भाषा का विद्वान होने का दावा नहीं करता। मेरा यह भी दावा नहीं है कि किसी भाषा में मेरा कुछ अंशदान है, किंतु सामान्य व्यक्ति के नाते मैं उस भाषा के स्वरूप के बारे में विचार करना चाहता हूँ जिसे

हमने आज संघ के प्रशासन की भाषा स्वीकार किया है। हिन्दी में विगत में कई कई बार परिवर्तन हुए हैं और आज उसकी कई शैलियाँ हैं, पहले हमारा बहुत सा साहित्य ब्रजभाषा में लिखा गया था। अब हिंदी में खडी बोली का प्रचलन है। मेरे विचार में देश की अन्य भाषाओं के संपर्क से उसका और भी विकास होगा। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिन्दी देश की अन्य भाषाओं से अच्छी-अच्छी बातें ग्रहण करेगी तो उससे उन्नति ही होगी, अवनति नहीं होगी।

हमने अब देश का राजनैतिक एकीकरण कर लिया है। अब हम एक-दूसरा जोड़ लगा रहे हैं जिससे हम सब एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक हो जाएँगे। मुझे आशा है कि सब सदस्य संतोष की भावना लेकर घर जाएँगे और जो मतदान में हार भी गए हैं, वे भी इस पर बुरा नहीं मानेंगे तथा उस कार्य में सहायता देंगे जो संविधान के कारण संघ को भाषा के विषय में अब करना पड़ेगा। मैं दक्षिण भारत के विषय में एक शब्द कहना चाहता हूँ। 1917 में जब महात्मा गाँधी चम्पारन में थे और मुझे उनके साथ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब उन्होंने दक्षिण में हिन्दी प्रचार का कार्य आरम्भ करने का विचार किया और उनके कहने पर स्वामी सत्यदेव और गाँधी जी के प्रिय पुत्र देवदास गाँधी ने वहाँ जाकर यह कार्य आरम्भ किया। बाद में 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन में इस प्रचार कार्य को सम्मेलन का मुख्य कार्य स्वीकार किया गया और वहाँ कार्य चलता रहा। मेरा सौभाग्य है कि मैं गत 32 वर्षों में इस कार्य से सम्बद्ध रहा हूं, यद्यपि मैं इसे घनिष्ठ सम्बंध का दावा नहीं कर सकता।

मैं दक्षिण में एक सिरे से दूसरे सिरे को गया और मेरे हदय में बहुत प्रसन्नता हुई कि दक्षिण के लोगों ने भाषा के सम्बंध में महात्मा गांधी के अनुरोध के अनुसार कैसा अच्छा कार्य किया है। मैं जानता हूँ कि उन्हें कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किंतु उनमें इस मामले में जो जोश था, वह बहुत सराहनीय था। मैंने कई बार पारितोषिक वितरण भी किया है और सदस्यों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि मैंने एक ही समय पर दो पीढ़ियों को पारितोषिक दिए हैं, शायद तीन को दिए हों-अर्थात दादा, पिता और पुत्र हिन्दी पढ़कर, परीक्षा पास करके एक ही वर्ष पारितोषिकों तथा प्रमाणपत्रों के लिए आए थे। यह कार्य चलता रहा है और दक्षिण के लोगों ने इसे अपनाया है। आज मैं कह नहीं सकता कि वे इस हिन्दी कार्य के लिए कितने लाख व्यय कर रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि इस भाषा को दक्षिण के बहुत से लोगों ने अखिल भारतीय

भाषा मान लिया है और इसमें उन्होंने जिस जोश का प्रदर्शन किया है उसके लिए उत्तर भारतीयों को उन्हें बधाई देनी चाहिए, मान्यता देनी चाहिए और धन्यवाद देना चाहिए। यदि आज उन्होंने किसी विशेष बात पर हठ किया है तो हमें याद रखना चाहिए कि आखिर यदि हिन्दी को उन्हें स्वीकार करना है तो वे ही करेंगे, उनकी ओर से हम तो नहीं करेंगे, और आखिर यह क्या बात है जिस पर इतना वाद-विवाद हो गया है? मैं आश्चर्य कर रहा था कि हमें छोटे से मामले पर इतनी बहस करने की, इतना समय बर्बाद करने की क्या आवयकता है? आखिर अंक हैं क्या ? दस ही तो हैं।

इन दस में, मुझे याद पड़ता है कि तीन तो ऐसे हैं, जो अंग्रेजी में और हिंदी में एक से हैं। 2,3 और 0 । मेरे खयाल में चार और हैं, जो रूप में एक से हैं, किंतु उनसे अलग-अलग कार्य निकलते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी का चार अंग्रेजी के आठ से बहुत मिलता-जुलता है, यद्यपि एक चार के लिए आता है और दूसरा आठ के लिए। अंग्रेजी का छह हिन्दी के सात से बहुत मिलता है, यद्यपि उन दोनों के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं।

हिन्दी का नौ जिस रूप में लिखा जाता है, मराठी से लिया गया है और अंग्रेजी के 9 से बहुत मिलता है। अब केवल दो तीन अंक बच गए जिनके दोनों प्रकार के अंकों में भिन्न-भिन्न रूप हैं और भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। मुद्राणालय की सुविधा या असुविधा का प्रश्न नहीं है जैसा कि कुछ सदस्यों ने कहा है। मेरे विचार में मुद्रणालय की दृष्टि से हिन्दी और अंग्रेजी अंकों में कोई अन्तर नहीं है।

किन्तु हमें अपने मित्रों की भावनाओं का आदर करना है, जो उसे चाहते हैं, और मैं अपने सब हिन्दी मित्रों से कहूँगा कि वे इसे उस भावना से स्वीकार करें, इसलिए स्वीकार करें कि हम उनसे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि स्वीकार करवाना चाहते हैं और मुझे प्रसन्नता है कि इस सदन ने अत्यधिक बहुमत से इस सुझाव को स्वीकार कर लिया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आखिर यह बहुत बड़ी रियायत नहीं है।

हम उनसे हिन्दी स्वीकार करवाना चाहते थे और उन्होंने स्वीकार कर लिया, और हम उनसे देवनागरी लिपि को स्वीकार करवाना चाहते थे, वह भी उन्होंने स्वीकार कर ली। वे हमसे भिन्न प्रकार के अंक स्वीकार करवाना चाहते थे, उन्हें स्वीकार करने में कठिनाई क्यों होनी चाहिए? इस पर मैं छोटा दृष्टांत देता हूँ जो मनोरंजक होगा। हम चाहते हैं कि कुछ मित्र हमें निमंत्रण दें। वे

निमंत्रण दे देते हैं। वे कहते हैं कि आप आकर हमारे घर में ठहर सकते हैं और उसके लिए आपका स्वागत है। किन्तु वे कहते हैं कि जब आप हमारे घर आएँ तो कृपया अंग्रेजी चलन के जूते पहनिए, भारतीय चप्पल मत पहनिए जैसा कि आप अपने घर में पहनते हैं।

उस निमंत्रण को केवल इसी आधार पर ठुकराना मेरे लिए बुद्धिमत्ता नहीं होगी। मैं भले ही चप्पल पहनना छोड़ना नहीं चाहता, मगर मैं अंग्रेजी जूते पहन लूँगा और निमंत्रण को स्वीकार कर लूँगा। इसी सहिष्णुता की भावना से राष्ट्रीय समस्याएँ हल हो सकती हैं।

हमारे संविधान में बहुत से विवाद उठ खड़े हुए हैं और बहुत से प्रश्न उठे हैं जिन पर गम्भीर मतभेद थे किंतु हमने किसी न किसी प्रकार उनका निपटारा कर लिया। यह सबसे बड़ी खाई थी जिससे हम एक-दूसरे से अलग हो सकते थे। हमें यह कल्पना करनी चाहिए कि यदि दक्षिण हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को स्वीकार नहीं करता, तब क्या होता। स्विटजरलैंड जैसे छोटे से, नन्हें से देश में तीन भाषाएं हैं, जो संविधान में मान्य हैं और सब कुछ काम उन तीनों भाषाओं में होता है। क्या हम समझते हैं कि हम केन्द्रीय प्रशासकीय प्रयोजनों के लिए उन भाषाओं को रखने की सोचते जो भारत में प्रचलित हैं तो क्या हम सब प्रान्तों को साथ रख सकते थे, सभी में एकता करा सकते थे? प्रत्येक पृष्ठ को शायद पन्द्रह बीस भाषाओं में मुद्रित करना पड़ता।

यह केवल व्यय का प्रश्न नहीं है। यह मानसिक दशा का भी प्रश्न है जिसका हमारे समस्त जीवन पर प्रभाव पड़ेगा। हम केन्द्र में जिस भाषा का प्रयोग करेंगे, उससे हम एक-दूसरे के निकटतर आते जाएँगे। आखिर अंग्रेजी से हम निकटतर आए हैं क्योंकि यह एक भाषा थी। अंग्रेजी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा को अपनाया है, इससे अवश्यमेव हमारे सम्बंध घनिष्ठतर होंगे, विशेषत: इसलिए कि हमारी परम्पराएं एक ही हैं, हमारी संस्कृति एक ही है और हमारी सभ्यता में सब बातें एक ही हैं। अतएव यदि हम इस सूत्र को स्वीकार नहीं करते तो परिणाम यह होता कि इस देश में बहुत सी भाषाओं का प्रयोग होता या वे प्रान्त पृथक हो जाते जो बाध्य होकर किसी भाषा विशेष को स्वीकार करना नहीं चाहते थे। हमने यथासम्भव बुद्धिमानी का कार्य किया है। मुझे हर्ष है, मुझे प्रसन्नता है और मुझे आशा है कि भावी सन्तति इसके लिए हमारी सराहना करेगी।

राजभाषा नियावली

(1) संविधान के अनुच्छेद 120 में यह प्रावधान है कि संसद का कार्य हिन्दी में अथवा अंग्रेजी में किया जा सकता है, परन्तु राज्यसभा के सभापति महोदय या लोकसभा के अध्यक्ष महोदय विशेष परिस्थिति में सदन के किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकते हैं।

(2) संविधान के अनुच्छेद 343 इस प्रकार है-

अनुच्छेद 343 (1) संघ की राजभाषा

(1)संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तरराष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खंड (1) में से किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की कालावधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, जिनके लिए ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले से प्रयोग किया जाता था। परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तरराष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी संसद पन्द्रह साल की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा (क) अंग्रेजी भाषा का, अथवा (ख) अंकों के देवनागरी रूप का, ऐसे प्रयोजनों के लिए उपबंधित कर सकेगी जैसे कि ऐसे विधि में उल्लिखित हो।

(3)संविधान का अनुच्छेद 351 हिन्दी भाषा के विकास एवं उसके स्वरूप निर्धारण से सम्बंधित है।

अनुच्छेद 351. हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश

"हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक के सब की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा"।

राजभाषा सम्बंधित संवैधानिक उपबंध (Constitutional Provisions)

राजभाषा सम्बंधी संवैधानिक उपबंधों (भारत का संविधान- भाग 3, अनुच्छेद 29 एवं अनुच्छेद 30), (भारत का संविधान- भाग 5, संघ की राजभाषा नीति अनुच्छेद 120), (भारत का संविधान- भाग 17, अनुच्छेद 343, अनुच्छेद 344, अनुच्छेद 350, अनुच्छेद 350 -क, अनुच्छेद 351) के लिए देखें–

http://rajbhasha-gov-in/GOLPContent-aspx\t=enconst

पन्द्रह वर्ष की कालावधि के बाद अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त होना चाहिए था। पन्द्रह वर्ष की अवधि सन् 1965 में समाप्त होने वाली थी। उससे पूर्व ही संसद में उस अवधि को अनिश्चित काल तक बढ़ाने का प्रस्ताव पेश हुआ और वह पारित हो गया। अब संविधानिक स्थिति यह है कि नाम के वास्ते तो संघ की राजभाषा हिंदी है और अंग्रेजी सह भाषा है, जबकि वास्तव में अंग्रेजी राजभाषा है और हिंदी केवल सह भाषा।

1976 में राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 8(1) के प्रावधानों के तहत राजभाषा के नियम बनाए गए थे। इसके नियम तथा इन नियमों के अनुपालन के लिए समय-समय पर बनाई गई नीतियाँ, समितियों के कार्यों का विवरण, पुरस्कार योजना के अन्तर्गत किए गए प्रावधानों, प्रशिक्षण योजना की गतिविधियों, यांत्रिक और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणें की सहायता से राजभाषा के उपयोग की सुविधाएँ तथा राजभाषा विभाग के तकनीकी प्रकोष्ठ के कार्य कलापों का विवरण राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध है। राजभाषा हिन्दी पर बाजार में उपलब्ध अधिकांश पुस्तकों में भी यह विवरण मौजूद है। इस वेबसाइट पर निम्न सूचनाएं उपलब्ध हैं-

राजभाषा नीति का क्रमिक विकास
Evolution of Official Language Policy
संवैधानिक प्रावधान Constitutional Provisions
राष्ट्रपति का आदेश- 1960 President's Order-1960
राजभाषा अधिनियम 1963 The Official Languages Act 1963
राजभाषा संकल्प 1968 The Official Language Resolution 1968
राजभाषा नियम 1976 The Official Languages Rules 1976
संघ की राजभाषा नीति The Official Language Policy
संसदीय राजभाषा समिति की सिफारिशों पर जारी राष्ट्रपति आदेश

President's Orders on the recommendations of the Committee of Parliament on OL

वार्षिक कार्यक्रम/रिपोर्ट Annual Programme/Reports

राजभाषा हिंदी के प्रयोग संबंधी आदेशों का संकलन

Compilation of Orders regarding the use of Hindi as O-L-

हिन्दी के प्रयोग के बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रावधान किए गए हैं और जब केन्द्र के किसी मंत्रालय की राजभाषा सलाहकार समिति की बैठक होती है तो मंत्रालय की रिपोर्ट उस मंत्रालय के हिन्दी अधिकारी से बनवाकर समिति के सदस्यों को वितरित कर दी जाती है किन्तु यथार्थ में फाइलों पर अधिकांश कार्रवाई अंग्रेजी में होती है। इस निराशा में आशा की कुछ किरणें भी हैं। मेरा अनुभव यह है कि अधिकांश सरकारी अफसरों की हिन्दी के प्रति उदासीनता तथा मंत्रालयों के अवर सचिव स्तर के अधिकारियों की अंग्रेजी के पूर्वलिखित टिप्पणों के आधार पर फाइलों में टिप्पण लिखने की प्रवृत्ति के बावजूद राजभाषा विभाग के कार्य की प्रगति उसके संयुक्त सचिव की हिन्दी के प्रति मनोभाव पर निर्भर करती है।

मैं जानता हूँ कि बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में राजभाषा विभाग के संयुक्त सचिव देव स्वरूप एवं मदन लाल गुप्त ने निष्ठापूर्वक हिन्दी की प्रगति के लिए कार्य किया तथा इनके प्रयासों के कारण इसी का परिणाम यह हुआ कि प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की परीक्षाओं के लिए कम्प्यूटर की सहायता से मल्टी मीडिया पद्धति से प्रशिक्षण सामग्री तैयार करवाने की दिशा में पुणे की सी–डेक के सहयोग से काम होना आरम्भ हुआ। इसका परिणाम सन् 2003 में सबके सामने आया। प्रशिक्षण सामग्री का नाम लीला हिन्दी प्रबोध, लीला हिन्दी प्रवीण, लीला हिन्दी प्राज्ञ रखा गया। यह सामग्री विभाग की वेबसाइट पर सर्व साधारण के उपयोग के लिए उपलब्ध हो गया। इस समय वेबसाइट पर जाकर विभिन्न स्तरों का हिन्दी प्रशिक्षण निम्न भाषाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है–

1. अंग्रेजी 2. असमिया 3. बांग्ला 4. बोडो 5. गुजराती 6. कन्नड़ 7. काश्मीरी 8. मलयालम 9. मणिपुरी 10. मराठी 11. नेपाली 12. ओड़िया 13. पंजाबी 14. तेलुगु 15. तमिल।

यह कार्य प्रसंसनीय है। अब उपर्युक्त भाषाओं के माध्यम से हिन्दी का प्रशिक्षण विभिन्न स्तरों पर मल्टी मीडिया पद्धति से निशुल्क घर बैठे कम्प्यूटर

पर प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार सन् 2005 से हिंदी फोंट, फोंट कोड कनवर्टर, अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश, हिंदी स्पेल चेकर को निशुल्क प्रयोग के लिए वेब साइट पर उपलब्ध करा दिया गया है।

हमने विभिन्न मंत्रालयों की राजभाषा सलाहकार समितियों के सदस्य के रूप में राजभाषा हिन्दी के भाषिक स्वरूप के सम्बंध में अपने विचार प्रस्तुत किए। लिखित सुझाव भी दिए। यह बात सन् 2001 से सन् 2006 के मध्य की है। हमने यह कहा कि जैसी राजभाषा हिन्दी देखने को मिल रही है वह हम जैसे व्यक्ति को भी क्लिष्ट लगती है। सहज नहीं लगती। एक बार में बोधगम्य नहीं होती। समझने के लिए प्राणायाम करना पड़ता है। भाषा को सरल एवं सहज बनाने की जरूरत है। मुख्य रूप से निम्न तथ्यों का उल्लेख किया–

1. जनतंत्र में राजभाषा राजाओं और उनके दरबारियों के लिए नहीं अपितु जनता के द्वारा निर्वाचित सरकार के शासन और जनता के बीच संवाद की भाषा होनी चाहिए।
2. इस कारण उसका भाषिक स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसे सामान्य आदमी समझ सके। मैं मानता हूँ कि प्रशासन के क्षेत्र में कुछ तकनीकी शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्द जिस विषय-क्षेत्र की संकल्पना से जुड़ा होता है उस विषय-क्षेत्र की संकल्पना के संदर्भ में उसका निर्धारित एवं अभीष्ट अर्थ होता है। शब्द के सामान्य अर्थ एवं तकनीकी अर्थ में अन्तर भी हो सकता है। पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्द का एक अर्थ में निर्धारण जरूरी है ताकि उस शब्द का विषय-क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी प्रयोक्ता समान अर्थ में प्रयोग कर सकें तथा उससे सही अर्थ को ग्रहण कर सकें। हमें भिन्न संकल्पनाओं के लिए भिन्न शब्द भी निर्धारित करने पड़ते हैं। इतना होने पर भी पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दों की सार्थकता उसके प्रयोग एवं व्यवहार में निर्भर करती है। प्रयोग ही किसी भी शब्द की कसौटी है। पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दों का प्रयोग करते हुए भी भाषा सरल एवं सहज होनी चाहिए। मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि नए आविष्कार आदि का नामकरण करने अथवा उसके लिए नया शब्द रखने में तथा जन प्रचलित शब्दों के स्थान पर उनके लिए नए शब्द गढ़ने अथवा बनाने में अन्तर है। आयोग के विशेषज्ञों ने इसको अनदेखा कर दिया। जो शब्द जन प्रचलित शब्दों के स्थान पर गढ़े गए, वे अधिकांशतः चल नहीं पाए।

3. भाषा की कठिनाई के दो मुख्य कारण होते हैं-

(क)अप्रचलित शब्दों का प्रयोग

(ख)भाषा की अपनी प्रकृति के अनुरूप एवं सरल वाक्य रचनाओं वाली भाषा का प्रयोग न होना।

4. भारत सरकार को यह सोचना चाहिए कि राजभाषा हिन्दी का प्रयोग लगभग पचास साठ वर्षों से हो रहा है मगर राजभाषा हिन्दी कठिन प्रतीत क्यों होती है। वह बोधगम्य क्यों नहीं है।

इस बारे में, मैंने समितियों की बैठकों के सदस्यों को स्पष्ट किया कि स्वाधीनता के बाद हमारे राजनेताओं ने हिन्दी की घोर उपेक्षा की। पहले यह तर्क दिया गया कि हिन्दी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का अभाव है। इसके लिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग बना दिया गया। काम सौंप दिया गया कि शब्द बनाओ। आयोग ने तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दों के निर्माण के लिए जिन विशेषज्ञों को काम सौंपा, उन्होंने जन प्रचलित शब्दों को अपनाने के स्थान पर संस्कृत का सहारा लेकर शब्द गढ़े। शब्द बनाए नहीं जाते। गढ़े नहीं जाते। लोक के प्रचलन एवं व्यवहार से विकसित होते हैं। आयोग ने जिन शब्दों का निर्माण किया उनमें से अधिकांशतः अप्रचलित, जटिल एवं क्लिष्ट हैं। सारा दोष आयोग एवं विशेषज्ञों का भी नहीं है। मैं उनसे ज्यादा दोष मंत्रालय के अधिकारियों का मानता हूँ।

प्रशासनिक शब्दावली बनाने के लिए अलिखित आदेश दिए गए कि प्रत्येक शब्द की स्वीकार्यता के लिए मंत्रालय के अधिकारियों की मंजूरी ली जाए। अधिकारियों की कोशिश रही कि जिन शब्दों का निर्माण हो, वे बाजारू न हों। सरकारी भाषा बाजारू भाषा से अलग दिखनी चाहिए। मैंने अपनी बात को एक उदाहरण से स्पष्ट किया। प्रत्येक मंत्रालय में सेक्रेटरी तथा एडिशनल सेक्रेटरी के बाद मंत्रालय के प्रत्येक विभाग में ऊपर से नीचे के क्रम में अंडर सेक्रेटरी का पद होता है। इसके लिए निचला सचिव शब्द बनाकर मंत्रालय के अधिकारियों के पास अनुमोदन के लिए भेजा गया। अर्थ संगति की दृष्टि से शब्द संगत था। मंत्रालयों के अधिकारियों को आयोग द्वारा निर्मित शब्द पसंद नहीं आया। आदेश दिए गए कि नया शब्द बनाया जाए। आयोग के चेयरमेन ने विशेषज्ञों से अनेक वैकल्पिक शब्द बनाने का अनुरोध किया। अंडर सेक्रेटरी के लिए नए शब्द गढ़ने में विशेषज्ञों ने व्यायाम किया। जो अनेक शब्द बनाकर मंत्रालय के पास भेजे गए उनमें से मंत्रालय के अधिकारियों को "अवर" पसंद

आया और वह स्वीकृत हो गया। अंडर सेक्रेटरी के लिए हिन्दी पर्याय अवर सचिव चलने लगा। मंत्रालयों में सैकड़ों अंडर सेक्रेटरी काम करते हैं और सब अवर सचिव सुनकर गर्व का अनुभव करते हैं। शायद ही किसी अंडर सेक्रेटरी को अवर के मूल अर्थ का पता हो। स्वयंबर में अनेक वर विवाह में अपनी किस्मत आजमाने आते थे।

जिस वर को वधू माला पहना देती थी वह चुन लिया जाता था। जो वर वधू के द्वारा अस्वीकृत कर दिए जाते थे उन्हें अवर कहते थे। चूँकि शब्द गढ़ते समय यह ध्यान नहीं रखा गया कि वे सामान्य आदमी को समझ में आ सकें, इस कारण आयोग के द्वारा निर्मित कराए गए लगभग 80 प्रतिशत शब्द प्रचलित नहीं हो पाए। वे कोशों की शोभा बनकर रह गए हैं।

भारत सरकार के मंत्रालय के राजभाषा अधिकारी का काम होता है कि वह अंग्रेजी के मैटर का आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली में अनुवाद करदे। अधिकांश अनुवादक शब्द की जगह शब्द रखते जाते हैं। हिन्दी भाषा की प्रकृति को ध्यान में रखकर वाक्य नहीं बनाते। इस कारण जब राजभाषा हिन्दी में अनुवादित सामग्री पढ़ने को मिलती है तो उसे समझने के लिए कसरत करनी पड़ती है।

मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि लोकतंत्र में राजभाषा आम आदमी के लिए बोधगम्य होनी चाहिए। एक बात जोड़ना चाहता हूँ। कोई शब्द जब तक चलन में नहीं आएगा, प्रचलित नहीं होगा तो वह चलेगा नहीं। लोक में जो शब्द प्रचलित हो गए हैं उनके स्थान पर नए शब्द गढ़ना बेवकूफी है। रेलवे स्टेशन का एक कुली कहता है कि ट्रेन अमुक प्लेटफॉर्म पर खड़ी है। सिग्नल डाउन हो गया है। ट्रेन अमुक प्लेटफॉर्म पर आ रही है। बाजार में उसी सिक्के का मूल्य होता है, जो बाजार में चलता है। हमें वही शब्द सरल एवं बोधगम्य लगता है, जो हमारी जबान पर चढ़ जाता है। "भाखा बहता नीर"। लोक व्यवहार से भाषा बदलती रहती है। यह भाषा की प्रकृति है।

5. राजभाषा हिन्दी में अधिकारी अंग्रेजी की सामग्री का अनुवाद अधिक करता है। मूल टिप्पण हिन्दी में नहीं लिखा जाता। मूल टिप्पण अंग्रेजी में लिखा जाता है। अनुवादक जो अनुवाद करता है, वह अंग्रेजी की वाक्य रचना के अनुरूप अधिक होता है। हिन्दी भाषा की रचना-प्रकृति अथवा संरचना के अनुरूप कम होता है।

मैंने अपने विचार को अनेक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया। एक उदाहरण प्रस्तुत है। हम कोई पत्र मंत्रालय को भेजते हैं तो उसकी पावती की भाषा की रचना निम्न होती है–

'पत्र दिनांक–क्रमांक–प्राप्त हुआ'।

सवाल यह है कि क्या प्राप्त हुआ। क्रमांक प्राप्त हुआ अथवा दिनांक प्राप्त हुआ अथवा पत्र प्राप्त हुआ। अंग्रेजी की वाक्य रचना में क्रिया पहले आती है। हिन्दी की वाक्य रचना में क्रिया बाद में आती है। इस कारण जो वाक्य रचना अंग्रेजी के लिए ठीक है उसके अनुरूप रचना हिन्दी के लिए सहज, सरल एवं स्वाभाविक नहीं है। क्रिया (प्राप्त होना अथवा मिलना) का सम्बंध दिनांक से अथवा क्रमांक से नहीं है। पत्र से है। हिन्दी की रचना प्रकृति के हिसाब से वाक्य रचना निम्न प्रकार से होनी चाहिए।

'आपका दिनांक–का लिखा पत्र प्राप्त हुआ। उसका क्रमांक है–'

6. हिन्दी की वाक्य रचना भी दो प्रकार की होती है। एक रचना सरल होती है। दूसरी रचना जटिल एवं क्लिष्ट होती है। सरल वाक्य रचना में वाक्य छोटे होते हैं। संयुक्त एवं मिश्र वाक्य बड़े होते हैं। सरल वाक्य रचना वाली भाषा सरल, सहज एवं बोधगम्य होती है। संयुक्त एवं मिश्र वाक्यों की रचना वाले वाक्य होते हैं तो भाषा जटिल हो जाती है, कठिन लगने लगती है, जटिल हो जाती है और इस कारण अबोधगम्य हो जाती है।

मुझे विश्वास है कि यदि प्रशासनिक भाषा को सरल बनाने की दिशा में पहल हुई तो राजभाषा हिन्दी और जनभाषा हिन्दी का अन्तर कम होगा। सरल, सहज, पठनीय, बोधगम्य भाषा-शैली का विकास होगा। ऐसी राजभाषा लोक में प्रिय होगी। लोकप्रचलित होगी। यहाँ इसको रेखांकित करना अप्रसांगिक न होगा कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिन्दीतर भाषी राष्ट्रीय नेताओं ने जहाँ देश की अखंडता एवं एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार की अनिवार्यता की पैरोकारी की वहीं भारत के सभी राष्ट्रीय नेताओं ने एकमतेन सरल एवं सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी का प्रयोग करने एवं हिन्दी उर्दू की एकता पर बल दिया था। इसी प्रसंग में एक बात और जोड़ना चाहता हूँ। प्रजातंत्र में शुद्ध हिन्दी, क्लिष्ट हिन्दी, संस्कृत गर्भित हिन्दी जबरन नहीं चलाई जानी चाहिए। जनतंत्र में ऐसा करना सम्भव नहीं है। ऐसा फासिस्ट शासन में ही सम्भव है। हमें सामान्य आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है उनको अपना लेना चाहिए। यदि वे शब्द अंग्रेजी से हमारी भाषाओं में आ गए हैं, हमारी भाषाओं के अंग बन गए

हैं तो उन्हें भी अपना लेना चाहिए। मैं हिन्दी के विद्वानों को बता दूँ कि प्रेमचन्द जैसे महान रचनाकार ने भी प्रसंगानुरूप किसी भी शब्द का प्रयोग करने से परहेज नहीं किया। उनकी रचनाओं में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। अपील, अस्पताल, ऑफिसर, इंस्पैक्टर, एक्टर, एजेंट, एडवोकेट, कलर, कमिश्नर, कम्पनी, कॉलिज, कांस्टेबिल, कैम्प, कौंसिल, गजट, गवर्नर, गैलन, गैस, चेयरमेन, चौक, जेल, जेलर, टिकट, डाक्टर, डायरी, डिप्टी, डिपो, डेस्क, ड्राइवर, थियेटर, नोट, पार्क, पिस्तौल, पुलिस, फंड, फिल्म, फैक्टरी, बस, बिस्कुट, बूट, बैंक, बैंच, बैरंग, बोतल, बोर्ड, ब्लाउज, मास्टर, मिनिट, मिल, मेम, मैनेजर, मोटर, रेल, लेडी, सरकस, सिगरेट, सिनेमा, सिमेंट, सुपरिन्टेंडैंट, स्टेशन आदि हजारों शब्द इसके उदाहरण हैं।

प्रेमचन्द जैसे हिन्दी के महान साहित्यकार ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में अंग्रेजी के इन शब्दों का प्रयोग करने में कोई झिझक नहीं दिखाई है। शब्दावली आयोग की तरह इनके लिए विशेषज्ञों को बुलाकर यह नहीं कहा कि पहले इन अंग्रेजी के शब्दों के लिए शब्द गढ़ दो ताकि मैं अपना साहित्य सर्जित कर सकूँ। उनके लेखन में अंग्रेजी के ये शब्द ऊधारी के नहीं हैं, जनजीवन में प्रयुक्त शब्द भंडार के आधारभूत, अनिवार्य, अवैकल्पिक एवं अपरिहार्य अंग हैं। फिल्मों, रेडियो, टेलिविजन, दैनिक समाचार पत्रों में जिस हिन्दी का प्रयोग हो रहा है वह जनप्रचलित भाषा है।

जनसंचार की भाषा है। समय-समय पर बदलती भी रही है। पुरानी फिल्मों में प्रयुक्त होनेवाले चुटीले संवादों तथा फिल्मी गानों की पंक्तियाँ जैसे पुरानी पीढ़ी के लोगों की जबान पर चढ़कर बोलती थीं वैसे ही आज की युवा पीढ़ी की जुबान पर आज की फिल्मों में प्रयुक्त संवादों तथा गानों की पंक्तियाँ बोलती हैं। फिल्मों की स्क्रिप्ट के लेखक जनप्रचलित भाषा को परदे पर लाते हैं। उनके इसी प्रयास का परिणाम है कि फिल्मों को देखकर समाज के सबसे निचले स्तर का आम आदमी भी फिल्म का रस ले पाता है। मेरा सवाल यह है कि यदि साहित्यकार, फिल्म के संवादों तथा गीतों का लेखक, समाचार पत्रों के रिपोर्टर जनप्रचलित हिन्दी का प्रयोग कर सकता है तो भारत सरकार का शासन प्रशासन की राजभाषा हिन्दी को जनप्रचलित क्यों नहीं बना सकता। विचारणीय है कि हिंदी फिल्मों की भाषा ने गाँवों और कस्बों की सड़कों एवं बाजारों में आम आदमी के द्वारा रोजमर्रा की जिंदगी में बोली जाने वाली बोलचाल की भाषा को एक नई पहचान दी है। फिल्मों के कारण हिन्दी का जितना प्रचार-प्रसार हुआ

है उतना किसी अन्य एक कारण से नहीं हुआ। आम आदमी जिन शब्दों का व्यवहार करता है उनको हिन्दी फिल्मों के संवादों एवं गीतों के लेखकों ने बड़ी खूबसूरती से सहेजा है। भाषा की क्षमता एवं सामर्थ्य शुद्धता से नहीं, निखालिस होने से नहीं, ठेठ होने से नहीं, अपितु विचारों एवं भावों को व्यक्त करने की ताकत से आती है।

राजभाषा के संदर्भ में यह संवैधानिक आदेश है कि संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे। भारत सरकार का शासन राजभाषा का तदनुरूप विकास कर सका है अथवा नहीं यह सोचने विचारने की बात है।

इस दृष्टि से भी मैं फिल्मों में कार्यरत सभी रचनाकारों एवं कलाकारों का अभिनंदन करता हूँ। हिन्दी सिनेमा ने भारत की सामासिक संस्कृति के माध्यम की निर्मिति में अप्रतिम योगदान दिया है। बंगला, पंजाबी, मराठी, गुजराती, तमिल आदि भाषाओं एवं हिन्दी की विविध उपभाषाओं एवं बोलियों के अंचलों तथा विभिन्न पेशों की बस्तियों के परिवेश को सिनेमा की हिन्दी ने मूर्तमान एवं रूपायित किया है। भाषा तो हिन्दी ही है मगर उसके तेवर में, शब्दों के उच्चारण के लहजे में, अनुतान में तथा एकाधिक शब्द-प्रयोग में परिवेश का तड़का मौजूद है।

भाषिक प्रयोग की यह विशिष्टता निंदनीय नहीं अपितु प्रशंसनीय है। मुझे प्रसन्नता है कि देर आए दुरुस्त आए, राजभाषा विभाग ने प्रशासनिक हिन्दी को सरल बनाने की दिशा में कदम उठाने शुरू कर दिए हैं। मैं इस समाचार का भी स्वागत करता हूँ कि भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने यह आदेश जारी कर दिया है कि सरकारी कामकाज में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाए। जब जनता को समझ में आने वाली सरल हिन्दी में मूल टिप्पण लिखा जाएगा, अंग्रेजी के टिप्पण का हिन्दी में अनुवाद नहीं किया जाएगा तो वह हिन्दी दौड़ेगी। गतिमान होगी। प्रवाहशील होगी। जैसे प्रेमचन्द ने जनप्रचलित अंग्रेजी के शब्दों को अपनाने से परहेज नहीं किया वैसे ही प्रशासनिक हिन्दी में भी प्रशासन से

सम्बंधित ऐसे शब्दों को अपना लेना चाहिए जो जन-प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एडवोकेट, ओवरसियर, एजेंसी, प्लाट, चौक, अपील, स्टेशन, प्लेटफार्म, एसेम्बली, ऑडिट, केबिनेट, केम्पस, कैरिटर, केस, कैश, बस, सेंसर, बोर्ड, सर्टिफिकेट, चालान, चेम्बर, चार्जशीट, चार्ट, चार्टर, सर्किल, इंस्पेक्टर, सर्किट हाउस, सिविल, क्लेम, क्लास, क्लर्क, क्लिनिक, क्लॉक रूम, मेम्बर, पार्टनर, कॉपी, कॉपीराइट, इन्कम, इन्कम टैक्स, इंक्रीमेंट, स्टोर आदि। भारत सरकार के राजभाषा विभाग को यह सुझाव भी देना चाहता हूँ कि जिन संस्थाओं में सम्पूर्ण प्रशासनिक कार्य हिन्दी में शतकों अथवा दशकों से होता आया है वहाँ की फाइलों में लिखी गई हिन्दी भाषा के आधार पर प्रशासनिक हिन्दी को सरल बनाएँ। जब कोई रोजाना फाइलों में सहज रूप से लिखता है तब उसकी भाषा का रूप अधिक सरल और सहज होता है बनिस्पत जब कोई सजग होकर भाषा को बनाता है। सरल भाषा बनाने से नहीं बनती, सहज प्रयोग करते रहने से बन जाती है, ढल जाती है।

3

भारतेन्दु युग में हिंदी पत्रकारिता

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। भारतेन्दु का व्यकितत्त्व प्रभावशाली था, वे सम्पादक और संगठनकर्ता थे, वे साहित्यकारों के नेता और समाज को दिशा देने वाले सुधारवादी विचारक थे, उनके आसपास तरुण और उत्साही साहित्यकारों की पूरी जमात तैयार हुई, अतः इस युग को भारतेन्दु-युग की संज्ञा देना उचित है।

डा. लक्ष्मीसागर वार्णेय ने लिखा है कि 'प्राचीन से नवीन के संक्रमण काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे, वे भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत थे। जिस समय खड़ी बोली गद्य अपने प्रारिम्भक रूप में थी, उस समय हिन्दी के सौभाग्य से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की आपस में विरोधी शैलियों में समन्वय स्थापित किया और मध्यम मार्ग अपनाया। इस काल में हिन्दी के प्रचार में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष योग दिया, उनमें उदन्त मार्तण्ड, कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन अग्रणी हैं। इस समय हिन्दी गद्य की सर्वांगीण प्रगति हुई और उसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि विधाओं में अनूदित तथा मौलिक रचनाएं लिखी गयीं।

औपनिवेशिक राजनैतिक परिदृश्य

भारतेन्दु के जन्म के वक्त के राजनैतिक परिदृश्य पर चर्चा करें तो 1848 में लार्ड डलहौजी के भारत पदार्पण के साथ ही एक नए युग की शुरुआत हो

चुकी थी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने पंजाब पर अपना कब्जा जमाकर भारत में पूरी तरह से अपने साम्राज्य की स्थापना की प्रक्रिया समाप्त कर ली थी। पौर्वात्यवादी, उपयोगितावादी और धर्मवादी विद्वानों ने मिल जुलकर अपने शासन के औचित्य को साबित करते हुए सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विविधता वाले भारत को अपने प्रशासनिक और न्यायिक तंत्र की रचना की प्रक्रिया में भारत को पाठाधारित एकहरे हिन्दू धर्म के समुदाय में परिवर्तित करने की प्रक्रिया भी लगभग पूरी कर ली थी। कोलकाता से आगरा तक तार-संचार की व्यवस्था हो चुकी थी। भारत की पहली रेलवे लाइन बिझायी जाने लगी थी और कोलकाता से दिल्ली तक की सड़क भी बना ली गई थी। जल मार्ग से यातायात शुरू हो चुका था। बम्बई, मद्रास तथा कोलकाता में विश्वविद्यालयों स्थापित होने लगे थे।

औपनिवेशिक लैंगिक विचारधारा देसी समुदाय को भारतीय स्त्री की एक खास तरह की छवि गढ़ने के लिए प्रेरित कर रही थी। इसी क्रम में अंग्रेजों ने नारी-कल्याण के मकसद से हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून पास कर दिया था। ऐसे ही सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य में भारतेन्दु का अवतरण भारत की धरती पर होता है। संभावनाओं से भरपूर ऐतिहासिक परिस्थिति और अपनी प्रतिभा के बल पर भारतेन्दु बनारस और पूरे हिन्दी जगत के केंद्रीय सांस्कृतिक और सामाजिक व्यक्तित्त्व के रूप में उभरे।

हिन्दी लोकनायक और आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य के पितामह

हिन्दी के लोकनायक और आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य के पितामह के रूप में प्रतिष्ठित भारतेन्दु ने राष्ट्रवाद के आधुनिक सिद्धांत की एक स्थापना के आधार पर निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति के मूल को स्वीकार करते हुए न केवल आधुनिक हिन्दी भाषा की रचना और उसके परिष्करण, परिमार्जन और स्थिरीकरण का काम किया, वरन् हिन्दी साहित्य में कई नई विधाओं की शुरुआत की और पुरानी विधाओं को नया चोला पहनाने का भी काम किया।

''भारतेंदु हरिश्चंद्र का निधन 1885 ई. के जनवरी महीने की 25 तारीख को हुआ। यह वर्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का वर्ष भी था। 34 वर्ष और चार महीने की अल्पआयु में भारतेंदु बाबू ने अनुदित और मौलिक सैकड़ों रचनाएँ लिखीं। गद्य को एक मानक भाषा देने के अलावा वे गद्य की प्रायः सारी विधाओं के प्रवर्तक बने। कविता के क्षेत्र में पारंपरिक शैलियों के अलावा ठेठ लोक जीवन में प्रचलित शैलियाँ तथा छंदों को उन्होंने अपनाया। शिष्ट कहे जाने वाले काव्य के अलावा ग्रामगीतों तक की रचना की। न जाने कितने काव्य-रूपों

तथा लयों से उन्होंने हिंदी कविता को समृद्ध किया। कविता तथा गद्य, दोनों में उन्होंने समान अधिकार के साथ लिखा। नाटक, मौलिक तथा अनुदित- दोनों प्रकार के उन्होंने सुलभ किए तथा उनके मंचन में ही दिलचस्पी नहीं ली, स्वयं उनमें अभिनय भी किया।" जीवन के अंतिम समय तक भी भारतेन्दु हरिश्चंद्र हिन्दी-लेखकों को उपन्यास-लेखन के लिए प्रेरित करते रहे। इसलिए यदि भारतीय भाषाओं का सबसे पहला प्रख्यात विदेशी इतिहासकार जार्ज ग्रियर्सन हरिश्चंद्र को आज का सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि कहे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। वैसे ग्रियर्सन का मत तो यह भी है कि देशी बोली में रचित साहित्य को लोकप्रिय बनाने में भारतेन्दु हरिश्चंद्र से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किसी अन्य भारतीय ने नहीं किया।''

भारतेन्दु ने तीन महत्त्वपूर्ण पत्रों का संपादन भी किया जो मात्र साहित्यिक पत्र बनकर ही नहीं रह गए, समकालीन राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में भी जिनकी महत्त्वपूर्ण शिरकत रही। कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन और स्त्री-शिक्षा की पत्रिका 'बालाबोधिनी' के प्रकाशन के जरिए उन्होंने जन-जागरण का काम किया। कई आलोचक उन्हें हिंदी में राष्ट्रीय तथा साहित्यिक पत्रकारिता का जनक मानते हैं। हिंदी भाषा तथा साहित्य की सेवा के लिए हिंदी साहित्य के इतिहासकार रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें महात्मा कहकर भी याद किया है। भारतेंदु की सबसे बड़ी साहित्यिक देन उन्होंने यह मानी है कि उन्होंने साहित्य को नए-नए विषयों की ओर उन्मुख किया और उसे नए और आधुनिक विचारों से लैस किया।

उन्नीसवीं सदी का लोकवृत्त और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

यह कहना कतई गलत न होगा कि उन्नीसवीं सदी के हिन्दी समाज का लोकवृत्त भारतेन्दु के इर्द-गिर्द ही गढ़ा जा रहा था। उस युग में सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक बदलावों का वाहन बनने वाली कई महत्त्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना भारतेन्दु ने की थी। उनके युग के सभी महत्त्वपूर्ण रचनाकार और पत्रकार हरिश्चंद्र मंडल में शामिल थे। रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग नामक अपनी पुस्तक में लिखा है-"जिसका घर साहित्यकारों के सम्मेलन का सभाभवन हो, जिसने अपने चारों तरफ बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, श्रीनिवासदास, काशिनाथ आदि लेखकों का व्यूह रचाया हो, जिसने 'कवि-वचन-सुधा' से लेकर 'सारसुधा निधि' तक पचीसों अखबारों और

पत्रों से हिन्दी में नयी हलचल मचा दी हो और स्वयं नाटक, निबंध, कविताएं, व्याख्यान, मुकरियाँ आदि से अपने युग को चमत्कृत करके 36 साल की अवस्था में ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी हो-दरअसल उसका जीवन कहानी न होगा तो किसका होगा?"

मंजीत सिंह की पेंटिंग

हिन्दी नवजागरण की महत्त्वपूर्ण विद्वान वसुधा डालमिया ने भारतेन्दु हरिश्चंद्र को 'सांस्कृतिक और सामाजिक अथारिटी' की संज्ञा देते हुए लिखा है-''भारतेन्दु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिन्दी साहित्य में अग्रणी स्थान प्राप्त है। हिन्दी भाषा को हिन्दी गद्य के लिए उन्होंने बड़े सर्जनात्मक ढंग से व्यवहार किया। मित्रों और खतो-किताबत करनेवालों के बीच उन्होंने एक मंडली जुटाई और इसे हिन्दी में साहित्य लेखन के लिए प्रेरित किया। बनारस में उनकी गणना ऊँची हैसियत के लोगों में की जाती थी।

उनका संबंध बनारस के वनिकों में श्रेष्ठ गिने जाने वालों नवपति महाजनों में से एक से था। नवपति महाजन मूलत: कर्ज देने का काम करते थे और 18वीं सदी में इन्हें अच्छी ख्याति प्राप्त हुई थी। अपने पिता के ही समान उन्होंने बनारस के सांस्कृतिक जीवन में अग्रणी भूमिका निभाई। वह कवि-गोष्ठी और संगीत समारोह का लगातार आयोजन करते थे। बनारस के महराजा से उनकी अच्छी दोस्ती थी। रामनगर की रामलीला को बढ़ावा देने में भारतेन्दु का बड़ा योगदान रहा। उन्होंने इस रामलीला के संवाद लिखे। वह शहर के मजिस्ट्रेट अवैतनिक के पद पर भी रहे और स्वेच्छा से त्यागपत्र दिया। उनका संबंध स्थानीय अंग्रेज अधिकारियों और प्राच्य विद्या विशारदों से रहा। कोलकाता स्थित एशियाटिक सोसायटी के सचिव राजेन्द्र लाल मित्र से उनका पत्र-व्यवहार होता था। 'एशियाटिक रिसर्चेज' में छपे प्राच्य-विद्या संबंधी शोधपरक लेख तथा अन्य व्याख्यान भारतेन्दु ने अपने पास जुटा कर रखे थे। उन्होंने कई समाजों की स्थापना की, स्कूल खोला या उनके चलने में सहायता दी और तीन महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं का संपादन किया।''

'नारि नर सम होहिं' और भारतेन्दु की लैंगिक विचारधारा

अपने दौर के इतने केंद्रीय महत्त्व के व्यक्तित्त्व -'भारतेन्दु' ने स्त्रियों की स्थिति पर जो चिन्तन-लेखन किया था, उसका उनके समय में अत्याधिक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा होगा और इसने समाज के चलन को निर्धारित

करने में महती भूमिका निभाई होगी। अतः भारतेन्दु के स्त्री-संबंधी विचार न केवल उस दौर की स्त्री की नियति को जानने के लिए जरूरी हैं, बल्कि उस वक्त नई पितृसंरचना की जो बुनियाद डाली गई थी, उसकी मीनार आज के समाज में बुलंद हो रही है। अतः इससे आज की स्त्रियों की दशा को भी समझने में मदद मिलेगी। भारतेन्दु अपनी साहित्यक सेवा, सामाजिक परिवर्तन और राजनीति में अपनी दखल के कारण अपने युग के निर्माता बन चुके थे। अतः भारतेन्दु के स्त्री विषयक विचार का अध्ययन न केवल उस युग के अन्य हिन्दी बौद्धिकों के विचार से अवगत होने के लिए आवश्यक है, वरन् उस युग की प्रमुख सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों के अध्ययन के लिए भी अनिवार्य है।

'नारि नर सम होंहि' का नारा देने वाले भारतेन्दु के स्त्री-विषयक विचार को गहराई से समझने के लिए हमें उन्हें तीन संदर्भो में देखना होगा।

1 उनके द्वारा निकाली गई स्त्री पत्रिका 'बालाबोधिनी' के विश्लेषण के जरिए,

2 उनके नाटकों के विश्लेषण के जरिए और

3 अन्य जगहों पर अभिव्यक्त हुए उनके विचारों के विश्लेषण के माध्यम से।

'बालाबोधिनी' को आर्यकुल ललनाओं को सद्गृहिणी और पतिव्रता बनाने की परियोजना कहा जा सकता है। 1870 का दशक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रकाशन संबंधी गतिविधियों के उत्कर्ष का समय था और वह उत्तर-पश्चिम प्रान्त के केंद्रीय लोकनायक के रूप में स्थापित हो चुके थे। उनके द्वारा प्रकाशित की जा रही दो पत्रिकाएं-कविवचन सुधा और हरिश्चंद्र मैगजीन अपने वक्त् में अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थीं।

इन पत्रिकाओं में वह समाज-सुधार के मसलों पर समय-समय पर बहसें आयोजित किया करते थे। लेकिन इन सबसे अलग उन्होंने एक महिला-पत्रिका 'बालाबोधिनी' का प्रकाशन 1874 में शुरू किया। यह दस पृष्ठों की पत्रिका थी। इसका प्रवेशांक जनवरी 1974 में प्रकाशित हुआ था। यह कुल मिलाकर तीन साल और कुछ महीने तक प्रकाशित हो सकी। इसके बारे में यह तो ज्ञात नहीं कि इसकी कितनी प्रतियाँ प्रकाशित होती थीं, लेकिन इसकी सौ प्रतियाँ सरकार की तरफ से खरीदी जाती थीं। सरकार का संरक्षण समाप्त होने के साथ ही फरवरी 1878 के बाद इसे 'कविवचन सुधा' में समाहित कर दिया गया। इसमें भारतेन्दु के अलावा अन्य लेखकों की भी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं।

भारतेन्दु की अन्य पत्रिकाओं की ही तरह 'बालाबोधिनी' भी उन्नीसवीं सदी की हिन्दी पट्टी के लिए रहबर की भूमिका निभा रही थी। यह हिन्दू स्त्रियों के मनोरंजन या विशुद्ध ज्ञानवर्धन के लिए नहीं निकाली जा रही थी, वरन् इसके प्रकाशन के पीछे भारतेन्दु का मकसद राष्ट्रीय परियोजना के तहत घर-बाहर और स्त्री-पुरुष के संबंध को पुनर्परिभाषित कर उसके विभाजन को सशक्त बनाने हेतु घरेलू वृत्त के पुनर्गठन और हिन्दू पितृसत्ता के पुनर्संधान की थी, जिसे वसुधा ने अपनी प्रकृति में विक्टोरियाई नैतिकता और विक्टोरियाई स्त्री दृष्टि से प्रभावित बताया है।

'बालाबोधिनी' के प्रकाशन के उद्देश्य के बारे में वसुधा डालमिया ने लिखा है, ''स्त्री की भूमिका को गृहणी और माँ के रूप में पुनर्परिभाषित करते हुए यह अपने रुझान में पूरी तरह विक्टोरियाई थी।" हिन्दी जगत के आलोचकगण जो कि 'नारि नर सम होंहि' का नारा देने मात्र से भारतेन्दु को स्त्री-मुक्तिकामी मान लेते हैं, उन्हें वसुधा का यह विचार हतप्रभ कर सकता है, लेकिन स्वयं 'बालाबोधिनी' की अन्तर्वस्तु, भाषा और तेवर वसुधा की इस स्थापना को सिद्ध करते हैं।

पहले हम 'बालाबोधिनी' के तेवर की बात करें। कविवचन सुधा और हरिश्चंद्र चंद्रिका (जो कि पुरुषों के लिए निकाली जाती थीं) से बालाबोधिनी के तेवर की तुलना की जाए तो जमीन-आसमान का फर्क सामने आता है। ये दोनों पत्रिकाएं वाक्-पटुता और हास्य-व्यंग्यपरक रचनाओं और अपनी जिंदादिल प्रकृति के लिए पूरे हिन्दी क्षेत्र में प्रसिद्ध थीं, जबकि बालाबोधिनी ये गुण सर्वथा अनुपस्थित थे।

इसमें वाकपटुता और हास्य-व्यंग्य का पुट नहीं होता था। इसमें प्रकाशित होनेवाली रचनाएं आमतौर पर अपनी अंतर्वस्तु और शैली में गंभीर और उपदेशपरक हुआ करती थीं। भारतेन्दु के शेष सभी पत्रों में ब्रजभाषा में कृष्ण और राधा के प्रेम की कविताएं निरन्तर प्रकाशित होती थीं, जबकि बालाबोधिनी में ब्रजभाषा और उसमें लिखी जा रही प्रेमपरक कविताओं के प्रकाशन पर प्रतिबंध था।

भारतेन्दु ने 'बालाबोधिनी' के प्रवेशांक में भारतेन्दु लोकनायक, समाज संशोधक, और राष्ट्रवादी के रूप में संभावित पाठिकाओं से पत्रिका का परिचय छोटी बहन के रूप में कराते हैं। उसके द्वारा दी गई सलाहों से सहमत न होने पर भी इस नवान्तुक की बात को ध्यानपूर्वक सुनने का आग्रह करते हैं। भारतेन्दु लिखते हैं -''यदि आप मेरी बचकानी हकलाहट पर ध्यान देंगी तब मैं

सर्वशक्तिमान से प्रार्थना करूँगा कि मेरे हिन्दुस्तान की महिलाएं साक्षर हो जाएं और अपने पुरुष की किस्मत के बराबर की साझीदार बनें।" पत्रिका के प्रवेशांक में महिलाओं के पुरुष के किस्मत की बराबर की साझीदार बनने की भारतेन्दु की प्रार्थना से सचमुच यह आभास होता है कि यह पत्रिका स्त्री मुक्ति की सच्ची पत्रिका होगी, लेकिन इसमें छपनेवाली रचनाएं इसका खंडन करती हैं। इस संदर्भ में एक रचना का उदाहरण प्रस्तुत है।

पटना कॉलेज में संस्कृत के प्राध्यापक बिहारी चौबे की ने 'बालाबोधिनी' में 1876 के मार्च से लेकर जून तक 'आरलेनस की कुमारी की कहानी' धारावाहिक छापी। यह कहानी फ्रांस की मशहूर जांबाज और मिथक बन चुकी साहसी नायिका जोन ऑफ आर्क के जीवन पर लिखी गई थी। 1412 ई. में एक किसान के घर पैदा हुई जोन की माँ के साथ अंग्रेज सैनिकों ने बलात्कार किया था और फ्रांस देश को रौंदा था। जोन आफ आर्क ने अपने को दैवी शक्तियों से युक्त बताकर फ्रांसीसी फौज का नेतृत्व करते हुए अंग्रेजों को हराया था। बाद में वह अंग्रेजों द्वारा पकड़ी गई और उसके असाधारण गुणों से भयाक्रांत अंग्रेजों ने उसे जिंदा जलाकर मार डाला था।

कहानी पढ़ने से ऐसा एहसास होता है कि लेखक ने स्त्रियों को अपने अबलेपन का त्याग कर नूतन शक्ति से ओतप्रोत करने के मकसद से यह कहानी लिखी गई होगी। लेकिन कहानी के अंत में लेखक द्वारा दिए गए उपेदश से 'बालाबोधिनी' के प्रवेशांक में भारतेन्दु द्वारा स्त्री की मर्दों की किस्मत की बराबरी करने की प्रार्थना का खंडन हो जाता है। सिर्फ 19 साल की उम्र में शहीद हो गई जोन के जीवन वृत्तांत का निष्कर्ष चौबे जी निकालते हैं –''जो स्त्रियाँ अपना स्त्रीधर्म छोड़कर देवियों जैसी वीरता दिखाने की कोशिश करेंगी, उनकी दुर्गति ऐसी ही होगी, जैसी जोन की हुई। कहने का तात्पर्य यह है कि अति साहस और माया से बुरा ही फल देती है। स्त्रियाँ जो बहुत-सा झूठ-झूठ अभुजाती और माता भवानी की नकल करती हैं, सो सबका सत्य होना असंभव ही है और लड़कियों को जो उनमें विश्वास हो जाता है, सो न होना चाहिए। स्त्रियों के घर जो पतिदेव रहते हैं, उन्हीं की भक्तिपूर्वक सेवा करना परमोत्तम है। इति।''

प्रवेशांक में ही एक आलेख 'शीलवती' शीर्षक से छपता है। इसमें एक गुणवती पत्नी का चरित्र चित्रण है। इसमें छपी रचनाएं सीधे-सीधे महिलाओं को उपेदश देती थीं, कि उन्हें फूहड़, गँवार, अशिक्षित नहीं होना चाहिए। पत्रिका की

कोशिश नए उभरते मध्यवर्गीय एकल परिवार की सामाजिक बेहतरी के लिए हिन्दी पट्टी की स्त्री को शहरी, आधुनिक और सुगृहिणी और आदर्श माँ बनाने की थी। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उसमें निरन्तर 'शिशुपालन' का एक कालम छपता था, जिसमें शिशुओं के लालन-पालन संबंधी बातों पर चर्चा होती थी। औरतों को आदर्श माँ और सुगृहिणी का प्रशिक्षण देने के मकसद से बिजनौर-पीलीभीत के पास सिकंदराबाद के निवासी हीरालाल द्वारा कन्या पाठशालाओं में पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने के मकसद से तैयार की गई 'बालाप्रबोध' 1875 की जनवरी से शुरू होकर अगले तीन-चार अंकों तक प्रकाशित की गई। इसमें भद्रवर्गीय हिन्दू परिवार के मूल्यों के अनुरूप स्त्रियों को परंपरागत घरेलू कामों को और भी निपुणता और सफाई के साथ पूरा करने की शिक्षा दी गई थी।

बच्चों का पालन कैसे करना चाहिए, पति की सेवा कैसे करनी चाहिए, सास-ससुर, ननद-जेठानी और देवर-जेठ के साथ कैसे नम्रता का बर्ताव करना चाहिए, इन सबकी शिक्षा बड़े ब्यौरे के साथ दी गई थी। स्त्रियों की सुविधा और आराम को हिन्दू भद्रवर्गीय परिवार के लिए नुकसानदायक मानते हुए लेखक लिखता है -''स्त्रियों को खाली बैठना विशेषकर के अयोग्य कहा है। क्योंकि जब वह खाली बैठती हैं तो अवश्य अपनी और पर-स्त्रियों के दोषगुण गिनाती रहती हैं जिसका परिणाम ये होता है कि अनेक क्लेश उत्पन्न हो जाते हैं।''

नौकरी और कॅरियर के अवसरों के महत्तम लाभ उठाने के मकसद से अपने मूल शहर-गाँव से विस्थापित मध्यवर्ग के लिए नई जगह पर अकेली रह रही स्त्री के पातिव्रत्य को सुनिश्चित कर पाना भी बड़ी चिन्ता थी। इस मकसद को ध्यान में रखकर 'बालोबोधिनी' में अक्सर भारतवर्ष की सीता, सावित्री, सती -जैसे आदर्श महिलाओं की चरित्र महिमा प्रकाशित की जाती थी।

'बालाबोधिनी' के विश्लेषण से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि भारतेन्दु के स्त्री- विषयक विचार औपनिवेशिक शासन की लैंगिक विचारधारा की उपस्थिति में स्त्री विषयक विक्टोरियाई धारणा और अपने राष्ट्रीय 'स्वत्व' की निर्मिति के लिए प्राचीन हिन्दू धर्म में स्त्रियों के लिए निर्धारित किए गए मूल्य शील, सती और पतिव्रता से बनते हैं। भारतेन्दु के स्त्री-विषयक विचारों पर उनके वक्त् में उभरते नव मध्यवर्ग के आधुनिक जीवन की परिस्थितियों की महती भूमिका रही थी। ''विक्टोरियाई इंगलैंड में एक नये किस्म का अलगाव महिलाओं पर लादा गया। उसकी पहचान को आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्ग की

महिलाओं के विपरीत परिभाषित किया जा रहा था। वर्गीय प्रतिष्ठा और श्रेष्ठता के प्रतीक के तौर पर मध्यवर्गीय महिलाओं को निजी वृत्त में सीमित प्रक्रिया इतर नहीं थी। ठीक इसी वक्त् घर की नई निर्मिति भी की जा रही थी, जिसमें घर को निजी वृत्त के रूप में इस तरह विच्छेदित कर दिया था, जो पुरुष सत्ता की तात्कालिक चुनैतियों से मुक्त था।''

भारतेन्दु के स्त्री विषयक इन विचारों की पुष्टि उनके नाटकों और अन्य प्रकार के लेखन से भी होती है। उदाहरण के लिए यहाँ पर उनके अधूरे नाटक 'सती प्रताप' का जिक्र उचित होगा। इस नाटक में भारतेन्दु सावित्री के मुख से स्त्री धर्म का उल्लेख करवाते हुए कहते हैं- ''स्त्री धर्म बड़ा कठिन है। जिसको एक बेर मन से पति कहकर वरण किया उसको छोड़कर स्त्री शरीर की अब इस जगत में कौन गति है।

पिता-माता बड़े धार्मिक हैं, सखियों के मुख से यह संवाद सुनकर वह अवश्य उचित ही करेंगे। वा न करेंगे तो भी यह जन्म में अन्य पुरुष अब मेरे हेतु कोई है नहीं। (अपना वेष देखकर) अहा! यह वेष मुझको कैसा प्रिय बोध होता है। जो वेष हमारे जीवितेश्वर धारण करें वह क्यों न प्रिय हो। इसके आगे बहुमूल्य हीरों के हार और चमत्कार दर्शक वस्त्र सब तुच्छ हैं। वही वस्तु प्यारी है, जो प्यारे को प्यारी हो। नहीं तो सर्वसंपत्ति की मूल कारण स्वरूपा देवी पार्वती भगवान भूतनाथ की परिचर्या इस वेष से क्यों करतीं? सतीकुलतिलका देवी जनकनंदिनी को अयोध्या के बड़े-बड़े स्वर्ग विनिंदक प्रासाद और शचीदुर्लभ गृह-सामग्री से भी वन की कर्णकुटी और पर्वतशिला अति प्रिय थी, क्योंकि सुख तो केवल प्राणनाथ की चरण-परिचर्या में है।

जब तक अपना स्वतंत्र सुख है तब तक प्रेम नहीं। पत्नी का सुख एकमात्र पति की सेवा है। जिस बात में प्रियतम की रुचि उसी में सहधर्मिणी की रुचि। अहा! वह भी कोई धन्य दिन आवेगा जब हम भी अपने प्राणाराध्य देवता प्रियतम पति की चरणसेवा में नियुक्त होंगी। वृद्ध श्वसुर और सास के हेतु पाक में नियुक्त होंगी। वृद्ध श्वसुर और सास के हेतु पाक और निर्माण करके उनका परितोष करेंगी। कुसुम, दुर्वा, तुलसी, समिधा इत्यादि बीनने को पति के साथ वन में घूमेंगी। परिश्रम से थकित प्राणनायक के स्वेद-सीकर अपने अंचल से पोंछकर मंद मंद वनपत्र के व्यजनवायु से उनका श्रीअंग शीतल और चरणसंवाहनादि से श्रम करेंगी।" भारतेन्दु द्वारा सावित्री से स्त्री धर्म के बारे में कहलावाए गए इस उद्धरण में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के औपनिवेशिक भारत के मध्यवर्गीय

समाज के लिए आवश्यक स्त्री की छवि को पढ़ा जा सकता है, जो कि कहीं न कहीं योरोपीय मध्यवर्गीय स्त्री की ही प्रतिछवि मालूम पड़ती है।

उन्नीसवीं सदी के उभरते मध्यवर्ग के सामने आर्थिक चुनौतियाँ बहुत गंभीर थी। शिक्षा अर्जन पर आधारित उनके जीवन पर अपनी संतति के लिए महंगी शिक्षा का तो प्रबंध करना ही था, अपनी आधुनिक जीवनशैली और सामाजिक प्रतिष्ठा के नए प्रतिमानों पर खरे उतरने के भी आर्थिक दवाबों का सामना करना था। ऐसे में उसे बतौर गृहणी एक किफायतसार स्त्री की आवश्यकता थी, जो अंग्रेज स्त्री की घर और देश की सभी जिम्मेदारियों को तो पूरा करे, लेकिन उनकी तरह अपने रहन-सहन पर फिजूलखर्ची न करे। सावित्री के मुख से हीरे जवाराहत को त्याग कर सत्यवान के साथ सादा जीवन जीने का यही मध्यवर्गीय संदर्भ है।

साथ ही उन्नीसवीं सदी के मध्यवर्ग को नई जगह पर अकेली रह रही स्त्री के पातिव्रत्य की रक्षा को सुनिश्चित करने की दुश्चिंता सता रही थी, इसलिए न केवल भारतेन्दु वरन् उस वक्त् के हर हिन्दी लेखक में पातिव्रत्य का महिमामंडन मिलता है। सावित्री का यह कहना कि 'पत्नी का सुख एकमात्र पति की सेवा है', मध्यवर्ग की इसी आशंका का संकेत है। सास, श्वसुर के लिए खाना-पकाना, उनकी सेवा यह सब घर को निपुणता से संचालित करने के संकेत है। यहाँ पर भारतेन्दु ने आधुनिक मध्यवर्ग की स्त्री की छवि को वैधता प्रदान करने के लिए धर्म के प्राचीन मुहावरों का प्रयोग किया है।

मध्यवर्ग की स्त्री की जिस छवि को अखिल भारतीय स्त्री के बतौर प्रचारित प्रसारित किया जा रहा था, वह हिन्दू धर्म की उच्च जाति की स्त्री थी। उस पर थोपे गए आधुनिक मान-मूल्य ने अब तक की परंपराओं से प्राप्त स्त्री के 'स्पेस' और 'क्षणों की स्वाधीनता' को भी छीनने का काम किया और उसे मान मर्यादा के अट्टालिका पर बैठाकर उससे स्वाभाविक जीवन के रास-रंग को छीन लिया गया। उसके दु:ख और खुशी मनाने के तरीकों को भी नियंत्रित किया जाने लगा। और यह सब किया गया यह कहते हुए कि निम्न वर्ग की स्त्री से वह अलग हैं, उनसे बहुत श्रेष्ठ हैं।

जातीय संगीत में एक ओर तो भारतेन्दु स्त्री द्वारा गीत गाए जाने की चर्चा करते हैं और समाज सुधार में उसके इस्तेमाल की बात करते हैं, साथ ही वह शादी में स्त्रियों द्वारा हास-परिहास और गाली से भरे गीत गाने के सर्वथा विरुद्ध हैं। उनके जीवनीकार शिवनन्दन सहाय ने लिखा है-'' यह विवाह आदि में बुरे

गीत गाना पसंद नहीं करते थे, वरन् मई 1880 में जब इनकी कन्या का विवाह हुआ तो उस समय इन्होंने अपने घर गाली का गाना बंद कर दिया।" इस बात की सूचना 'कविवचन' सुधा में प्रकाशित होती है और भारतेन्दु के मित्र ठाकुर जाहर सिंह उन्हें पत्र लिखकर इस बात के लिए साधुवाद देते हैं और कहते हैं कि –''हमारी जाति की स्त्रियां अच्छा गीत नहीं जानतीं अत: आपसे मेरी प्रार्थना है कि कोई पुस्तक ऐसी बने जिसमें हर समय के अच्छे-अच्छे सरल भाषा में हों, जो स्त्रियाँ उनको पढ़ कर बुरी चाल के गीत आदि छोड़ दें।"

अपनी परंपरा से प्रेरणा लेने वाले भारतेन्दु आखिर स्त्रियों द्वारा शादी में गाए जाने वाले गीत को बुरा मानकर त्यागने की बात क्यों करते हैं, दरअसल इसकी व्याख्या वसुधा की इसी टिप्पणी के सहारे की जा सकती है कि उनकी स्त्री-विषयक दृष्टिकोण में विक्टोरियाई नैतिकता का प्रभाव है।

विक्टोरियाई इंगलैंड जिस तरह मध्यवर्गीय स्त्री की परिभाषा निम्नवर्गीय स्त्री के विपरीत गढ़ी जा रही थी, उसी भाँति 'हन्दी जाति' का गठन करने वाले भारतेन्दु हिन्दू मध्यवर्गीय स्त्री को अंधेर नगरी की मछली बेचनेवाली निम्नवर्गीय महिला के विपरीत गढ़ रहे थेय इसलिए जो आचार-व्यवहार उन्हें निम्न वर्गीय महिला के समकक्ष करती हो, उसका परित्याग करना अनिवार्य था। इसी मान्यता के अंतर्गत भारतेन्दु शादी में गाली भरे गीत गाने के विरुद्ध थे।

भारतेन्दु का अंतर्विरोध

भारतेन्दु के स्त्री-विषय विचार की व्याख्या उनके समय और व्यक्तित्त्व के अंतर्विरोधों को समाने रखकर ही की जा सकती है। दरअसल भारतेन्दु का अंतर्विरोध न केवल उनका बल्कि उनके युग का अंतर्विरोध था। दरअसल उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के हिन्दी पट्टी के तमाम बौद्धिकवर्ग स्वयं और अपने समुदाय को अंग्रेजों के रचे हुए इतिहास के आइने में देख रहे थे।

सभ्यतागत श्रेष्ठता और आधुनिकता के अग्रदूत होने का दावा करनेवाले अंग्रेज देसी समुदाय के समक्ष सटीक, तर्कयुक्त, वैज्ञानिक जीवन पद्धति का उदाहरण पेश कर रहे थे। ऐसे वक्त् में देसी समुदाय के सामने दो कठिन चुनौतियाँ थीं। पहली चुनौती अतीत की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करने की थी, जिससे भारत की सभ्यतागत श्रेष्ठता साबित की जा सके। दूसरी चुनौती स्वयं और समुदाय को आधुनिक बनाने की थी, लेकिन अपने 'स्वत्व' की रक्षा करते हुए।

भारतेन्दु के भीतर अपने युग का यह अंतर्विरोध मौजूद है और उनके जेहन में परंपरा और आधुनिकता का वितंडा हमेशा चलता रहता था। 'परंपरा और आधुनिकता' के इस संघर्ष में भारतेन्दु ने परंपरा के सीधे-सरल ढंग से स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे आधुनिक तर्क से संपन्न बनाकर प्रस्तुत किया। इसका उदाहरण उनके लेखन में बहुत जगह दृष्टिगत होता है। अपने बलिया वाले भाषण में वह पारंपरिक धार्मिक रीति-नीति को भी वैज्ञानिकता से सिद्ध करते हुए लिखते हैं-"तुम्हारे बलिया मेला और यहाँ स्नान क्यों बनाया गया? जिससे जो लोग कभी आपस में नहीं मिलते, दस-दस पाँच-पाँच कोस से वे लोग साल में एक जगह एकत्र होकर आपस में मिलें।

एकादशी का व्रत क्यों रखा है? जिससे महीने में दो-एक उपवास से शरीर शुद्ध हो जाए। गंगा जी नहाने जाते हो तो पहले पानी सिर पर चढ़ाकर तब पैर डालने का विधान क्यों है? जिससे तलुए से गरमी सिर में चढ़कर विकार न उत्पन्न करे। दीवाली इसी हेतु है कि इसी बहाने साल-भर में एक बेर तो सफाई हो जाय। यही तिहवार तुम्हारी म्युनिसपालिटी है।''

भारतेन्दु आधुनिकता को अपनाने के सबल आकांक्षी होने के बावजूद परंपरा के पूर्ण त्याग के पक्ष में कतई नहीं थे। वह आधुनिक विचारों को भी परंपरा का वस्त्र पहनाकर अपना रहे थे ठीक यही अंतर्विरोध उनके स्त्री-विषयक विचार में भी दृष्टिगोचर होते हैं। वह भारतीय स्त्री के बारे में इच्छा करते हैं-''जिस भाँति अंग्रेज स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी लिखी होती हैं, घर का काम-काज सम्हालती हैं, अपने संतानगण को शिक्षा देती हैं, अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की संपत्ति-विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं।"

उसी भाँति आर्यकुल ललनागण भी करें। ऐसी इच्छा करते हए वह मध्यवर्गीय आधुनिक घर और आधुनिक राष्ट्र के लिए जरूरी स्त्री की बात कर रहें हैं और भौतिक जगत में उपनिवेशकों की श्रेष्ठता को स्वीकार कर आत्मसात कर रहे हैं, लेकिन जब वह कहते हैं-''इससे यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूं कि इन गौरांगी युवती समूह की भाँति हमारी कुललक्ष्मी गणा की लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमें" तब वह भारतीय स्त्री के उच्चतर मूल्यों के आधार पर आध्यात्मिक धरातल पर अपनी सभ्यता को उपनिवेशकों की सभ्यता से श्रेष्ठ साबित कर रहे हैं।

4

द्विवेदीयुगीन हिन्दी पत्रकारिता

द्विवेदी युग हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग के बाद का समय है। इस युग का नाम महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से रखा गया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो बहुभाषी होने के साथ ही साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे। उन्होंने सरस्वती का अठारह वर्षों तक संपादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक महान कीर्तिमान स्थापित किया था। वे हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खड़ीबोली हिन्दी की कविता के प्रारंभिक और महत्त्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिन्दी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी। वे भाषाशास्त्री थे, अनुवादक थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अतः वे युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहें, युग निर्माता थे। वे अपने चिन्तन और लेखन के द्वारा हिन्दी प्रवेश में नव-जागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे।

आचार्य' की उपाधि

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले साहित्यकार थे, जिनको 'आचार्य' की उपाधि मिली थी। इसके पूर्व संस्कृत में आचार्यों की एक परंपरा थी। मई 1933 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा ने उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ पर बनारस में एक बड़ा साहित्यिक आयोजन कर द्विवेदी का अभिनंदन किया था। उनके सम्मान में द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन कर, उन्हें समर्पित किया था। इस अवसर पर द्विवेदी जी ने जो अपना वक्तव्य दिया था, वह 'आत्म-निवेदन' नाम से प्रकाशित हुआ था। इस 'आत्म-निवेदन' में वे कहते हैं, ''मुझे 'आचार्य' की पदवी मिली

है। क्यों मिली है, मालूम नहीं ? कब ? किसने दी है, यह भी मुझे मालूम नहीं ? मालूम सिर्फ इतना ही है, कि मैं बहुधा-इस पदवी से विभूषित किया जाता हूँ।....शंकराचार्य, मध्वाचार्य, सांख्याचार्य आदि के सदृश किसी आचार्य के चरणरज–कण की बराबरी मैं नहीं कर सकता। बनारस के संस्कृत कॉलेज या किसी विश्वविद्यालय में भी मैंने कदम नहीं रखा। फिर इस पदवी का मुस्तहक मैं कैसे हो गया ?" महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मैट्रिक तक की पढ़ाई की थी। तत्पश्चात् वे रेलवे में नौकरी करने लगे थे।

उसी समय इन्होंने अपने लिए सिद्धान्त निश्चित किए-वक्त् की पाबंदी करना, रिश्वत न लेना, अपना काम ईमानदारी से करना और ज्ञान-वृद्धि के लिए सतत प्रयत्न करते रहना। द्विवेदी जी ने लिखा है, ''पहले तीन सिद्धान्तों के अनुकूल आचरण करना तो सहज था, पर चौथे के अनुकूल सचेत रहना कठिन था। तथापि सतत अभ्यास से उसमें भी सफलता होती गई। तारबाबू होकर भी, टिकट बाबू, मालबाबू, स्टेशन मास्टर, यहाँ तक कि रेल पटरियाँ बिछाने और उसकी सड़क की निगरानी करनेवाले प्लेट-लेयर (Permanent way Inspector) तक का भी काम मैंने सीख लिया।

फल अच्छा ही हुआ। अफसरों की नजर मुझ पर पड़ी। मेरी तरक्की होती गई। वह इस तरह की एक दफे मुझे छोड़कर तरक्की के लिए दरख्वास्त नहीं देनी पड़ी।" द्विवेदी 15 रुपये मासिक पर रेलवे में बहाल हुए थे और जब उन्होंने 1904 ई. में नौकरी छोड़ी, उस वक्त् 150 रुपये मूल वेतन एवं 50 रुपये भत्ता मिलता था, यानी कुल 200 रुपये।

उस जमाने में यह एक बहुत बड़ी राशि थी। वे 18 वर्ष की उम्र में रेलवे में बहाल हुए थे। उनका जन्म 1864 ई. में हुआ था और 1882 ई. से उन्होंने नौकरी प्रारंभ की थी। नौकरी करते हुए वे अजमेर, बंबई, नागपुर, होशंगाबाद, इटारसी, जबलपुर एवं झाँसी शहरों में रहे। इसी दौरान उन्होंने संस्कृत एवं ब्रजभाषा पर अधिकार प्राप्त करते हुए पिंगल अर्थात् छंदशास्त्र का अभ्यास किया। उन्होंने अपनी पहली पुस्तक 1895 ई. में श्रीमहिम्नस्तोत्र की रचना की, जो पुष्पदंत के संस्कृत काव्य का ब्रजभाषा में काव्य रूपांतर है। द्विवेदी जी ने सभी पद्यरचनाओं का भावार्थ खड़ी बोली गद्य में ही किया है। उन्होंने इसकी भूमिका में लिखा है, ''इस कार्य में हुशंगाबादस्थ बाबू हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ का जो सांप्रत मध्यप्रदेश राजधानी नागपुर में विराजमान हैं, मैं परम कृतज्ञ हूँ।" अपने 'आत्म-निवेदन' में उन्होंने लिखा है, ''बचपन से मेरा अनुराग तुलसीदास की

रामायण और ब्रजवासीदास के ब्रजविलास पर हो गया था। फुटकर कविता भी मैंने सैकड़ों कंठ कर लिए थे। हुशंगाबाद में रहते समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कविवचन सुधा और गोस्वामी राधाचरण के एक मासिक पत्र ने मेरे उस अनुराग की वृद्धि कर दी। वहीं मैंने बाबू हरिश्चंद्र कुलश्रेष्ठ नाम के एक सज्जन से, जो वहीं कचहरी में मुलाजिम थे, पिंगल का पाठ पढ़ा। फिर क्या था, मैं अपने को कवि ही नहीं, महाकवि समझने लगा।

मेरा यह रोग बहुत दिनों तक ज्यों का त्यों बना रहा।" 1889 से 1892 ई. तक द्विवेदी जी की इस प्रकार की कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं-विनय-विनोद, विहार-वाटिका, स्नेहमाला, ऋतु तरंगिनी, देवी स्तुति शतक, श्री गंगालहरी आदि। 1896 ई. में इन्होंने लॉर्ड बेकन के निबंधों का हिन्दी में भावार्थ मूलक रुपांतर किया, जो बेकन-विचार-रत्नावली पुस्तक में संकलित है। 1898 ई. में इन्होंने हिन्दी कालिदास की आलोचना लिखी, जो हिन्दी की पहली आलोचनात्मक पुस्तक है। 1988 ई. में श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम पर इन्होंने नैषध-चरित-चर्चा नामक आलोचनात्मक एवं गवेषणात्मक पुस्तक लिखी। यह सिलसिला जो शुरू हुआ, वह 1930-31 ई. तक चला और द्विवेदी जी की कुल पच्चासी पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

जनवरी, 1903 ई. से दिसंबर, 1920 ई. तक इन्होंने सरस्वती नामक मासिक पत्रिका का संपादन कर एक कीर्तिमान स्थापित किया था, इसीलिए इस काल को हिन्दी साहित्योतिहास में 'द्विवेदी-युग' के नाम से जाना जाता है। अपने प्रकांड पांडित्य के कारण इन्हें 'आचार्य' कहा जाने लगा। उनके व्यक्तित्त्व के बारे में आचार्य किशोरी दास वाजपेयी ने लिखा है, ''उनके सुदृढ़ विशाल और भव्य कलेवर को देखकर दर्शक पर सहसा आतंक छा जाता था और यह प्रतीत होने लगता था कि मैं एक महान ज्ञानराशि के नीचे आ गया हूँ।"

द्विवेदी जी का मानना था कि 'ज्ञान-राशि' के संचित कोष का ही नाम साहित्य है।' द्विवेदी जी स्वयं तो एक 'महान ज्ञान-राशि' थे ही उनका संपूर्ण वाङ्मय भी संचित ज्ञानराशि है, जिससे होकर गुजरना अपनी जातीय परंपरा को आत्मसात करते हुए विश्वचिन्तन के समक्ष भी होना है। डॉ. रामविलास शर्मा ने द्विवेदी जी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है, ''द्विवेदी जी ने अपने साहित्य जीवन के आरंभ में पहला काम यह किया कि उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। उन्होंने जो पुस्तक बड़ी मेहनत से लिखी और जो आकार में उनकी और पुस्तकों से बड़ी है, वह संपत्तिशास्त्र है।....अर्थशास्त्र का अध्ययन

करने के कारण द्विवेदी जी बहुत-से विषयों पर ऐसी टिप्पणियाँ लिख सके जो विशुद्ध साहित्य की सीमाएँ लाँघ जाती हैं।

इसके साथ उन्होंने राजनीति विषयों का अध्ययन किया और संसार में जो महत्त्वपूर्ण राजनीति घटनाएँ हो रही थीं, उन पर उन्होंने लेख लिखे। राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ उन्होंने आधुनिक विज्ञान से परिचय प्राप्त किया और इतिहास तथा समाजशास्त्र का अध्ययन गहराई से किया। इसके साथ भारत के प्राचीन दर्शन और विज्ञान की ओर इन्होंने ध्यान दिया और यह जानने का प्रयत्न किया कि हम अपने चिन्तन में कहाँ आगे बढ़े हुए हैं और कहाँ पिछड़े हैं। इस तरह की तैयारी उनसे पहले किसी संपादक ने न की थी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी प्रवेश में नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए वह सबसे उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हुए।''

ऐसे महान ज्ञान-राशि के पुंज थे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। किन्तु रामविलास शर्मा के पूर्व जितने भी आलोचक हुए, उन्होंने द्विवेदी जी का उचित मूल्यांकन तो नहीं ही किया, अपितु उनका अवमूल्यन ही किया। इन महान आलोचकों में रामचन्द्र शुक्ल, नंददुलारे वाजपेयी एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में द्विवेदी जी पर जो टिप्पणी की है, उस पर एक नजर डालें, ''द्विवेदी जी ने सन् 1903 ई. में सरस्वती के संपादन का भार लिया।

तब से अपना सारा समय लिखने में ही लगाया। लिखने की सफलता वे इस बात में मानते थे कि पाठक भी उससे बहुत-कुछ समझ जाएँ। कई उपयोगी पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने फुटकर लेख भी बहुत लिखे। पर इन लेखों में अधिकतर लेख 'बातों के संग्रह' के रूप में ही है। भाषा के नूतन शक्ति चमत्कार के साथ नए-नए विचारों की उद्‌भावना वाले निबंध बहुत ही कम मिलते हैं।

स्थायी निबंधों की श्रेणी में चार ही लेख, जैसे 'कवि और कविता', 'प्रतिभा' आदि आ सकते हैं। पर ये लेखनकाल या सूक्ष्म विचार की दृष्टि से लिखे नहीं जान पड़ते। 'कवि और कविता' कैसा गंभीर विषय है, कहने की आवश्यकता नहीं। पर इस विषय की बहुत मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर कही गई हैं।" इसी प्रसंग में रामचन्द्र शुक्ल आगे लिखते हैं, ''कहने की आवश्यकता नहीं कि द्विवेजी जी के लेख या निबंध विचारात्मक श्रेणी में आएँगे। पर विचार की वह गूढ़ गुंफित परंपरा उनमें नहीं मिलती जिससे पाठक की बुद्धि

उत्तेजित होकर किसी नई विचार-पद्धति पर दौड़ पड़े। शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है जहाँ एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर कसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी संबद्ध विचारखंड के लिए हों। द्विवेदी जी के लेखों को पढ़ने में ऐसा जान पड़ता है कि लेखक बहुत मोटी अक्ल के पाठकों के लिए लिख रहा है।''

अब आप देखें कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखन के प्रति रामचंद्र शुक्ल की ये टिप्पणी पढ़कर हिन्दी का कोई भी पाठक उससे विरक्त होगा या आसक्त। रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास को हिन्दी के विद्यार्थी साठ-पैंसठ वर्षों से आप्त वचनों की तरह याद करते आ रहे हैं। ऐसे में मूल पाठ से उनके आप्त वाक्यों का यदि मिलान कर परीक्षण न किया जाए, तो अनर्थ होगा ही।

रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के सबसे बड़े समालोचक, सबसे बड़े साहित्येतिहास-लेखक हैं। इसी इतिहास में वे महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदानों को सिर्फ भाषा-परिष्कारकर्त्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके शब्द हैं, ''यद्यपि द्विवेदी जी ने हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया है।

यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसा अव्यवस्थित, व्याकरणविरुद्ध और ऊटपटाँग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।" दरअसल शुक्ल जी जिस आलोचना-पद्धति का सहारा लेकर उक्त बातें लिख रहे थे, उसे अंग्रेजी में Judicial Criticism और हिन्दी में निर्णयात्मक आलोचना कहते हैं और इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके आलोचना के क्षेत्र में आलोचकों का ध्यान ऐतिहासिक युग, वातावरण एवं जीवन से हटाकर अधिकांशतः कलापक्ष तक ही सीमित कर दिया है।

कलापक्ष की ओर ध्यान देने वाले आलोचकों का कहना है कि युगीन परिस्थितियाँ, युगीन चेतना और युग सत्य निरंतर परिवर्तनशील हैं अतएव इन्हें आधार नहीं बनाया जा सकता। उनकी परिवर्तनशीलता के कारण इन्हें साहित्य का स्थायी मानदंड स्वीकार किया जा सकता। लेकिन इसी के साथ यह भी सत्य

है कि ऐसी दशा में निर्णयात्मक आलोचना का कोई मूल्य नहीं रहेगा। इसका मुख्य कारण है ऐसे आलोचक का रचनाकार और रचना पर फतवे जारी करना। यही कारण है कि रामचंद्र शुक्ल ने द्विवेदी जी के विचारों को, उनके संचित ज्ञान-राशि पर ध्यान नहीं दिया और उनकी भाषा पर विचार किया।

'मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर'-यह अभिव्यक्ति की प्रणाली पर बात की जा रही है, जो निस्संदेह भाषा है। जब द्विवेदी जी मूर्ख या मोटे दिमाग वालों के लिए लिखते थे और मोटी तरह से लिखते थे तो उन्होंने भाषा परिष्कार कैसे किया ? जिस लेखक को भाषा की सतही समझ होगी, वह दूसरे लेखकों की भाषा को दुरुस्त कैसे करेगा ? पुनः रामचन्द्र शुक्ल की बातों पर विचार करें-महावीर प्रसाद द्विवेदी ने शाश्वत साहित्य या स्थायी साहित्य नहीं लिखा। उनका महत्त्व भाषा-सुधार में है और उनकी भाषा कैसी है-मोटी अक्लवालों के लिए है। इस तरह की बातों से आचार्य शुक्ल का इतिहास भरा हुआ है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी-नवरत्न की समीक्षा लिखते हुए लिखा है, ''इस तरह की बातें किसी इतिहास कार के ग्रंथ में यदि पाई जाएँ तो उसके इतिहास का महत्त्व कम हुए बिना नहीं रह सकता। इतिहास-लेखक की भाषा तुली हुई होनी चाहिए। उसे बेतुकी बातें न हाँकनी चाहिए। अतिशयोक्तियाँ लिखना इतिहासकार का काम नहीं। उसे चाहिए कि वह प्रत्येक शब्द और वाक्यांश के अर्थ को अच्छी तरह समझकर उसका प्रयोग करे।''

सन् 1933 ई. में आचार्य द्विवेदी को नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया। इसकी प्रस्तावना श्यामसुंदर दास एवं रायकृष्णदास के नाम से प्रकाशित हुई, किन्तु यह लिखी गई नंददुलारे वाजपेयी द्वारा। इसलिए यह 1940 ई. में प्रकाशित वाजपेयी जी की पुस्तक हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी में संकलित है। इसमें यह विचार किया गया है कि स्थायी या शाश्वत साहित्य में द्विवेदी जी का साहित्य परिगणित हो सकता है या नहीं। इस दृष्टिकोण से महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित संपूर्ण साहित्य को अयोग्य ठहरा दिया गया। सिर्फ उनके द्वारा संपादित सरस्वती के अंकों को ही महत्त्व दिया गया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) हिन्दी के महान साहित्यकार, पत्रकार एवं युगप्रवर्तक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की अविस्मरणीय सेवा की और

अपने युग की साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को दिशा और दृष्टि प्रदान की। उनके इस अतुलनीय योगदान के कारण आधुनिक हिंदी साहित्य का दूसरा युग 'द्विवेदी युग' (1900-1920) के नाम से जाना जाता है। उन्होंने सत्रह वर्ष तक हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका सरस्वती का सम्पादन किया। हिन्दी नवजागरण में उनकी महान भूमिका रही। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को गति व दिशा देने में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा।

जीवन परिचय

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के (बैसवारा) रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में 15 मई 1864 को हुआ था। इनके पिता का नाम पं. रामसहाय दुबे था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। धनाभाव के कारण इनकी शिक्षा का क्रम अधिक समय तक न चल सका। इन्हें जी आई पी रेलवे में नौकरी मिल गई। 25 वर्ष की आयु में रेल विभाग अजमेर में 1 वर्ष का प्रवास-नौकरी छोड़कर पिता के पास मुंबई प्रस्थान एवं टेलीग्राफ का काम सीखकर इंडियन मिडलैंड रेलवे में तार बाबू के रूप में नियुक्ति। अपने उच्चाधिकारी से न पटने और स्वाभिमानी स्वभाव के कारण 1904 में झाँसी में रेल विभाग की 200 रुपये मासिक वेतन की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

नौकरी के साथ-साथ द्विवेदी अध्ययन में भी जुटे रहे और हिंदी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, संस्कृत आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

सन् 1903 में द्विवेदी जी ने सरस्वती मासिक पत्रिका के संपादन का कार्यभार सँभाला और उसे सत्रह वर्ष तक कुशलतापूर्वक निभाया। 1904 में नौकरी से त्यागपत्र देने के पश्चात स्थायी रूप से 'सरस्वती' के संपादन कार्य में लग गये। 200 रुपये मासिक की नौकरी को त्यागकर मात्र 20 रुपये प्रतिमास पर सरस्वती के सम्पादक के रूप में कार्य करना उनके त्याग का परिचायक है। संपादन-कार्य से अवकाश प्राप्त कर द्विवेदी जी अपने गाँव चले आए। अत्यधिक रुग्ण होने से 21 दिसम्बर 1938 को रायबरेली में इनका स्वर्गवास हो गया।

प्रकाशित कृतियाँ

महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले लेखक थे, जिन्होंने केवल अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, बल्कि उसे आलोचकीय

दृष्टि से भी देखा था। उन्होंने अनेक विधाओं में रचना की। कविता, कहानी, आलोचना, पुस्तक समीक्षा, अनुवाद, जीवनी आदि विधाओं के साथ उन्होंने अर्थशास्त्र, विज्ञान, इतिहास आदि अन्य अनुशासनों में न सिर्फ विपुल मात्रा में लिखा, बल्कि अन्य लेखकों को भी इस दिशा में लेखन के लिए प्रेरित किया। द्विवेदी जी केवल कविता, कहानी, आलोचना आदि को ही साहित्य मानने के विरुद्ध थे। वे अर्थशास्त्र, इतिहास, पुरातत्त्व, समाजशास्त्र आदि विषयों को भी साहित्य के ही दायरे में रखते थे। वस्तुतः स्वाधीनता, स्वदेशी और स्वावलंबन को गति देने वाले ज्ञान-विज्ञान के तमाम आधारों को वे आंदोलित करना चाहते थे। इस कार्य के लिये उन्होंने सिर्फ उपदेश नहीं दिया, बल्कि मनसा, वाचा, कर्मणा स्वयं लिखकर दिखाया।

उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत-साहित्य की निरंतर प्रवहमान धारा का अवगाहन किया था एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टि अपनायी थी। उन्होंने श्रीहर्ष के संस्कृत महाकाव्य नैषधीयचरितम् पर अपनी पहली आलोचना पुस्तक 'नैषधचरित चर्चा' नाम से लिखी (1899), जो संस्कृत-साहित्य पर हिन्दी में पहली आलोचना-पुस्तक भी है। फिर उन्होंने लगातार संस्कृत-साहित्य का अन्वेषण, विवेचन और मूल्यांकन किया। उन्होंने संस्कृत के कुछ महाकाव्यों के हिन्दी में औपन्यासिक रूपांतर भी किये, जिनमें कालिदास कृत रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, किरातार्जुनीय प्रमुख हैं।

संस्कृत, ब्रजभाषा और खड़ी बोली में स्फुट काव्य-रचना से साहित्य-साधना का आरंभ करने वाले महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत और अंग्रेजी से क्रमशः ब्रजभाषा और हिन्दी में अनुवाद-कार्य के अलावा प्रभूत समालोचनात्मक लेखन किया। उनकी मौलिक पुस्तकों में नाट्यशास्त्र (1904 ई.), विक्रमांकदेव चरितचर्या (1907 ई.), हिन्दी भाषा की उत्पत्ति (1907 ई.) और संपत्तिशास्त्र (1907 ई.) प्रमुख हैं तथा अनूदित पुस्तकों में शिक्षा (हर्बर्ट स्पेंसर के 'एजुकेशन' का अनुवाद, 1906 ई.) और स्वाधीनता (जान, स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' का अनुवाद, 1907 ई.)।

द्विवेदी जी ने विस्तृत रूप में साहित्य रचना की। इनके छोटे-बड़े ग्रंथों की संख्या कुल मिलाकर 81 है। पद्य के मौलिक-ग्रंथों में काव्य-मंजूषा, कविता कलाप, देवी-स्तुति, शतक आदि प्रमुख हैं। गंगालहरी, ऋतु तरंगिणी, कुमार

संभव सार आदि इनके अनूदित पद्य-ग्रंथ हैं। गद्य के मौलिक ग्रंथों में तरुणोपदेश, नैषध चरित्र चर्चा, हिंदी कालिदास की समालोचना, नाटय शास्त्र, हिंदी भाषा की उत्पत्ति, कालीदास की निरंकुशता आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अनुवादों में वेकन विचार, रत्नावली, हिंदी महाभारत, वेणी संसार आदि प्रमुख हैं।

वर्ण्य विषय

हिंदी भाषा के प्रसार, पाठकों के रुचि परिष्कार और ज्ञानवर्धन के लिए द्विवेदी जी ने विविध विषयों पर अनेक निबंध लिखे। विषय की दृष्टि से द्विवेदी जी निबंध आठ भागों में विभाजित किए जा सकते हैं - साहित्य, जीवन चरित्र, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, उद्योग, शिल्प भाषा, अध्यात्म। द्विवेदी जी ने आलोचनात्मक निबंधों की भी रचना की। उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में संस्कृत टीकाकारों की भांति कृतियों का गुण-दोष विवेचन किया और खंडन-मंडन की शास्त्रार्थ पद्धति को अपनाया है।

भाषा

द्विवेदी जी सरल और सुबोध भाषा लिखने के पक्षपाती थे। उन्होंने स्वयं सरल और प्रचलित भाषा को अपनाया। उनकी भाषा में न तो संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है और न उर्दू-फारसी के अप्रचलित शब्दों की भरमार है। वे गृह के स्थान पर घर और उच्च के स्थान पर ऊँचा लिखना अधिक पसंद करते थे। द्विवेदी जी ने अपनी भाषा में उर्दू और फारसी के शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया, किंतु इस प्रयोग में उन्होंने केवल प्रचलित शब्दों को ही अपनाया। द्विवेदी जी की भाषा का रूप पूर्णत: स्थित है। वह शुद्ध परिष्कृत और व्याकरण के नियमों से बंधी हुई है। उनका वाक्य-विन्यास हिंदी को प्रकृति के अनुरूप है कहीं भी वह अंग्रेजी या उर्दू के ढंग का नहीं।

शैली

द्विवेदी जी की शैली के मुख्यत: तीन रूप दृष्टिगत होते हैं-

परिचयात्मक शैली

द्विवेदी जी ने नये-नये विषयों पर लेखनी चलाई। विषय नये और प्रारंभिक होने के कारण द्विवेदी जी ने उनका परिचय सरल और सुबोध शैली में कराया।

ऐसे विषयों पर लेख लिखते समय द्विवेदी जी ने एक शिक्षक की भांति एक बात को कई बार दुहराया है ताकि पाठकों की समझ में वह भली प्रकार आ जाए। इस प्रकार लेखों की शैली परिचयात्मक शैली है।

आलोचनात्मक शैली

हिंदी भाषा के प्रचलित दोषों को दूर करने के लिए द्विवेदी जी इस शैली में लिखते थे। इस शैली में लिखकर उन्होंने विरोधियों को मुंह-तोड़ उत्तर दिया। यह शैली ओजपूर्ण है। इसमें प्रवाह है और इसकी भाषा गंभीर है। कहीं-कहीं यह शैली ओजपूर्ण न होकर व्यंग्यात्मक हो जाती है। ऐसे स्थलों पर शब्दों में चुलबुलाहट और वाक्यों में सरलता रहती है। 'इस म्यूनिसिपाल्टी के चेयरमैन (जिसे अब कुछ लोग कुर्सी मैन भी कहने लगे हैं) श्रीमान बूचा शाह हैं। बाप दादे की कमाई का लाखों रुपया आपके घर भरा है। पढ़े-लिखे आप राम का नाम हैं। चेयरमैन आप सिर्फ इसलिए हुए हैं कि अपनी कार गुजारी गवर्नमेंट को दिखाकर आप राय बहादुर बन जाएं और खुशामदियों से आठ पहर चौंसठ घर-घिरे रहें।'

विचारात्मक अथवा गवेषणात्मक शैली

गंभीर साहित्यिक विषयों के विवेचन में द्विवेदी जी ने इस शैली को अपनाया है। इस शैली के भी दो रूप मिलते हैं। पहला रूप उन लेखों में मिलता है, जो किसी विवादग्रस्त विषय को लेकर जनसाधारण को समझाने के लिए लिखे गए हैं। इसमें वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा सरल है। दूसरा रूप उन लेखों में पाया जाता है, जो विद्वानों को संबोधित कर लिखे गए हैं। इसमें वाक्य अपेक्षाकृत लंबे हैं। भाषा कुछ क्लिष्ट है। उदाहरण के लिए -

अप्समार और विक्षिप्तता मानसिक विकार या रोग है। उसका संबंध केवल मन और मस्तिष्क से है। प्रतिभा भी एक प्रकार का मनोविकार ही है। इन विकारों की परस्पर इतनी संलग्नता है कि प्रतिभा को अप्समार और विक्षिप्तता से अलग करना और प्रत्येक परिणाम समझ लेना बहुत ही कठिन है।

महत्त्वपूर्ण कार्य

हिंदी साहित्य की सेवा करने वालों में द्विवेदी जी का विशेष स्थान है। द्विवेदी जी की अनुपम साहित्य-सेवाओं के कारण ही उनके समय को द्विवेदी

युग के नाम से पुकारा जाता है। भारतेंदु युग में लेखकों की दृष्टि की शुद्धता की ओर नहीं रही। भाषा में व्याकरण के नियमों तथा विराम-चिह्नों आदि की कोई परवाह नहीं की जाती थी। भाषा में आशा किया, इच्छा किया जैसे प्रयोग दिखाई पड़ते थे। द्विवेदी जी ने भाषा के इस स्वरूप को देखा और शुद्ध करने का संकल्प किया। उन्होंने इन अशुद्धियों की ओर आकर्षित किया और लेखकों को शुद्ध तथा परिमार्जित भाषा लिखने की प्रेरणा दी।

द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को कविता के लिए विकास का कार्य किया। उन्होंने स्वयं भी खड़ी बोली में कविताएं लिखीं और अन्य कवियों को भी उत्साहित किया। श्री मैथिली शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय जैसे खड़ी बोली के श्रेष्ठ कवि उन्हीं के प्रयत्नों के परिणाम हैं।

द्विवेदी जी ने नये-नये विषयों से हिंदी साहित्य को संपन्न बनाया। उन्हीं के प्रयासों से हिंदी में अन्य भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद हुए तथा हिंदी-संस्कृत के कवियों पर आलोचनात्मक निबंध लिखे गए।

हिंदी पत्रकारिता में योगदान

हिन्दी पत्रकारिता जगत में जब हम संपादकों के योगदान की चर्चा करते हैं तो उसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम अग्रणी है। वास्तव में द्विवेदी जी ने हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक नए युग की स्थापना की। इसमें 'सरस्वती' की भी बराबर की भूमिका रही। 'सरस्वती' के प्रवेशांक में पत्रिका के उद्देश्य की चर्चा करते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'इसके प्रकाशन का उद्देश्य पाठकों को विविध विषय का ज्ञान कराना है।' वास्तव में 'सरस्वती' पत्रिका का उद्देश्य बहुत व्यापक था।

इसमें लगभग सभी विधाओं जैसे-कविता, कहानी, एकांकी, समालोचना और पुस्तक परिचय, कला-सभ्यता, इतिहास, लोकगीत आदि सांस्कृतिक विषयों पर लेख तथा अन्य भाषाओं के साहित्य के अनुवाद को लाने का भरसक प्रयास किया है। 'सरस्वती' बहुर्मुखी एवं व्यापक विषयों पर लेख प्रकाशित करती थी। कुमारी चारलोट एम यंग द्वारा रचित पुस्तक 'बुक ऑफ गोल्डेन डीड्स' से प्रभावित गणेश शंकर का 'आत्मोत्सर्ग' शीर्षक लेख 1909 में सरस्वती में ही प्रकाशित हुआ था। (मोती लाल भार्गव, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 15) डॉ. रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि 'द्विवेदी जी सीमित अर्थों में साहित्यकार नहीं हैं। उनका

उद्देश्य हिंदी प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना का प्रसार करना रहा है, उन्होंने उसे साबित भी किया।' डॉ. शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में 'सरस्वती' के संदर्भ में कई महत्त्वपूर्ण संकेत किए हैं। सही अर्थों में देखा जाय तो 'सरस्वती' सांस्कृतिक निर्माण की पत्रिका थी।

'सरस्वती' पत्रिका ने न केवल हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में, अपितु समग्र हिंदी साहित्य के विकास की दृष्टि से कई मानदंड स्थापित किए। इस पत्रिका के माध्यम से हिंदी के मानक रूप गढ़े गए और हिंदी साहित्य को परिष्कृत रूप में समृद्ध किया गया। द्विवेदी जी के संपादकत्व में पत्रिका का न सिर्फ साहित्यिक दृष्टिकोण बदला बल्कि 'सरस्वती' अपनी निजी भाषा और सामग्री के माध्यम से पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में भी सफल रही। 'सरस्वती' ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के लिए जितना कार्य किया, वह बाद की पत्रिकाओं द्वारा न हो सका।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा को न सिर्फ सरल, सुगम एवं सुबोध बनाने का प्रयास किया बल्कि उसके परिमार्जन के साथ-साथ शब्द-चयन, पद-रचना, वाक्य-विन्यास की दृष्टि से भी भाषा को व्याकरण अनुशासित करने का भी पुरजोर प्रयत्न किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी जी के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा है-

"यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित व्याकरण विरुद्ध और ऊटपटांग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।" उन्होंने 'सरस्वती' को भाषा संस्कार, साहित्य संस्कार और हिंदी भाषी जाति के मानस संस्कार का प्रतीक बनाया। हिंदी की अनस्थिरता को स्थिरता प्रदान करने एवं गद्य-पद्य की भाषा में एकरूपता लाने में द्विवेदी जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

इस संदर्भ में उन्होंने अपने एक लेख में लिखा है- 'गद्य और पद्य की भाषा पृथक-पृथक नहीं होनी चाहिए। यह एक हिंदी ही ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए।... इसलिए कवियों को चाहिए कि कम-से-कम वे गद्य की भाषा में भी कविता लिखना आरंभ करें। बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा,

प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में हिंदी भाषा विषयक एक लेख प्रकाशित किया। इस लेख में उन्होंने हिंदी में प्रयुक्त होनेवाले अंगरेजी के शब्दों की उत्पत्ति पर विचार किया था। उन्होंने लिखा था–'जान पड़ता है कि हिंदी ही से अंगरेजी के शब्द की उत्पत्ति हुई है।

यूरोप से पहले-पहल पोर्तगीज भारत आए। उन्होंने भी हिंदी में कुछ शब्द प्रविष्ट करा दिए। उनके द्वारा प्रयुक्त कैमरा हिंदी में कमरा हो गया और आक्सन से नीलाम बना।' (सरस्वती, सितंबर 1901, पृष्ठ 12, डा. कृष्णानन्द द्विवेदी, बिहार की हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 34) 'बिहार बंधु' उनकी शब्दोत्पत्ति विषयक इस स्थापना से सहमत नहीं हुआ। उसने अपने पत्र में प्रकाशित ठाकुर अयोध्या प्रसाद सिंह के लेख का हवाला देते हुए लिखा 'द्विवेदी जी का शब्दोत्पत्ति पर अनुमान और नियंत्रण के संग-संग प्रमाण भी विचित्र ढंग का निकला था।

पर ठाकुर अयोध्या प्रसाद ने सारा पोल खोल दिया। एक समय द्विवेदी साहब ने बाबू साहब से प्रार्थना की थी कि आप ऐसी बातों पर नुक्ताचीनी करना छोड़ दीजिए। मगर बाबू साहब ने इस गुड्डी को और आकाश में उड़ा दिया। आश्चर्य हमें तो वहीं होता है कि ऐसी निपुणता रखकर भी लोग हिंदी में मर्मज्ञ होने का अभिमान करते हैं। छि:।' (बिहार बंधु, 1 मार्च 1903, पृष्ठ 4, बिहार की हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 34) इसी लेख में उसने लिखा 'द्विवेदी जी उर्दू को भी हिंदी का एक स्टाइल मानते हैं और बाबू श्यामसुंदर दास हिंदी और उर्दू को दो भिन्न और पृथक भाषा मानते थे। पर क्या एडीटर के बदलने से पेपर की पालिसी भी बदल गई? धन्य है।' (बिहार की हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 34)

'बिहार बंधु' और 'भारत मित्र' अपने समय के प्रसिद्ध पत्र थे। दोनों अपने पाठकों को नए विचार, नए संदेश एवं नई प्रेरणाओं से संबलित करने में तल्लीन थे। परंतु दोनों में किसी विषय पर सैद्धांतिक मतभेद हो जाना असंभव नहीं था। हिंदी भाषा के मानकीकरण संबंधी नीति को लेकर प्रचलित भाषिक अस्थिरता पर दोनों ही पत्रों का ऐतिहासिक विवाद 1902 से 1908 ई. तक चला जो काफी प्रसिद्ध हुआ। इस वाद-विवाद में खुलकर भाग लेनेवालों में 'सरस्वती', 'भारत मित्र', 'हिंदी बंगवासी', 'समालोचक', 'वैश्योपकारक' और 'बिहार बंधु' के ख्यातिलब्ध पत्रकार थे, जिनके दो दल हो गए थे। एक दल का नेतृत्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कर रहे थे तो दूसरे दल का बालमुकुंद गुप्त। उक्त विवाद लंबे समय तक चला क्योंकि हिंदी के दो महारथियों का वह झगड़ा था, जिससे हिंदी के अनेक विद्वानों के धौरंधरिक संबंध हो गए थे। (डा. कृष्णबिहारी मिश्र,

हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 136) 1902 से 1907 ई. तक 'बिहार बंधु' के प्रायः प्रत्येक अंक इन्हीं विवादों से भरे हैं। उन्हें देखने से ऐसा लगता है कि इन दोनों पत्रों के भाषागत सैद्धांतिक विवादों से पाठक वर्ग भी ऊब चुका था। मई 1907 के अंक में कलकत्ते के किसी पाठक 'श. हि.' का 'भाइयो, अब क्षमा करो' शीर्षक से एक पत्र प्रकाशित हुआ। पत्रप्रेषक ने दुर्भावनारहित होकर लिखा था ''बिहार बंधु और भारतमित्र के संपादक में आपस में जब तक काम-काज की छेड़-छाड़ चलती थी तो उतना हरज नहीं था, पर आपस की जलन बुझाने के लिए अब फिजूल बकवाद हो रहा है।

भारतमित्र तो साग में हल्दी न डालने पर किस तरह वृथा बात बढ़ाए जाता है, वह स्पष्ट है। आपलोग सर्वसाधारण के उपकार के लिए पत्र छापते हैं इसलिए केवल अपनी हवस के लिए पत्र का कीमती कालम खराब करने का अधिकार हमारे जानते किसी संपादक को नहीं है। दोनों ओर के हिमायतियों को भी इस वृथा काम से हाथ खींचने का हम अनुरोध करते हैं।" (बिहार की हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 37) उल्लेखनीय है कि इन दोनों पत्रों के विवादों ने हिंदी के संवर्धन का स्वस्थ प्रयास किया। भाषिक विशिष्टता की स्थापना हेतु उन दोनों ने जिस कटु किंतु रचनात्मक परिवेश को अपनाया, वह निश्चय ही सराहनीय था।

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में द्विवेदी जी और 'सरस्वती' के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए लिखा है–"यदि द्विवेदी जी द्वारा संपादित सरस्वती के पुराने अंक उठाकर किसी भी नई-पुरानी पत्रिका के अंकों से मिलाए जाएँ तो ज्ञात होगा कि पुराने हो चुकने पर भी इन अंकों में सीखने-समझने के लिए अन्य पत्रिकाओं की अपेक्षा कहीं अधिक सामग्री है। 'सरस्वती' सबसे पहले ज्ञान की पत्रिका थी। वह हिंदी नवजागरण का मुख पत्र थी और हिंदी भाषी जनता की सर्वमान्य जातीय पत्रिका भी, ऐसे साहित्य की जो रूढ़िवादी रीतियों का नाश करके नवीन सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप रचा जा रहा था।

'सरस्वती' मासिक पत्रिका के महान संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लेखक ही नहीं बनाये अपितु कई संपादक भी गढ़े। बाबूराव विष्णु पराड़कर और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकार तैयार किए जिन्हें देश की सामाजिक, सास्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का सम्पूर्ण ज्ञान था। (शर्मा, रामविलास, 1977, पृ. 377) 'सरस्वती' को सहायक संपादक की जरूरत थी।

अतएव 2 नवंबर 1911 से आचार्य ने श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को पच्चीस रुपये प्रति माह के वेतन पर सहायक संपादक के पद पर नियुक्त कर लिया। शीघ्र ही युवा एवं उत्साही सहायक संपादक ने आचार्य को अपने कार्य व परिश्रम से मुग्ध कर लिया। 'सरस्वती' पत्रिका में काम करने के कारण गणेश शंकर विख्यात हो गये। 'सरस्वती' पत्रिका साहित्यिक थी और गणेश शंकर विद्यार्थी का रुझान राजनीतिक पत्रकारिता की ओर था। अत: 'अभ्युदय' के संचालकों ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। 29 दिसंबर, 1912 को इलाहाबाद पहुँचकर 'अभ्युदय' में कार्यभार ग्रहण कर लिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और गणेश शंकर विद्यार्थी पत्रकारिता के क्षेत्र में पृथक अवश्य हो गए थे, परन्तु उनके पारस्परिक संबंध पहले ही जैसे बने रहे। विद्यार्थी जी आचार्य को 'सदैव गुरु की भाँति सम्मान देते थे और आचार्य कई मामलों में उन्हें अपना दिशा निर्देशक मानते थे।' (डॉक्टर मोती लाल भार्गव, आधुनिक भारत के निर्माता–गणेश शंकर विद्यार्थी, प्रकाशन विभाग, मई 1992, पृष्ठ 13) 'प्रताप' के प्रकाशन के अवसर पर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गणेश शंकर विद्यार्थी को न केवल आशीर्वाद दिया वरन उन्हें एक सिद्धान्त-सूचक पद (Moto) भी दिया जो निम्नवत था–'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है। वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।' (मोती लाल भार्गव, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 20)

महावीर प्रसाद द्विवेदी सिद्धांतत: व्यक्ति स्वातंत्र्य के समर्थक थे पर व्यवहार के स्तर पर इसके विरोधी थे। इसके प्रमाण में मैथिलीशरण गुप्त को लिखे गए एक पत्र को उद्धृत किया जा सकता है। वे लिखते हैं-"आगे से आप सरस्वती में लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएं छपाने का विचार छोड़ दीजिए। जिस कविता को हम चाहें, उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसी को दिखाइए, ताले में बंद करके रखिए।" इस सन्दर्भ में गणेश शंकर विद्यार्थी का प्रसंग भी ध्यान देने लायक है। विद्यार्थी जी जब सरस्वती को छोड़कर अभ्युदय चले गए थे तो आचार्य ने उन्हें भी हलकी डांट पिलायी थी। उन्होंने लिखा है–'

गणेश ने उनसे (अभ्युदय) सेवा शर्तें तय करने के पश्चात् मुझे सूचना दी। क्योंकि मैं जाने की अनुमति देने के लिए विवश था, इसलिए मैंने आज्ञा दे दी। परन्तु मैंने भी उन्हें ऐसा करने के लिए हल्की सी डांट पिलाई. उनसे मैंने स्पष्ट रूप से पूछा कि मुझ से बिना परामर्श लिए उन्होंने कैसे यह सब मामला तय कर लिया?...मेरी हल्की डांट से गणेश बहुत प्रभावित हुए और अपने किये पर

पश्चाताप करने लगे.' (मोती लाल भार्गव, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 20) द्विवेदी जी का मानना था कि हमें अपने लिखे हुए पर परिशोधन अथवा संशोधन को स्वीकार करना चाहिए। इस संदर्भ में उनका स्पष्ट मत था कि- "अपना लिखा सभी को अच्छा लगता है परंतु उसके अच्छे-बुरे का विचार दूसरे लोग ही कर सकते हैं। जो लेख हमने लौटाए वह समझ-बूझकर ही लौटाए, किसी और कारण से नहीं। अतएव यदि उसमें किसी को बुरा लगा तो हमें खेद है।

यदि हमारी बुद्धि के अनुसार लेख हमारे पास आवें तो उन्हें हम क्यों लौटाएँ। उनको हम आदर से स्वीकार करें, भेजने वाले को भी धन्यवाद दें और उसके साथ ही यदि हो सके तो कुछ पुरस्कार भी दें। यदि किसी को सर्वज्ञता का घमंड नहीं है तो वह अपने लेख में दूसरे के द्वारा किए हुए परिशोधन को देखकर कदापि रुष्ट नहीं होगा। लेखक अपने लेख का प्रूफ स्वयं शोध सकता है और संशोधन के समय हमारे किए गए परिवर्तन यदि उसे ठीक न जान पड़े तो वह हमें सूचना देकर वह उसको अपने मनोनुकूल बना सकता है।" (गगनांचल, नवंबर-दिसंबर, 2013, पृ. 11) प्रचलित है कि एक शाम के पी जायसवाल और दिनकर 'गप्प-शप्प' के मूड में बैठे थे। जायसवाल जी ने शुरुआत की, 'हिंदी में केवल दोय कवि भये।' दिनकर ने पूछा, 'वे कौन हैं भला?' उन्होंने कहा, 'एक तो वही चंद, और दूसरा यही हरिचंद।' दिनकर ने अकचकाकर पूछा, 'और तुलसीदास?' वे बोले, 'अरे, तुलसिया भी कौनो कवि रहा? उसकी तो बंदरवा न सुधार देता रहा जैसे गुप्तवा की महविरवा।' कहावत है कि तुलसीदास की अधूरी कविताओं को हनुमान जी पूर्ण कर देते थे। और इधर तो सर्वविदित ही है कि मैथिलीशरण जी की कविताओं का संशोधन पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी किया करते थे। (रामधारी सिंह दिनकर, संस्मरण और श्रद्धांजलियां, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ आठ)

द्विवेदी जी की यह खासियत थी कि वह साहित्यिक कृतियों के संदर्भ में किसी भी लाग-लपेट के बगैर रचना केन्द्रित उसका मूल्यांकन करते थे। यही कारण है कि सरस्वती पत्रिका में जितनी भी रचनाएँ प्रकाशित हुई वह हमेशा स्तरीय रहीं। 'सरस्वती' पत्रिका के अंक की संपादकीय में पत्रिका के उद्देश्य एवं महत्ता के संबंध में संपादक ने लिखा है- 'सरस्वती में केवल उत्कृष्ट कोटि की रचनाओं को ही महत्त्व दिया जाएगा और उनकी उत्कृष्टता का निर्णय लेखकों की प्रसिद्धि के आधार पर नहीं बल्कि रचना के अपने वैशिष्ट्य के आधार पर किया जाएगा।' (सरस्वती पत्रिका का संपादकीय से) जब 'भारत-भारती'

पहले-पहल प्रकाशित हुई, द्विवेदी जी ने सरस्वती में उस पर एक लेख लिखा था जो प्रशंसात्मक और अत्यंत प्रभावपूर्ण था। लेख के अंत में द्विवेदी जी ने मैथिलीशरण जी के साथ अपनी मैत्री का भी जिक्र किया था और लिखा था, 'लेकिन मैंने इसका कोई खयाल नहीं रखा है। सत्य, इसके साक्षी तुम हो।' जायसवाल जी जब पाटलिपुत्र में इसकी समीक्षा करने लगे, उन्होंने पुस्तक और लेखक तथा प्रकाशक के नाम एवं मूल्यादि लिखकर केवल एक वाक्य लिखा, 'स्वर्ग से फतवा आया है।'

और उसके बाद द्विवेदी जी का पूरा-का-पूरा लेख उद्धृत कर दिया। (दिनकर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10) प्रारंभिक काल में 'सरस्वती' से निराला की रचनाएं भले ही वापस लौट आयी हों, परंतु यह सर्वथा सत्य है कि निराला की वास्तविक परख आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ही की थी। कलकत्ता की विवेकानंद सोसायटी से जब हिन्दी मासिक 'समन्वय' निकालने का निश्चय हुआ, तो सोसायटी के एक विद्वान संन्यासी स्वामी माधवानंद एम. ए. ने, आचार्य द्विवेदी से ही राय मांगी। बिना किसी हिचकिचाहट के आचार्य द्विवेदी ने निराला का नाम बता दिया। (इन्द्रनाथ मदान (संपादक), निराला, लोकभारती, द्वितीय संस्करण–1998, पृष्ठ 20)

'सरस्वती' ने ही हिंदी पत्रकारिता को ऐसा व्यवस्थित आधारभूत ढांचा दिया जिससे वह वैचारिकता को प्राप्त कर सकी। उस दौर में (तत्कालीन) शायद ही कोई ऐसा विषय रहा होगा जिस पर 'सरस्वती' में लेख न प्रकाशित हुए हों। उस दरमियान किसी भी रचनाकार के लिए 'सरस्वती' में प्रकाशित होना एक उपलब्धि थी। अपने समय में 'सरस्वती' ने हर तरह के लेखकों को जोड़ने का काम किया। एक प्रकार से देखें तो 'सरस्वती' ने उस दौर की तत्कालीन समस्याओं को उजागर करने में हिंदी भाषी समाज के लिए एक मंच का काम किया। काबिलेगौर है द्विवेदी जी के संपादन-काल में भाव और भाषा के साथ-साथ विधागत स्तर पर भी काफी प्रगति हुई। सरस्वती पत्रिका की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि इसने हिंदी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा-विषयक सामग्री (साहित्य की समस्त विधाओं) को अनुवाद के जरिए सामने लाने का अनूठा कार्य किया।

'सरस्वती' उस दौर की अकेली ऐसी पत्रिका है जिसने बहुत ही कम समय में न सिर्फ साहित्य जगत में बल्कि हिंदी पत्रिकारिता के इतिहास में अपनी गहरी पैठ बनाई है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी इस संदर्भ में लिखा है कि-

'द्विवेदी जी के सरस्वती-सम्पादन का इतिहास अनेक आंदोलनों का इतिहास है। वह उनके व्यक्तित्त्व और तत्कालीन समाज के विकास का इतिहास भी कहा जा सकता है।' 'सरस्वती' के माध्यम से द्विवेदी जी ने रीतिवाद का जमकर विरोध किया। वे रीतिकालीन शृंगारिकता एवं नायिका-भेद के घोर विरोधी थे। उनका मानना था कि रस, भाव, अलंकार, छंद-शास्त्र और निरा नायिका-भेद का वर्णन करने से मानव-सभ्यता (जाति) का विकास संभव नहीं है। इसीलिए वे हमेशा कविता को रीतिवादी कूप से निकालकर काव्य-विषय के विस्तार के पक्षधर थे। एक प्रकार से देखें तो सरस्वती पत्रिका समकालीन रीतिवादी धारा के विरोध में और ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी के समर्थन में एक संघर्षरत पत्रिका थी।

द्विवेदी जी के संपादन-काल में समाज-सुधार, स्त्री-शिक्षा, एवं बाल-साहित्य जैसे विषयों को भी 'सरस्वती' में विशेष स्थान दिया। नवजागरण की चेतना का प्रसार एवं उसे जनसाधारण तक पहुँचाने में 'सरस्वती' एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी, दोनों ने संबल का काम किया। हिंदी साहित्य की सामयिक अवस्था का चित्रण करने एवं उसका गहरा प्रभाव डालने के लिए 'सरस्वती' में व्यंग्य-चित्रों को भी यथोचित स्थान मिला है। यहाँ तक कि आधुनिक हिंदी कहानी का उदय एवं आधुनिक खड़ी-बोली कविता को प्रचार-प्रसार एवं प्रतिष्ठा भी 'सरस्वती' से ही मिली। खड़ी बोली हिंदी को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना इस पत्रिका की नायाब उपलब्धि है। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, राय देवी प्रसाद, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', हरिऔध, नाथू राम 'शंकर' शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों की रचनाएँ प्रकाशित करके द्विवेदी जी ने यह साबित कर दिया कि खड़ी बोली हिंदी में भी उच्च कोटि की कविताएं लिखी जा सकती है। कविता के साथ-साथ कहानी विधा के विकास में भी इस पत्रिका की महती भूमिका रही है।

बंग महिला की 'दुलाई वाली', चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था', विश्वंभर नाथ शर्मा की 'रक्षाबंधन', प्रेमचंद की 'सौत', जैसी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ द्विवेदी जी के ही सम्पादन में प्रकाशित हुईं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबंध 'कविता क्या है ?', कामता प्रसाद गुरु का 'हिंदी व्याकरण', मैथिलीशरण गुप्त का 'कविता किस ढंग की हो', एवं सरदार पूर्ण सिंह द्वारा लिखे गए लाक्षणिक निबंध इसी अवधि की देन है। गौर करें तो उपन्यास, नाटक,

आत्मकथा, जीवनी, यात्रा-साहित्य एवं डायरी जैसी विधाओं के अतिरिक्त पुस्तक-समीक्षा के विकास में भी 'सरस्वती' की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, कामता प्रसाद गुरू, प्रेमचंद, लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि ऐसे कई लेखक हैं, जो 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा ही हिंदी जगत में परिचित एवं अपनी पहचान बना सके। द्विवेदी जी के संपादन काल में 'सरस्वती' में एक भी ऐसा लेख प्रकाशित नहीं हुआ जिससे समाज पर बुरा प्रभाव पड़े। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा हिंदी साहित्य में सुरुचि का प्रसार किया और साहित्य के क्षेत्र को खूब विस्तृत किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित पत्रिका 'सरस्वती' में 1917 में चंपारन आंदोलन की कोई खबर नहीं छपी थी, जबकि इस पत्रिका को नवजागरण की सबसे महत्त्वपूर्ण पत्रिका माना जाता रहा है।

5

मीडिया और हिंदी

हिन्दी हमारी भाषा के नाते ही नहीं, अपनी उपयोगिता के नाते भी आज बाजार की सबसे प्रिय भाषा है। आप लाख अंग्रेजी के आतंक का विलाप करें। काम तो आपको हिन्दी में ही करना है, ये मरजी आपकी कि आप अपनी स्क्रिप्ट देवनागरी में लिखें या रोमन में। यह हिन्दी की ही ताकत है कि वह सोनिया गाँधी से लेकर कैटरीना कैफ सबसे हिन्दी बुलवा ही लेती है। उड़िया न जानने के आरोप झेलनेवाले नेता नवीन पटनायक भी हिन्दी में बोलकर ही अपनी अंग्रेजी न जानने वाली जनता को संबोधित करते हैं। इतना ही नहीं राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी की सुन लीजिए। वे कहते हैं कि वे प्रधानमंत्री नहीं बन सकते क्योंकि उन्हें ठीक से हिन्दी बोलनी नहीं आती। कुल मिलाकर हिन्दी आज मीडिया, राजनीति, मनोरंजन और विज्ञापन की प्रमुख भाषा है।

हिंदुस्तान जैसे देश को एक भाषा से सहारे संबोधित करना हो तो वह सिर्फ हिन्दी ही है। यह हिन्दी का अहंकार नहीं उसकी सहजता और ताकत है। मीडिया में जिस तरह की हिन्दी का उपयोग हो रहा है उसे लेकर चिंताएँ बहुत जायज हैं, किंतु विस्तार के दौर में ऐसी लापरवाहियाँ हर जगह देखी जाती हैं।

कुछ अखबार प्रयास पूर्वक अपनी श्रेष्ठता दिखाने अथवा युवा पाठकों का ख्याल रखने के नाम पर हिंग्लिश परोस रहे हैं जिसकी कई स्तरों पर आलोचना भी हो रही है। हिंग्लिश का उपयोग चलन में आने से एक नई किस्म की भाषा का विस्तार हो रहा है। किंतु आप देखें तो वह विषयगत ही ज्यादा है।

लाइफ स्टाइल, फिल्म के पन्नों, सिटी कवरेज में भी लाइट खबरों पर ही इस तरह की भाषा का प्रभाव दिखता है। चिंता हिन्दी समाज के स्वभाव पर भी होनी चाहिए कि वह अपनी भाषा के प्रति बहुत सम्मान भाव नहीं रखता, उसके

साथ हो रहे खिलवाड़ पर उसे बहुत आपत्ति नहीं है। हिन्दी को लेकर किसी तरह का भावनात्मक आधार भी नहीं बनता, न वह अपना कोई ऐसा वृत्त बनाती है जिससे उसकी अपील बने। हिन्दी की बोलियाँ इस मामले में ज्यादा समर्थ हैं क्योंकि उन्हें क्षेत्रीय अस्मिता एक आधार प्रदान करती है। हिन्दी की सही मायने में अपनी कोई जमीन नहीं है।

जिस तरह भोजपुरी, अवधी, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, बघेली, गढ़वाली, मैथिली, बृजभाषा जैसी तमाम बोलियों ने बनाई है। हिंदी अपने व्यापक विस्तार के बावजूद किसी तरह का भावनात्मक आधार नहीं बनाती। सो इसके साथ किसी भी तरह की छेड़छाड़ किसी का दिल भी नहीं दुखाती।

मीडिया और मनोरंजन की पूरी दुनिया हिन्दी के इसी विस्तारवाद का फायदा उठा रही है, किंतु जब हिन्दी को देने की बारी आती है तो ये भी उससे दोयम दर्जे का ही व्यवहार करते हैं। यह समझना बहुत मुश्किल है कि विज्ञापन, मनोरंजन या मीडिया की दुनिया में हिन्दी की कमाई खाने वाले अपनी स्क्रिप्ट इंग्लिश में क्यों लिखते हैं।

देवनागरी में किसी स्क्रिप्ट को लिखने से क्या प्रस्तोता के प्रभाव में कमी आ जाएगी, फिल्म फ्लॉप हो जाएगी या मीडिया समूहों द्वारा अपने दैनिक कामों में हिन्दी के उपयोग से उनके दर्शक या पाठक भाग जाएँगें। यह क्यों जरूरी है कि हिन्दी के अखबारों में अंग्रेजी के स्वनामधन्य लेखक, पत्रकार एवं स्तंभकारों के तो लेख अनुवाद कर छापे जाएँ उन्हें मोटा पारिश्रमिक भी दिया जाए किंतु हिन्दी में मूल काम करने वाले पत्रकारों को मौका ही न दिया जाए।

हिन्दी के अखबार क्या वैचारिक रूप से इतने दरिद्र हैं कि उनके अखबारों में गंभीरता तभी आएगी जब कुछ स्वनामधन्य अंग्रेजी पत्रकार उसमें अपना योगदान दें। यह उदारता क्यों। क्या अंग्रेजी के अखबार भी इतनी ही सदाशयता से हिन्दी के पत्रकारों के लेख छापते हैं।

पूरा विज्ञापन बाजार हिन्दी क्षेत्र को ही दृष्टि में रखकर विज्ञापन अभियानों को प्रारंभ करता है, किंतु उसकी पूरी कार्यवाही देवनागरी के बजाए रोमन में होती है। जबकि अंत में फायनल प्रोडक्ट देवनागरी में ही तैयार होना है। गुलामी के ये भूत हमारे मीडिया को लंबे समय से सता रहे हैं। इसके चलते एक चिंता चौतरफा व्याप्त है। यह खतरा एक संकेत है कि क्या कहीं देवनागरी के बजाए रोमन में ही तो हिन्दी न लिखने लगी जाए। कई बड़े अखबार भाषा की इस भ्रष्टता को अपना आर्दश बना रहे हैं। जिसके चलते हिन्दी कोई शरमाई और

सकुचाई हुई सी दिखती है। शीर्षकों में कई बार पूरा का शब्द अंग्रेजी और रोमन में ही लिख दिया जा रहा है। जैसे- मल्लिका का BOLD STAP या इसी तरह कौन बनेगा PM जैसे शीर्षक लगाकर आप क्या करना चाहते हैं।

कई अखबार अपने हिन्दी अखबार में कुछ पन्ने अंग्रेजी के भी चिपका दे रहे हैं। आप ये तो तय कर लें यह अखबार हिन्दी का है या अंग्रेजी का। रजिस्ट्रार आफ न्यूजपेपर्स में जब आप अपने अखबार का पंजीयन कराते हैं तो नाम के साथ घोषणापत्र में यह भी बताते हैं कि यह अखबार किस भाषा में निकलेगा क्या ये अंग्रेजी के पन्ने जोड़ने वाले अखबारों ने द्विभाषी होने का पंजीयन कराया है। आप देखें तो पंजीयन हिन्दी के अखबार का है और उसमें दो या चार पेज अंग्रेजी के लगे हैं। हिन्दी के साथ ही आप ऐसा कर सकते हैं। संभव हो तो आप हिंग्लिश में भी एक अखबार निकालने का प्रयोग कर लें। संभव है वह प्रयोग सफल भी हो जाए किंतु इससे भाषायी अराजकता तो नहीं मचेगी।

हिन्दी में जिस तरह की शब्द सार्मथ्य और ज्ञान-विज्ञान के हर अनुशासन पर अपनी बात कहने की ताकत है उसे समझे बिना इस तरह की मनमानी के मायने क्या हैं। मीडिया की बढ़ी ताकत ने उसे एक जिम्मेदारी भी दी है। सही भाषा के इस्तेमाल से नई पीढ़ी को भाषा के संस्कार मिलेंगें। बाजार में हर भाषा के अखबार मौजूद हैं, मुझे अंग्रेजी पढ़नी है तो मैं अंग्रेजी के अखबार ले लूँगा, वह अखबार नहीं लूँगा जिसमें दस हिन्दी के और चार पन्ने अंग्रेजी के भी लगे हैं।

मीडिया का अर्थ

मीडिया का अर्थ 'मीडिया' अंग्रेजी शब्द 'मीडियम' का बहुवचन है जिसका अर्थ होता है-'माध्यम'। 'मीडिया' शब्द संचार के साधनों रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र आदि के लिए संज्ञा की तरह प्रयोग किया जाता है। ''संचार के दो या दो से अधिक साधनों को सामूहिक रूप से 'मीडिया' कहा जाता है।" बिना माध्यम के कोई भी संदेश ग्रहण करने व भेजने की प्रक्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती है।

माध्यम ही सूचना की शक्ति और उसकी प्रभाव क्षमता को तीव्र बनाता है, जिस प्रकार से इंटरनेट के माध्यम से कुछ ही मिनटों में कोई भी संदेश वायरल हो जाता है। मीडिया को एकवचन या बहुवचन के रूप में भी जाना जाता है, जो बड़े पैमाने पर संचार के मुख्य साधन हैं।

मीडिया का मुख्य उद्देश्य समुदाय को सूचित करना, शिक्षित करना और प्रेरित करना है ताकि नए विचारों और तकनीकों को स्वीकार किया जा सके और उनकी जीवन शैली में सुधार हो सके। मास मीडिया का उपयोग बड़े पैमाने पर संचार के चैनल के रूप में किया जाता है, जिससे कि विस्तृत क्षेत्र में सूचना का प्रसार किया जा सके। मीडिया शब्द को समाज में सामान्य संचार के तरीकों या चैनलों में से एक के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके माध्यम से समाचार, मनोरंजन, शिक्षा, डाटा या प्रचार संदेश फैल रहा है। मीडिया में प्रत्येक विशाल और संकीर्ण माध्यम शामिल हैं–जैसे समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, टीवी, रेडियो, बिलबोर्ड, टेलीफोन, फैक्स और इंटरनेट।

मीडिया शब्द की उत्पत्ति

मीडिया शब्द की उत्पत्ति 16वीं शताब्दी के अंत में लैटिन भाषा से मानी गई है। मीडिया को अधिकतर डिजिटल मीडिया या माध्यम के रूप में भी जाना जाता है। एक फ्लॉपी डिस्क, सीडी, और यूएसबी डेटा भंडार करने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले सभी भौतिक साधन मीडिया के उदाहरण हैं। संचार मीडिया से सम्बन्धित अपने आधुनिक आवेदन में मीडिया शब्द अपने पहले प्रयोग के रूप में देखा जाता है।

''कनाडाई संचार सिद्धांतकार मार्शल मैक्लुहान, जिन्होंने काउंटरब्लैस्ट, 1954, में कहा था–'The media are not toys] they should not be in the hands of Mother Goose and Peter Pan eÛecutives- They can be entrusted only to new artists] because they are art forms.' 1960 के दशक के मध्य तक, यह शब्द उत्तरी अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम में सामान्य प्रयोग में फैल गया था। इसके विपरीत, मास मीडिया शब्द का प्रयोग, एच.एल. मेकेन के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका में 1923 में इस्तेमाल किया गया था।''

इस प्रकार मीडिया का अर्थ वह तकनीक है जिसका उद्देश्य बड़े पैमाने पर दर्शकों तक संदेश पहुँचाना है। यह आम जनता के विशाल बहुमत तक पहुँचने के लिए संचार का प्राथमिक साधन है। वहीं सामूहिक मीडिया के लिए सबसे सामान्य साधन समाचार पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन और इंटरनेट हैं। ''मीडिया का कुछ विषयों पर जनता की राय बनाने में एक बड़ा प्रभाव होता है। कई मामलों में, मीडिया एकमात्र स्रोत है जिस पर आम जनता समाचारों के लिए निर्भर है। जब नील आर्मस्ट्रांग 1969 में चंद्रमा पर उतरा, तो जन मीडिया

ने इस ऐतिहासिक घटना को जनता के लिए देखना संभव बनाया।'' मीडिया का प्रयोग आम जनता से संवाद स्थापित करने के लिए भी किया जाता है। आम जनता आमतौर पर राजनीतिक मुद्दों, सामाजिक मुद्दों, मनोरंजन और संस्कृति के बारे में समाचार व जानकारी प्राप्त करने के लिए मीडिया पर निर्भर करती है। आमतौर पर व्याख्या की जाती है कि 'जन संचार' मीडिया प्रेस, सिनेमा, रेडियो और टेलीविजन हैं क्योंकि उनकी पहुँच देश के व्यापक क्षेत्रों में रहने वाले जनसंख्या के विशाल व विषम जनता तक फैली हुई है। ''जनसंचार साधन जनता को संदेश देने व संवाद कायम करने के लिए काम करते हैं–जैसे तकनीकी–मुद्रण मशीन, कैमरे, फैक्स मशीन, केबल, मॉडेम, कम्प्यूटर और सैटेलाइट संचार।''

मीडिया की अवधारणा को किसी विचार या संदेश प्रेषित करने के माध्यम के तौर पर व्याख्यित किया जा सकता है, लेकिन यह परिभाषा आज के दृष्टिकोण से संकुचित हो गई है। मीडिया का मुख्य उद्देश्य संवाद स्थापित करना है, लेकिन मीडिया लोगों को सूचित, शिक्षित, मनोरंजन प्रदान करने के साथ ही साथ लोगों की आम राय बनाने, उनको सिखाने, मॉनिटर करने आदि में भी विशेषज्ञ हो सकता है। जनता को शिक्षित करने में भी मीडिया महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी कारण आज टीवी चैनलों पर कई शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है। टीवी के साथ ही साथ आम जनता को शिक्षित करने में आज इंटरनेट भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

इंटरनेट पर जानकारी के साथ, कोई भी व्यक्ति कुछ से कुछ सीख सकता है। वहीं बीसवीं सदी की डिजिटल तकनीक ने नवीन डिजिटल मीडिया को जन्म दिया है। इस प्रकार देखा जाए तो पिछली सदी में, दूरसंचार के क्षेत्र में एक क्रांति ने लम्बी दूरी के संचार के लिए नए मीडिया माध्यम प्रदान करके संचार प्रक्रिया को बहुत बदल दिया है।

संक्षेप में, मीडिया वे उपकरण या प्रौद्योगिकियां हैं, जो एक विशाल जनसंख्या में सूचना और मनोरंजन के प्रसार की सुविधा प्रदान करते हैं। वे बड़े पैमाने पर सूचनाओं और सम्बन्धित संदेशों के वितरण के लिए उपकरण हैं। हाल ही की तकनीकों (जिसे कभी–कभी नया मीडिया कहा जाता है) जैसे कि पेजर, आइपॉड, सेलुलर फोन, उपग्रह, कम्प्यूटर, इलैक्ट्रॉनिक्स मेल और इंटरनेट को मास मीडिया के रूप में शामिल किया गया है। वहीं डिजिटल टेलीकम्युनिकेशन कम्प्यूटर व इंटरनेट के माध्यम से संचार ने इस प्रक्रिया को और तीव्र बना दिया है। आधुनिक संचार माध्यम लोगों के बीच लम्बी दूरी के संचार की अनुमति

प्रदान करते हैं। दूसरी ओर, कई लोग पारम्परिक प्रसारण मीडिया माध्यमों और न्यू मीडिया दोनों माध्यमों को पसंद करते हैं। वर्तमान में इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का उपयोग निरंतर बढ़ रहा है, हालांकि इसके दुष्प्रभावों के बारे में भी चिंता पैदा हुई है। प्रौद्योगिकी ने पिछले दशक के दौरान उच्च रिकॉर्ड दर्ज किए हैं। इस प्रकार संचार की गतिशीलता बदल रही है। इलैक्ट्रॉनिक माध्यम समय बीतने के साथ और आधुनिक हो गए हैं। हालांकि, इंटरनेट संचार उपकरण जैसे ई-मेल, स्काइप, फेसबुक आदि के लिए मीडिया सबसे प्रभावी साधनों में से एक है, जो लोगों को करीब और एक साथ लाया है और कई नए ऑनलाइन समुदायों का निर्माण भी किया है।

मीडिया का वर्तमान स्वरूप देखें तो पिछले कुछ वर्षों में यह मूल रूप से बदल गया है। 'इंटरनेट' नामक नवीन मीडिया आज हमारा सबसे ज्यादा ध्यान खींचने में कामयाब हो रहा है। विशेषकर युवा इसके सबसे बड़े ग्राहक के तौर पर उभर रहे हैं। क्योंकि यह उनको एक मंच पर कोई भी सामग्री ढूंढने के साथ ही साथ देखने, सुनने और बोलने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। इसी कारण आज भारतीय इंटरनेट के सबसे बड़े उपभोक्ता के रूप में अमेरिका और चीन के बाद तीसरे नंबर पर पहुँच गए हैं। इसे इंटरनेट का आकर्षण और प्रभाव ही कहा जा सकता है। ''भारतीय युवा इंटरनेट का सबसे अधिक उपयोग ईमेल और इसके बाद चौटिंग के लिए करते हैं। ऑनलाइन शॉपिंग, गेमिंग, डेटिंग, जीवन साथी ढूंढने और यात्रा की प्लानिंग उनकी वरीयता सूची में निचले स्तर पर है।''

मीडिया को सामाजिक परिवर्तन का अग्रदूत भी माना जाता है। मीडिया ने ही समाज की कई पुरातनपंथी सोच, आडम्बरों पर प्रहार करके इसके बारे में सोचने और इसके दुष्परिणामों की ओर सबका ध्यान आकर्षित करने के साथ ही उन्हें उद्धेलित करने का काम भी किया है। मीडिया ने समाज में प्रचलित कई कुप्रथाओं जैसे- सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बहु-विवाह प्रथा, जाति प्रथा व कई प्रकार के धार्मिक अविश्वासों, आडम्बरों के प्रति हमारी धारणाओं व दृष्टिकोण को बदलने का काम भी किया है। समाज के आधुनिकीकरण में मीडिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। खासकर परम्परागत समाजों को आधुनिक बनने की ओर अग्रसर करने में। आज के मीडिया पर्यावरण की एक विशेषता इसकी परिवर्तनशीलता है, जहां नई तकनीक मीडिया के खपत के नए रूपों को सक्षम करती है। मीडिया में परिवर्तन व्यक्ति की मानसिकता के साथ ही साथ संस्कृति और समाज को भी प्रभावित करता है।

दूसरी ओर, कई विद्वानों द्वारा मीडिया के महत्त्व के साथ-साथ उसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों पर भी चर्चा की जा रही हैं। कोई इसे परिवर्तन का कारक मानते हैं तो कोई इसके मानव व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों की नकारात्मक व्याख्या भी करता है। कई लोगों का मानना है कि मीडिया ने हमारे सामाजिक दायरे को संकुचित करके उसे एकाकी बनाने का काम किया है, जिसके मनोवैज्ञानिक तौर पर कई नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। साथ ही इसे पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों में दूरी लाने का एक कारण भी समझा जा रहा है।

मीडिया के क्षेत्र में हिंदी का स्थान

भारत में अनेक समृद्ध भाषाएँ हैं। इन भाषाओं में हिंदी एकता की कड़ी है। हमारे सन्तों, समाज सुधारकों और राष्ट्रनायकों ने अपने विचारों के प्रचार के लिए हिंदी को अपनाया। क्योंकि यही एक भाषा है, जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक और राजस्थान से असम तक समान रूप से समझी जाती है। हिंदी ही एकमात्र भाषा है, जो समस्त भारतीय को एकता के सूत्र में जोड़ने का कार्य सम्पन्न करती है। देश में प्रायः सभी जगह हिंदी व्यापक स्तर पर बोली और समझी जा रही है।

दक्षिण भारत हो या पूर्वोत्तर भारत हर जगह हिंदी का सहज व्यवहार हो रहा है। भाषाओं के लम्बे इतिहास में ऐसी बहुरूपी भाषा का अस्तित्त्व और कहीं नहीं मिलता. हिंदी बोलनेवाले लोगों की संख्या 50 करोड़ है। जनसंख्या की दृष्टि से हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। यदि हिंदी समझने वालों की संख्या भी इसमें जोड़ दी जाये तो यह दूसरे नम्बर पर आ जाएगी। दुनिया में शायद ही किसी भाषा का इतना तीव्र विकास और व्यापक फैलाव हुआ होगा। हिंदी को पल्लवित-पुष्पित करने में मीडिया की महती भूमिका रही है।

हिंदी जैसी सरल और उदार भाषा शायद ही कोई हो. हिंदी सबको अपनाती रही है, सबका यथोचित स्वागत करती रही है। किसी भी भाषा के शब्द को अपने अंदर समाहित करने में गुरेज नहीं किया। अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तुर्की, फ्रांसीसी, पोर्चुगीज आदि विदेशी शब्द हिंदी की शब्दकोश में मिल जायेंगे. जो भी इसके समीप आया सबको गले से लगाया। भौगोलिक विस्तार के अनेक जनपदों और उनके व्यवहृत अठारह बोलियों (पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत खड़ी

बोली, बाँगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, पूर्वी हिंदी में अवधी, बधेली, छत्तीसगढ़ी, बिहारी में मैथिली, मगही, भोजपुरी, राजस्थानी में मेवाती-अहीरवादी, मालवी, जयपुरी-हाड़ौती, मारवाड़ी- मेवाड़ी तथा पहाड़ी में पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी) के वैविध्य को, जिनमें से कई व्याकरणिक दृष्टि से एक-दूसरे की विरोधी विशेषताओं से युक्त कही जा सकती है, हिंदी भाषा बड़े सहज भाव से धारण करती है।

हिंदी के स्वरूप के सम्बन्ध में इसलिए वैचारिक द्वैत की भावना ग्रियर्सन में जगह-जगह दिखती है। 'भाषा सर्वेक्षण' के भूमिका में वे लिखते हैं 'इस प्रकार कहा जा सकता है और सामान्य रूप से लोगों का विश्वास भी यही है कि गंगा के समस्त काँठे में, बंगाल और पंजाब के बीच-उपजी अनेक स्थानीय बोलियों सहित, केवल एकमात्र प्रचलित भाषा हिंदी ही है।' इन सारी बोलियों के समूह और संश्लेष को पहले भी हिंदी, हिंदवी, हिंदई कहा जाता था, और आज भी हिंदी कहा जाता है।

बंटवारे से पहले समूचे पाकिस्तान में पंजाब से लेकर सिंध तक हिंदी की बोली समझी जाती थी। लाहौर हिंदी का गढ़ था। वहाँ हिंदी के कई बड़े प्रकाशन भी थे। बंटवारे के बाद हिंदी की अनदेखी की गई, लेकिन हिंदी फिल्मों और भारतीय टीवी चैनलों के मनोरंजक कार्यक्रमों, धारावाहिकों के कारण वहाँ हिंदी का प्रभाव फिर बढ़ रहा है। नेपाल और बांग्लादेश में भी हिंदी का प्रभाव है। 50 देशों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। 500 से ज्यादा संस्थानों में हिंदी की पढ़ाई होती है। अमेरिका से लेकर चीन तक कई विश्व-विद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, युगांडा, गुयाना, फिजी, नीदरलैंड, सिंगापुर, त्रिनिदाद, टोबैगो और खाड़ी देशों में बड़ी संख्या में हिंदी भाषी हैं। दुबई जैसे शहरों में हिंदी बोलचाल की भाषा बन गयी है।

निर्विवाद तथ्य है कि खड़ी बोली ही आज की हिंदी है। भारत के हिंदी मीडिया की भाषा भी यही है, पत्र-पत्रिकाओं की भी और टेलीविजन और फिल्मों की भी। हिंदी भाषा का निर्माण और आगे बढ़ाने का कार्य मीडिया ने किया है। साहित्य बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की उदात्त भावना लेकर चला है तो पत्रकारिता भी इसी प्रकार के मानव कल्याण के उद्देश्य को लेकर अवतरित हुई है। वस्तुतः साहित्य जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है। पत्रकारिता भी सत्यम, शिवम सुंदरम की ओर जन मानस को उन्मुख करती है। यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो पत्रकारिता उस समाज की प्रतिकृति है। हिंदी साहित्य के

क्रमिक विकास पर दृष्टि डालें तो हम पाएंगे कि पत्र पत्रिकाओं की साहित्य के विकास में अहम भूमिका रही है। वास्तव में भाषा के प्रचार प्रसार में इनका उल्लेखनीय योगदान रहा है।

हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत बंगाल से हुई और इसका श्रेय राजा राममोहन राय को दिया जाता है। राजा राममोहन राय ने ही सबसे पहले प्रेस को सामाजिक उद्देश्य से जोड़ा। भारतीयों के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक हितों का समर्थन किया। समाज में व्याप्त अंधविश्वास और कुरीतियों पर प्रहार किये और अपने पत्रों के जरिए जनता में जागरुकता पैदा की। राममोहन राय ने कई पत्र शुरू किये, जिसमें महत्त्वपूर्ण हैं–

साल 1816 में प्रकाशित 'बंगाल गजट'. बंगाल गजट भारतीय भाषा का पहला समाचार पत्र है। इस समाचार पत्र के संपादक गंगाधर भट्टाचार्य थे। इसके अलावा राजा राममोहन राय ने मिरातुल, संवाद कौमुदी, बंगाल हैराल्ड पत्र भी निकाले और लोगों में चेतना फैलाई। 30 मई 1826 को कलकत्ता से पंडित युगल किशोर शुक्ल के संपादन में निकलने वाले 'उदंत्त मार्तण्ड' को हिंदी का पहला समाचार पत्र माना जाता है। 1873 ई. में भारतेन्दु ने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' की स्थापना की। एक वर्ष बाद यह पत्र 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैसे भारतेन्दु का 'कविवचन सुधा' पत्र 1867 में ही सामने आ गया था और उसने पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

परंतु नई भाषाशैली का प्रवर्तन 1873 में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' से ही हुआ। भारतेन्दु के बाद इस क्षेत्र में जो पत्रकार आए उनमें प्रमुख थे पंडित रुद्रदत्त शर्मा, बालकृष्ण भट्ट, दुर्गाप्रसाद मिश्र, पंडित सदानंद मिश्र, पंडित वंशीधर, बदरीनारायण, देवकीनंदन त्रिपाठी, राधाचरण गोस्वामी, पंडित गौरीदत्त, राज रामपाल सिंह, प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, बाबू रामकृष्ण वर्मा, पं. रामगुलाम अवस्थी, योगेशचंद्र वसु, पं. कुंदनलाल और बाबू देवकीनंदन खत्री एवं बाबू जगन्नाथदास. 1895 ई. में 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ हुआ. इस पत्रिका से गंभीर साहित्य समीक्षा का आरंभ हुआ और इसलिए हम इसे एक निश्चित प्रकाशस्तंभ मान सकते हैं। 1900 ई. में 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के अवतरण के साथ हिंदी पत्रकारिता के इस दूसरे युग पर पटाक्षेप हो जाता है। इन वर्षों में हिंदी पत्रकारिता अनेक दिशाओं में विकसित हुई। प्रारंभिक पत्र शिक्षा–प्रसार और धर्म प्रचार तक सीमित थे। भारतेन्दु ने सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दिशाएँ भी विकसित कीं।

सन् 1880 से लेकर, सदी के अंत तक लखनऊ, प्रयाग, मिर्जापुर, वृंदावन, मुंबई, कोलकाता जैसे दूरदराज क्षेत्रों से पत्र निकलते रहे। सन् 1900 का वर्ष हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। 1900 में प्रकाशित सरस्वती पत्रिका अपने समय की युगान्तरकारी पत्रिका रही है। वह अपनी छपाई, सफाई, कागज और चित्रों के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई. उसी वर्ष छत्तीसगढ़ प्रदेश के बिलासपुर-रायपुर से 'छत्तीसगढ़ मित्र' का प्रकाशन शुरू होता है। 'सरस्वती' के ख्यात संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'छत्तीसगढ़ मित्र' के संपादक पंडित माधवराव सप्रे थे।

पत्रकारिता का यह काल बहुमुखी सांस्कृतिक नवजागरण का यह समुन्नत काल है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक और राजनीतिक लेखन की परंपरा का श्रीगणेश होता है। इस दौर में साहित्यिक लेखन और पत्रकारिता के सरोकारों को अलग नहीं किया जा सकता. सांस्कृतिक जागरण, राजनीतिक चेतना, साहित्यिक सरोकार और दमन का प्रतिकार इन चार पहियों के रथ पर हिंदी पत्रकारिता अग्रसर हुई। माधवराव सप्रे ने लोकमान्य तिलक के मराठी केसरी को 'हिंद केसरी' के रूप में छापना शुरू किया। समाचार सुधावर्षण, अभ्युदय, शंखनाद, हलधर, सत्याग्रह समाचार, युद्धवीर, क्रांतिवीर, स्वदेश, नया हिन्दुस्तान, कल्याण, हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, बुन्देलखण्ड केसरी, मतवाला सरस्वती, विप्लव, अलंकार, चाँद, हंस, प्रताप, सैनिक, क्रांति, बलिदान, वालिंटयर आदि जनवादी पत्रिकाओं ने आहिस्ता-आहिस्ता लोगों में सोये हुए देशभक्ति के जज्बे को जगाया और क्रांति का आह्वान किया।

भारत के स्वाधीनता संघर्ष में पत्र-पत्रिकाओं की अहम भूमिका रही है। राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, बाल गंगाधर तिलक, पंडित मदनमोहन मालवीय, बाबा साहब अम्बेडकर, यशपाल जैसे आला दर्जे के नेता सीधे-सीधे तौर पर पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े हुए थे और नियमित लिख रहे थे। जिसका असर देश के दूर-सुदूर गांवों में रहने वाले देशवासियों पर पड़ रहा था। सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रचार-प्रसार और उन आन्दोलनों की कामयाबी में समाचार पत्रों की अहम भूमिका रही। कई पत्रों ने स्वाधीनता आन्दोलन में प्रवक्ता की भूमिका निभायी। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रेमचंद, निराला, बनारसीदास चतुर्वेदी, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, शिवपूजन सहाय आदि की उपस्थिति 'जागरण', 'हंस', 'माधुरी', 'अभ्युदय', 'मतवाला', 'विशाल भारत' आदि के रूप में दर्ज है।

'उदन्त मार्तण्ड' के सम्पादन से प्रारंभ हिंदी पत्रकारिता की विकास यात्रा कहीं थमी और कहीं ठहरी नहीं है। पंडित युगल किशोर शुक्ल के संपादन में प्रकाशित इस समाचार पत्र ने हालांकि आर्थिक अभावों के कारण जल्द ही दम तोड़ दिया, पर इसने हिंदी अखबारों के प्रकाशन का जो शुभारंभ किया वह कारवां निरंतर आगे बढ़ा है। साथ ही हिंदी का प्रथम पत्र होने के बावजूद यह भाषा, विचार एवं प्रस्तुति के लिहाज से महत्त्वपूर्ण बन गया। अपने क्रमिक विकास में हिंदी पत्रकारिता के उत्कर्ष का समय आजादी के बाद आया। 1947 में देश को आजादी मिली। लोगों में नई उत्सुकता का संचार हुआ। औद्योगिक विकास के साथ-साथ मुद्रण कला भी विकसित हुई।

जिससे पत्रों का संगठन पक्ष सुदृढ़ हुआ। हिंदी पत्रों ने जहाँ एक ओर बहुमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त्र किया वहीं राष्ट्रभाषा को सर्वाधिक उपयोगी बनाने का सफल प्रयास किया। पत्रकारिता की शुरुआत एक मिशन के रूप में हुई थी। स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि यहां के पत्रों एवं पत्रकारों ने ही तैयार की थी। आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता देशभक्ति और समग्र राष्ट्रीय चेतना के साथ जुड़ी रही। इसमें देशभक्ति के अलावा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना भी शामिल है। स्वाधीनता से पहले देश के लिए संघर्ष का समय था। इस संघर्ष में जितना योगदान राजनेताओं का था उससे तनिक भी कम पत्रों एवं पत्रकारों का नहीं था। स्वतंत्रता पूर्व का पत्रकारिता का इतिहास तो स्वतंत्रता आन्दोलन का मुख्य हिस्सा ही है। तब पत्रकारिता घोर संघर्ष के बीच अपना अस्तित्त्व बचाये रखने के लिए प्रयत्नशील थी।

90 के दशक में भारतीय भाषाओं के अखबारों, हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अमर उजाला, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, प्रभात खबर आदि के नगरों-कस्बों से कई संस्करण निकलने शुरू हुए। जहां पहले महानगरों से अखबार छपते थे, भूमंडलीकरण के बाद आयी नयी तकनीक, बेहतर सड़क और यातायात के संसाधनों की सुलभता की वजह से छोटे शहरों, कस्बों से भी नगर संस्करण का छपना आसान हो गया। साथ ही इन दशकों में ग्रामीण इलाकों, कस्बों में फैलते बाजार में नयी वस्तुओं के लिए नये उपभोक्ताओं की तलाश भी शुरू हुई। हिंदी के अखबार इन वस्तुओं के प्रचार-प्रसार का एक जरिया बन कर उभरा है। साथ ही साथ अखबारों के इन संस्करणों में स्थानीय खबरों को प्रमुखता से छापा जाता है। इससे अखबारों के पाठकों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है। पिछले कुछ सालों में हिंदी मीडिया ने अभूतपूर्व सफलता अर्जित

की है। प्रिंट मीडिया को ही लें, आइआरएस रिपोर्ट देखें तो उसमें ऊपर के पांच अखबार हिंदी के हैं। हिंदी अखबारों और पत्रिकाओं का प्रसार लगातार बढ़ रहा है। इलेक्ट्रानिक मीडिया में हिन्दी न्यूज चैनलों की भरमार है। भारत में 182 से ज्यादा हिंदी न्यूज चैनल हैं। नई तकनीक और प्रौद्योगिकी ने अखबारों की ताकत और ऊर्जा का व्यापक विस्तार किया है।

किसी भी देश के विकास का संबंध भाषा से है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आजकल राजभाषा हिंदी अपनी सीमाओं से बाहर आ चुकी है। यह विकास, बाजार और मीडिया की भाषा भी बन रही है। पूरे भारत और भारत के बाहर हिंदी के द्रुत प्रचार-प्रसार और विकास का श्रेय मनोरंजन चैनल, समाचार चैनल, खेल चैनल और कई धार्मिक चैनल को दिया जा सकता है। अगर किसी भी देशी-विदेशी कम्पनी को अपना उत्पाद बाजार में उतारना होता है तो उसकी पहली नजर हिंदी क्षेत्र पर पड़ती है क्योंकि उपभोक्ता शक्ति का वृहत्तम अंश हिंदी क्षेत्र में ही निहित है इसलिए उसका विज्ञापन कर्म हिंदी में ही होता है। दुनिया की एक बड़ी आबादी तक पहुँचने के लिए हिंदी की जरूरत पड़ेगी ही। हिंदी अखबारों, हिंदी पत्रिकाओं, हिंदी चैनलों, हिंदी रेडियो और हिंदी फिल्मों की जरूरत पड़ेगी ही। हिंदी माध्यमों का विकास होगा तो निस्संदेह हिंदी का भी विकास होगा। बाजार और मीडिया का विस्तार होगा तो हिंदी भी फैलेगी और जब तक बाजार और मीडिया है तब तक हिंदी मौजूद रहेगी। बाजार और मीडिया ने हिंदी जाननेवालों को बाकी दुनिया से जुड़ने के नये विकल्प खोल दिये हैं। फिल्म, टी.वी., विज्ञापन और समाचार हर जगह हिंदी का वर्चस्व है।

वर्तमान युग हिंदी मीडिया का युग है। हिंदी भाषा का निर्माण और आगे बढ़ाने का कार्य मीडिया ने किया है। इंटरनेट और मोबाइल ने हिंदी को और विस्तार दिया। हिंदी में संप्रेषण की ताकत है। हिंदी यूनिकोड हुई तो ब्लॉगगिंग में बहार आ गई. चिट्ठा लिखनेवालों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। गूगल का मोबाइल और वेब विज्ञापन नेटवर्क एडसेंस हिंदी को सपोर्ट कर रहा है। इंटरनेट पर 15 से ज्याद हिंदी सर्च इंजन मौजूद हैं। सोशल साइट में हिंदी छाई हुई है। 21 फीसदी भारतीय हिंदी में इंटरनेट का उपयोग करते हैं। हिंदी राजभाषा के बाद अब वैश्विक भाषा बनने की ओर तेजी से बढ़ रही है। डिजिटल दुनिया में हिंदी की मांग अंग्रेजी की तुलना में पाँच गुना तेज है। हिंदी मातृभाषा और राजभाषा से एक नई वैश्विक भाषा के रूप में हिंदी बदल रही है। वह नई प्रौद्योगिकी, वैश्विक विपणन तंत्र और अंतरराष्ट्रीय संबंधों की भाषा बन रही है।

आज मोबाइल की पहुँच ने गाँव-गाँव के कोने-कोने में संवाद और संपर्क को आसान बना दिया है। इस वजह से बाजार आ रहे नित नवीन मोबाइल उपकरण हर सुविधा हिंदी में देने के लिए बाध्य हैं। हिंदी की इस समृद्ध, शक्ति और प्रसार पर किसी भी हिंदी भाषी को गर्व हो सकता है।

मीडिया में हिंदी की सार्थकता

हम सब जानते है कि भारत बहुभाषी देश है। अनगिनत भाषाएं और बोलियां बोली जाती हैं। हम सब जानते हैं कि आज हिंदी भाषा समग्रदेश को एकसूत्र में पिरोने वाली, आसानी से समझ में आने वाली, सीधा मन पर असर करने वाली भाषा होने के साथ-साथ हिंदी भाषा को राजभाषा के रूप में मान्यता भी प्राप्त है। यदि हम आजादी से पहले की बात करें तो हमें ये स्वीकार करना होगा कि देश को आजाद कराने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हमें ये भी स्वीकार करने में परहेज नहीं कि उस समय का मीडिया या पत्रकारिता आज से बिल्कुल अलग थी। उस समय अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होना तो दूर की बात अधिकांश लोग केवल अपनी भाषा बोल सकते थे। उस समय अधिकांश लोग अशिक्षित थे और वे समाचार पत्र के ग्राहक ही इस शर्त पर बनते थे कि उन्हें संपादक लिखे गये समाचार या सामग्री पढ़कर सुनाया करेगा। उस समय चौपाले या चोबारे हुआ करते थे जहां बहुत सारे लोग इकट्ठे हुआ करते थे और एक व्यक्ति समाचार पढ़कर सुनाया करता था। हमें ये नहीं मान लेना है कि सभी अनपढ़ थे, परंतु ग्रामीण परिवेश में प्रायः ऐसा ही था। पढ़े-लिखे लोग भी यहाँ आकर सुनना पसंद करते थे।

एक और महत्वपूर्ण बात जो आज कही जा सकती है, उस समय केवल समाचारपत्र और पत्रिकाएं ही थीं जो देश के लोगों में राष्ट्रभक्ति की भावना जगाती थीं। उस समय हिंदी और अन्य भाषाओं का योगदान भी इसमें बराबर था। आप सब जानते ही हैं कि हिंदी पत्रकारिता का प्रारंभ कलकत्ता से हुआ और भारतीय पत्रकारिता का जन्म बंगाल से माना जाता है। 1755 में कलकत्ता में छपाई शुरू हुई थी। इससे पहले तो संपादक रात-रात भर बैठकर हाथ से पत्र लिखा करते थे और तब बिजली का भी पूरा अभाव था परंतु भाषा, देश और आजादी के दीवाने इन पत्रकारों जिनमें देवीदत्त शुक्ल और द्विवेदी जी का नाम उल्लेखनीय है, कहा जाता है कि दीपक की मंद रोशनी में रात-रात भर लिखते हुये इनकी आंखों की रोशनी ही मंद हो गयी थी।

1780 में ही पहले समाचार पत्र की स्थापना हुई थी। इस प्रथम बंगाल गजट पत्र को निकालने का श्रेय 'ओगरस हिकी' एक अंग्रेज को जाता है। नवम्बर, 1780 में इंडिया गजट के नाम से दूसरा पत्र शुरू हुआ था। इस बीच बहुत-सी भाषाओं में पत्र निकले लेकिन हिंदी का पहला पत्र प्रकाशित हुआ 30 मार्च, 1826 को जिसका नाम था "उदंत मार्तण्ड" और इसके संपादक थे युगलकिशोर शुक्ल जो कानपुर के निवासी थे।

यह पत्र केवल एक वर्ष और सात महीने ही चल पाया और आर्थिक अभावों के कारण यह बंद हो गया। हिंदी पत्रों में दूसरा पत्र था "बंगदूत''। इस पत्र के संपादक थे श्री नीलरतन हालदार। उस समय इसका मासिक मूल्य एक रुपया था। 1845 में बनारस अखबार के नाम से बनारस से सबसे पहला पत्र प्रकाशित हुआ जिसके संपादक थे श्री गोविंद थत्ते। इस बीच बहुत से पत्र अन्य भाषाओं में आये लेकिन हिंदी का प्रथम दैनिक पत्र "समाचार सुधावर्षण" सन 1854 में प्रकाशित हुआ। इसके संपादक थे श्याम सुंदर और ये पत्र 14 वर्ष तक चला और देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1868 में "कवि वचन सुधा" नाम से एक हिंदी पत्र प्रकाशित हुआ जो वस्तुत: कविता की पत्रिका थी जिसमें साहित्त्य, समाज सुधार और राजनीति का समावेश भी रहता था। इसके बाद तो हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की सीमा ही नहीं रही। 1874 में महिलाओं के लिए 'बाल बोधिनी' शुरू हुई, 1872 में कार्तिक प्रसाद खत्री की "दीप्ति प्रकाश' प्रकाशित हुई। 1872 में आगरा से "प्रेम पत्र" नाम से, जिसके संपादक थे रूद्रदत्त शर्मा। 1866 में 'ज्ञानप्रदायिनी' नाम से नवीन चंद्र के द्वारा हिंदी और उर्दू में प्रकाशित हुई, 1885 में "हिंदो स्थान" नाम से एक पत्र राजा रामपाल सिंह ने निकाला जिसके संपादक थे पंडित मदन मोहन मालवीय। 1878 में "भारत मित्र" निकला और सन 1913 में कानपुर से "प्रताप" का प्रकाशन शुरू हो गया था और इसके संपादक थे गणेश शंकर विद्यार्थी। इन समाचारपत्रों ने अपने छपे हुये शब्दों से देश में स्वतंत्रता की ललक की लहर दौड़ा दी थी। हिंदी भाषा का योगदान आजादी दिलाने में हमेशा याद रहेगा।

चलिये थोड़ा आगे बढ़ते हुये हम गांधी युग के हिंदी पत्रों की बात करें, जिन्होंने हमें आज के मीडिया पर चर्चा करने के लिए सहयोग दिया और हिंदी के उन पत्रों की जिन्होंने भारत की जनता के बीच क्रांति सूत्र को जन्म देने, उसे हवा देते रहने का महत्वपूर्ण लक्ष्य अर्जित किया। इनमें सबसे पहला नाम

"मतवाला" का है। इस पत्र के संपादकीय ऐसे हुआ करते थे कि लोगों के दिलों में आजादी की ज्वाला दहकने लगती थी।

31 मई, 1924 के संपादकीय का एक उदाहरण देना चाहती हूं "हमें बिना विलंब सत्याग्रह की शरण लेकर लीडरों को अपना पिछलगुआ बनने के लिए बाध्य करना चाहिए क्योंकि गांधी-विहीन स्वराज्य यदि स्वर्ग से भी सुंदर हो तो नरक के समान त्याज्य है। यदि आप स्वतंत्रता के अभिलाषी हैं और अपने देश में स्वराज्य को लाना चाहते हैं तो तन, मन, धन से महात्मा गांधी के आदेशों का पालन करना आरंभ कर दीजिये।" एक नहीं उस युग के कितने ही पत्रों में हिंदी के माध्यम से कहे गये शब्दों का यही मुख्य स्वर था। यही शब्द आगे चलकर एक क्रांति बन गये। इस पत्र के मुख पृष्ठ के लिए सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जी कविता लिखा करते थे और संपादक के रूप में सेठ श्री महादेव प्रसाद का नाम छपता था। एक और पत्र "सेनापति" था जिसके संपादक पं. राम गोविंद त्रिपाठी थे। इस पत्र ने भी लोगों में वीरता की भावना को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। "हिंदु पंच" एक साप्तहिक पत्र था। उस समय का ये एक तेजस्वी पत्र था। इसके संपादक श्री मुकुंद लाल वर्मा थे। इसमें प्रकाशित एक टिप्पणी देखें "क्या माया की परतंत्रता से हमें लज्जा नहीं आती। हमारी वह समृद्धशालिनी रत्नगर्भा माता जो किसी समय धन-धान्य से परिपूर्ण थी, आज दरिद्र भिखारिणी हो रही है। परतंत्रता और दासता में रहते-रहते क्या अब हम ऐसे निष्प्राण हो गये हैं कि वह दासवृति त्याग देने का हम प्रयास भी नहीं कर सकते। क्या हम पतंगे से भी गये बीते हैं कि हम अग्नि में गिरकर अपने प्राण भी नहीं दे सकते। बिना आत्मबलिदान के कोई भी हमें स्वतंत्रता प्रदान नहीं करेगा। स्वतंत्रता ऐसी है ही नहीं जो आसानी से मिल जाये और आसानी से मिली हुई स्वतंत्रता कभी टिकाउ नहीं हो सकती।" और इसी तरह की लंबी बातों का सिलसिला चला जिसने भारत के लोगों के दिलों में आजादी की भावना को जगा दिया।

"श्रीकृष्ण संदेश" (27 दिसम्बर, 1925) , "समन्वय" (1922), "सरोज", "विशाल भारत'', "मौजी" (27 दिसम्बर, 1925), "भारत मित्र'', स्वतंत्र ऐसे हिंदी पत्र थे जिन्होंने लोगों के दिलो में अपनी अमिट छाप छोड़ी।

पत्रकारिता और मीडिया में हिंदी की भूमिका की बात की जाये और नागरी प्रचारिणी सभा तथा उनकी पत्रिका का उल्लेख न किया जाये तो एक भूल होगी। इस पत्रिका ने हिंदी के विकास में अग्रणी भूमिका निभाई। इसके

साथ ही सरस्वती और प्रेमचंद जी की पत्रिका 'हंस' को भी आज याद करना चाहती हूं। हंस का प्रथम अंक 26 मार्च 1930 को प्रकाशित हुआ। इसके संपादन मंडल में मोहनदास करमचंद गांधी, पुरूषोत्तम दास टण्डन, मैथिलीशरण गुप्त, राम नरेश त्रिपाठी, काका साहेब कालेकर और नर्मदा सिंह थे। 1928 में लखनऊ से "माधुरी" का संपादन हुआ।

आज के महत्वपूर्ण हिंदी समाचार पत्रों का उल्लेख संक्षेप में किया जाना ठीक होगा। समाज को नयी दिशा देने, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे इन समाचार पत्रों, मीडिया की भूमिका के बाद हम आज के इलेक्ट्रोनिक मीडिया के विभिन्न चैनलों की भूमिका पर बात करेंगे। हमें ये मान लेना चाहिए कि यदि मीडिया के ये साधन खामोश रहकर केवल आर्थिकोपाजन ही करें और अपना कार्य ठीक से करना छोड दें तो कहते हैं कि मीडिया में अगर संप्रेषणता का गुण फीका हो जाये तो समाज के लिए ये उपयोगी नहीं रहता, चाहे वह प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रोनिक मीडिया। आज मीडिया और इसकी उपयोगिता से कोई भी वर्ग अछूता नहीं रहा। संप्रेषणता का एक बेहद रोचक उदाहरण मैं यहां आपको सुनाना चाहती हूं। ये कृष्ण के जीवन का उदाहरण है। दृश्य है- द्वारकापुरी में कृष्ण लेटे हुये हैं और रुक्मणी उनके पाँव सहला रही है। उनका हाथ जैसे ही कृष्ण के पॉव पर जाता है, वो एक छाले को देख घबरा जाती हैं और चौंक कर पूछती है "कृष्ण, तुम्हारे पांव पर छाला है। तुम्हें तो कभी नंगे पांव नहीं चलना पड़ा फिर तुम्हारे पांव में छाला कैसे पड़ा? इसमें क्या रहस्य है, मुझे समझाओ।

कृष्ण ने कोशिश की बात को टालने की। रुक्मणी हठ में आ गयी "आप कुछ छिपा रहे हो, बोलो।'

कृष्ण ने कहा "इसका कारण तुम हो, इसलिए मैं टाल रहा हूं और बात को आगे नहीं बढ़ाना चाहता।"

रुक्मणी और क्रोध में आ गयी और बोली, "एक तो चोरी दूसरा सीनाजोरी। एक तो आप मुझे ही कारण बता कर मुझ पर आरोप लगा रहे हो और दूसरा मुझसे ही छिपा रहे हो' '।

कृष्ण ने कहा "आरोप नहीं लगा रहा ये बात सच है, कारण तुम ही हो।"

"अगर मैं कारण हूं तो आपको मुझे समझाना पड़ेगा।"

कृष्ण बोले, "कुछ दिन पहले राधा आयी थी द्वारका में।"

रूकमणि ने कहा, 'हां आयी थी तो।'

कृष्ण 'मैने तुम्हारी ड्यूटी लगायी थी कि तुम उसकी सेवा करो।'

रुक्मणी, "हॉ, लगायी थी और मैने ईमानदारी से सेवा की थी कोई कसर नहीं छोड़ी थी"

कृष्ण, "तुम्हारी बात सही है पर एक सच्चाई और भी है कि तुम्हारे मन में अभी भी राधा के लिए कुछ क्रोध है, ईर्ष्या है।"

वो चुप हो गयी।

कृष्ण ने कहा,- 'तुमने ईष्या के कारण एक दिन राधा को गरम दूध पिला दिया था। तुम्हें मालूम नहीं कि उसके हृदय में मेरे चरण रहते हैं।'

ऐसी संप्रेषणता का उदाहरण केवल इसी देश में हो सकता है। ऐसी संप्रेषणता ही आधार है विश्वास का और प्यार का भी। ऐसे बहुत से उदाहरण देकर समझाया जा सकता है कि मीडिया में संप्रेषणता बिना राग, बिना द्वेष के हो तो क्या बात है। हमारी भाषा और उसके शब्द ही आदान-प्रदान का विश्वसनीय आधार हैं, मूल हैं।

हम एक प्रयोग के द्वारा इस बात को सिद्ध कर सकते है। हम एक ही कमरे के दो कोनों में पानी की दो बोतले रख दें और एक बोतल के सामने प्रति दिन प्रार्थना करें और अच्छी-अच्छी बातें करें और दूसरे कोने में रखी बोतल के सामने विकृत और खराब भाषा का प्रयोग करें तो कुछ दिन बाद हमें प्रार्थना वाले पानी में से सुगंध और विकृत भाषा वाले पानी में से दुर्गंध आने लगेगी। प्रार्थना वाले पानी का रंग गुलाबी केसरिया हो जायेगा और विकृत भाषा वाले पानी का रंग मटमैला लगने लगेगा। हमने पानी को हाथ नहीं लगाया, छुआ तक नहीं। ये हमारी भाषा और शब्दों की शक्ति का बहुत बड़ा उदाहरण है।

मीडिया में भी हमारे शब्दों और भाषा का महत्व इस उदाहरण से समझा जा सकता है। टी वी चैनलों पर हिंदी के कार्यक्रमों, हिंदी फिल्मों, हिंदी विज्ञापन और हिंदी डबिंग के माध्यम से हिंदी की भूमिका की चर्चा किये बिना मुझे उपरोक्त उदाहरणों के माध्यम से कहना है कि सरलता, संवेदनशीलता, भावुकता, शब्द शक्ति और भाषा की संप्रेषणता की भूमिका ने मीडिया को जन-जन तक पहुँचाया है। आज हर कोई जान गया है कि यदि किसी को भारत में कारोबार करना है, अपनी जगह बनानी है तो उसे हिंदी का आश्रय लेना ही होगा।

देश का कौन-सा घर होगा जहां महाभारत, रामायण, कौन बनेगा करोड़पति या फिर कमेडी सर्कस न पहुँचा हो। हिंदी भाषा ने लोगों के दिलो दिमाग में अब गहरी पैठ बना ली है। देश और विदेशों में आज हिंदी की भूमिका का डंका बज रहा है।

सोशल मीडिया एवं हिंदी

आजकल जब लगभग हर चीज को सोशल मीडिया में उसकी उपस्थिति से नापा जा रहा है। हर संस्था, व्यक्ति, सरकार, कंपनी, साहित्यकर्मी से समाजकर्मी तक और नेता से अभिनेता तक को सोशल मीडिया में उसके वजन, प्रभाव और लोकप्रियता की कसौटी पर तौला जा रहा है। यह स्वाभाविक है कि इस नई तकनीकी–सामाजिक शक्ति और भाषा के संबंध को भी हम समझने की कोशिश करें। कुछ बुनियादी बातें शुरू में। यह सोशल मीडिया भी अंततः एक तकनीकी चीज है। हर तकनीकी आविष्कार निरपेक्ष होता है। यानी हर तरह के काम के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा। इसलिए हर तकनीकी आविष्कार की तरह इसके दुरुपयोग पर हमें ज्यादा आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हर वैज्ञानिक या तकनीकी आविष्कार, यदि वह एक व्यापक समाज के लिए रोचक या उपयोगी है, अपनी एक नई जगह बना लेता है। और जब यह नई तकनीक संवाद और संप्रेषण से जुड़ी हो तो स्वाभाविक है कि वह अपनी विशिष्टताओं के साथ संवाद और संप्रेषण के नए–पुराने तरीकों, उपकरणों और तकनीकों को कुछ विस्थापित करके ही अपनी जगह बनाती है।

जब प्रिंट आया तो वाचिक संवाद की सर्वव्याप्तता घटी। जब रेडियो आया तो उसने लिखित और मुद्रित माध्यम को थोड़ा खिसका कर अपनी जगह बनाई। जब टेलीविजन आया तो बहुत से लोगों ने मुद्रित माध्यम के अवसान की घोषणा कर दी। उसका अवसान तो नहीं हुआ, लेकिन उसके विकास, प्रभाव और राजस्व पर सीधा प्रभाव पड़ा और आज भी पड़ता ही जा रहा है। अब सोशल मीडिया नाम के इस नए प्राणी ने संचार माध्यमों की दुनिया को फिर बड़े बुनियादी ढंग से बदल दिया है। यह प्रक्रिया जारी है और कहां जाकर स्थिर होगी, यह कोई नहीं जानता। लेकिन इन नए संप्रेषण मंचों और पुरानों में एक बुनियादी अंतर है। अखबार, पुस्तकों, पत्रिकाओं, रेडियो और टीवी से अलग इस माध्यम की संवाद क्षमता इसे शायद इन सबसे ज्यादा निजी, आकर्षक, अंतरंग और इसलिए शक्तिशाली बनाती है। दूसरे माध्यम एक दिशात्मक थे। यह नया माध्यम अंतःक्रियात्मक है, आपसी संवाद संभव बनाता है। अब जब यह डेस्कटॉप कंप्यूटरों, लैपटॉपों से निकल कर मोबाइल फोन पर आ गया है तो सर्वव्यापी, सर्वसमय, सर्वत्र और सर्वसुलभ हो गया है। इसने राजनीतिक रणनीतियों, विमर्श और चुनावी नतीजों में अपनी जगह बनाई है। कंपनियों और

उनके उत्पादों, सेवाओं के प्रचार-प्रसार, उपभोग, मार्केटिंग और ग्राहकों तक पहुँचने, उन्हें छूने के तौर-तरीकों को बदला है। व्यापार, उद्योग, शासन, मनोरंजन, राजनीति और मीडिया जगत के लोगों के लिए तो ये मंच महत्त्वपूर्ण है ही।

दरअसल भाषा के दो प्रमुख आयाम हैं। एक, उसका शुद्ध भाषिक आयाम जिसमें उसके शब्दों, वाक्य रचना, व्याकरण, शब्दकोश आदि पर ध्यान रहता है। दूसरा, भाषा का सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक संदर्भ जिसमें उसके इन संदर्भों में प्रयोग, परिवर्तनों, अर्थों, प्रभावों आदि पर ध्यान होता है। आज संसार की लगभग हर भाषा पर सोशल मीडिया के प्रभाव को महसूस किया जा रहा है, उसे समझने की कोशिश हो रही है और विमर्श हो रहा है। इस नए माध्यम ने हर नए माध्यम की तरह हर भाषा के प्रयोग के तौर-तरीकों, शब्दकोश, शैली, शुद्धता, व्याकरण और वाक्य रचना को प्रभावित किया है। यह असर लिखित ही नहीं, बोलने वाली भाषा पर भी दिख रहा है। जब ईमेल आया तो कहा गया कि पत्र लिखना ही समाप्त हो जाएगा। वह तो नहीं हुआ, लेकिन हाथ या टाइपराइटर से पत्र लिखने का चलन जरूर खत्म हो गया। पर बात यहीं तक नहीं है। अब एसएमएस, ट्विटर, फेसबुक और वाट्सएप ने बहुत से लोगों के लिए ईमेल को भी अनावश्यक और अप्रासंगिक बना दिया है। सोशल मीडिया ने अपनी एक नई भाषा गढ़ ली है। भाषा और शब्दों के सौंदर्य, मर्यादा, गरिमा और स्वरूप की चिंता करने वाले सभी इस नई भाषा के प्रभाव और भविष्य पर तो चितिंत हैं ही, इस पर भी हैं कि इस खिचड़ी, विकृत, कई बार अटपटी भाषा की खुराक पर पल-बढ़ रही किशोर और युवा पीढ़ी वयस्क होने पर किसी भी एक भाषा में सशक्त और प्रभावी संप्रेषण के योग्य बचेगी या नहीं। यह खतरा इसलिए भी गंभीर होता जा रहा है कि नई पीढियां पाठ्य-पुस्तकों के अलावा कुछ भी गंभीर, स्वस्थ, विचारपूर्ण लेखन, साहित्य, वैचारिक पठन से लगातार दूर जा रही हैं। अच्छी, असरदार भाषा अच्छा पढ़ने से ही आती है। अच्छी भाषा के बिना गहरा, गंभीर विचार, विमर्श, चिंतन और ज्ञान-निर्माण संभव नहीं। वे पीढ़ियां जो विद्यालयों की मजबूरन पढ़ाई के बाहर केवल या अधिकांशत: यह खिचड़ी और भ्रष्ट भाषा ही पढ़ लिख रही हैं उसकी बौद्धिक क्षमताएं ठीक से विकसित होंगी कि नहीं? अगर हमारे भावी नागरिक गंभीर चिंतन और विमर्श में सक्षम ही नहीं होंगे तो उसका उनके विकास के अवसरों और व्यापक सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, बौद्धिक, राजनीतिक विकास पर कैसा असर पड़ेगा, इस पर अभी हमारे बौद्धिक समाज, सरकार और नीति-निर्माताओं का ध्यान बहुत कम गया है।

सोशल मीडिया का असर बस नकारात्मक ही नहीं है। ट्विटर जैसे मंचों की शब्दसीमा ने अपनी बात को चुस्त और कम से कम शब्दों में कहने के अभ्यास को संभव बनाया है। सोशल मीडिया ने सार्वजनिक अभिव्यक्ति और एक बड़े समुदाय तक निडर और बिना रोक-टोक और नियंत्रण के अपनी बात, अपनी सोच और अनुभव पहुँचाना संभव बनाकर करोड़ों लोगों को एक नई ताकत, छोटी-बड़ी बहसों में भागीदारी का नया स्वाद और हिम्मत दी है। इस नई ताकत ने सरकारों और शासकों को ज्यादा पारदर्शी, संवादमुखी और जवाबदेह बनाया है, जनता के मन और नब्ज को जानने का नया माध्यम दिया है। सोशल मीडिया की ताकत ने सरकारों को अपने फैसलों, नीतियों और व्यवहारों को बदलने पर भी मजबूर किया है। पर क्या इस मीडिया ने लोक-विमर्श को ज्यादा गंभीर, गहरा, व्यापक, उदार बनाया है? क्या जब करोड़ों लोग एक साथ इतना लिख- बोल रहे हैं तो इन मंचों पर सार्वजनिक विमर्श की गुणवत्ता बढ़ी है, स्तर बेहतर हुआ है? इस पर दो टूक राय देना संभव नहीं, क्योंकि संसार में कुछ भी एकांगी, एकदिशात्मक नहीं होता।

6

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं हिन्दी पत्रकारिता

भारत में इलेक्ट्रोनिक मीडिया पिछले 15-20 वर्षों में घर-घर में पहुँच गया है फिर चाहे वह शहर हो या ग्रामीण क्षेत्र। इन शहरों और कस्बों में केबिल टीवी से सैकड़ों चैनल दिखाए जाते हैं। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार भारत के कम से कम 80 प्रतिशत परिवारों के पास अपने टेलीविजन सेट हैं और मेट्रो शहरों में रहने वाले दो-तिहाई लोगों ने अपने घरों में केबल कनेक्शन लगा रखे हैं। इसके साथ ही शहर से दूर-दराज के क्षेत्रों में भी लगातार डीटीएच-डायरेक्ट टु होम सर्विस का विस्तार हो रहा है। प्रारम्भ में केवल फिल्मी क्षेत्रों से जुड़े गीत, संगीत और नृत्य से जुड़ी प्रतिभाओं के प्रदर्शन का माध्यम बना एवं लंबे समय तक बना रहा, इससे ऐसा लगने लगा कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया सिर्फ फिल्मी कला क्षेत्रों से जुड़ी प्रतिभाओं के प्रदर्शन के मंच तक ही सिमटकर रह गया है, जिसमें नैसर्गिक और स्वाभाविक प्रतिभा प्रदर्शन के अपेक्षा नकल को ज्यादा तवज्जो दी जाती रही है। कुछ अपवादों को छोड़ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की यह नई भूमिका अत्यन्त प्रशंसनीय और सराहनीय है, जो देश की प्रतिभाओं को प्रसिद्धि पाने और कला एवं हुनर के प्रदर्शन हेतु उचित मंच और अवसर प्रदान करने का कार्य कर रही है। जो कि कभी कभी बहुत नुक्सान पहुचाता है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अवधारणा

इलेक्ट्रानिक मीडिया अपने स्वरूप में प्रिंट मीडिया से एक दम अलग है। भले ही इसका विकास प्रिंट्र मीडिया से ही हुआ है और प्रिंट्र मीडिया के ही

आर्दशों और परम्पराओं की छाया में यह फलफूल रहा है। लेकिन इसका स्वरूप इसे कई मायनों में प्रिंट मीडिया से एकदम अलग बना देता है। बचपन में एब बोध कथा हममें से कइयों ने सुनी होगी जिसमें एक गुरू के चार शिष्य ज्ञान प्राप्त कर वापस जा रहे होते हैं तो उन्हें वन में एक शेर का अस्थिपिंजर मिलता है। एक उसे अपने मंत्र बल से जोड़कर उसका ढॉचा खड़ा कर देता है। दूसरा उसमें मांस और खाल चढ़ा देता है और तीसरा उसमें जान फूंक देता है। इस बोध कथा के शेर की तरह ही प्रिंट मीडिया जहां खबरों का ढांचा खड़ा करता रहा है, उन्हें सजाता-संवारता रहा है, वहीं इलेक्ट्रानिक मीडिया ने खबरों में जान फूंक दी है। अखबार में एक रोमांचक फुटबाल मैच का चौथाई पृष्ठ का विवरण छपता है, उसके चित्र छपते हैं, उसकी हाइलाइटस् छपती हैं पाठक उसे पढ़ कर सारी जानकारी हासिल कर लेता है।

लेकिन वही बात जब रेडियो की खबर में उस रोमांचक मैच के कुछ लम्हों की कैमेंटरी के जरिए सुनाई जाती है या टीवी न्यूज में मैच के सबसे सनसनीखेज गोल के 10 सैकेंड के वीडियो फुटेज के जरिए दिखाई जाती है तो मैच का असली रोमांच सजीव होकर श्रोता या दर्शक के पास तक पहुँच जाता है। इलेक्ट्रानिक मीडिया की यह स्वरूपगत खूबी उसे अलग पहचान देती है। हालांकि अब अखबारों के भी इंटरनेट संस्करण आने लगे हैं और वे खबरों को अधिक तेजी से पाठक तक पहुंचाने लगे हैं, लेकिन इलेक्ट्रानिक मीडिया के पास यह ताकत अपने जन्म से ही है। विश्व के किसी एक भाग में हो रहे किसी आयोजन, घटना या किसी संवाददाता सम्मेलन के सजीव प्रसारण को उसी वक्त साथ-साथ सारे विश्व में उसे दिखाया या सुनाया जा सकता है।

वस्तुतः इलेक्ट्रानिक मीडिया की अवधारणा ही खबरों के तेज, सजीव, वास्तविक और व्यापक प्रसारण से जुड़ी है। खबरों को सबसे तेज अथवा सजीव दिखा-सुनाकर, जैसा हो रहा है वैसा ही दिखा/सुनाकर इलेक्ट्रानिक मीडिया चमत्कारपूर्ण प्रभाव पैदा कर देता है। हमारे देश में एक दौर में बीबीसी की खबरें घर-घर सुनी जाती थीं। अफ्रीका के गृह युद्धों, अमेरिका के चाँद पर जा पहुँचने और जवाहर लाल नेहरू की मौत जैसी खबरें बीबीसी रेडियो ने क्षण भर में पूरी दुनिया में पहुँचा दी थीं। भारत में टेलीविजन में भी निजी क्षेत्र के आगमन के बाद की कई घटनाएं जैसे गुजरात का भूकंप, कारगिल का युद्ध, लोकसभा चुनाव और सुनामी आदि ऐसे मौके थे जब इलेक्ट्रानिक मीडिया के बादशाह टेलीविजन

ने दर्शकों को घर बैठे-बैठे इन जगहों तक पहुँचा दिया था। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस तरह की घटनाओं के कवरेज ने देश में टेलीविजन न्यूज को एक व्यापक पहचान भी दी और विश्वसनीयता भी। घटनास्थल को सीधे टीवी स्क्रीन तक पहुँचा पाने की इसी ताकत में टेलीविजन की लोकप्रियता का राज छिपा हुआ है।

अमेरिका में वर्ल्ड ट्रेड टावर पर हुए हवाई हमलों को दुनिया ने टेलीविजन के जरिए देखा और जिसने भी उन दृश्यों को देखा है, उन सबके मन में वो पूरी घटना इस तरह अंकित हो गई है कि मानो उन्होंने खुद अपनी आखों से उसे देखा हो। घटना को वास्तविक या सजीव रूप में दिखा पाने की क्षमता इलेक्ट्रानिक मीडिया की एक बड़ी ताकत है तो इसकी पहुँच, इसकी दूसरी बड़ी ताकत। एक मुद्रित अखबार या पत्रिका का सीमित प्रसार क्षेत्र होता है, लेकिन इलेक्ट्रानिक मीडिया के लिए विस्तार और प्रसार की कोई सीमाएं नहीं हैं।

अमेरिका की 26/11 की घटनाएं पूरी दुनिया ने लगभग एक साथ देखीं। बीजिंग ओलाम्पिक का उद्घाटन हो या दक्षिण अफ्रीका में विश्वकप फुटबाल के खेल। पूरा विश्व अपनी आंखों से इनका सजीव प्रसारण होते हुए देख पाता है। घटना को सजीव होते देखना अपने आप में एक रोमांचक अनुभव है। दर्शक उस घटना के एक पात्र की तरह उससे जुड़ जाता है। ऐसा कर पाना किसी दूसरे संचार माध्यम के लिए सम्भव नहीं है। इलेक्ट्रानिक मीडिया को प्रभावशाली बनाने वाली एक और बड़ी ताकत इसकी भाषा है। अखबार पढ़ने के लिए आदमी का साक्षर होना जरूरी है।

दूसरी भाषा का अखबार पढ़ने के लिए उस भाषा का ज्ञान होना जरूरी है, लेकिन सजीव चित्रों की भाषा इनमें से किसी की भी मोहताज नहीं। 26/11 की घटना में ट्विन टावर्स से अज्ञात विमानों का टकराना, टावर्स में आग लग जाना और उसके बाद का विध्वंस, सजीव चित्रों ने इसकी जो कहानी दिखाई उसके लिए किसी भाषा या शब्दों की जरूरत नहीं थी। सम्प्रेषण की यह खूबी भी इलेक्ट्रानिक मीडिया की एक बड़ी ताकत है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दृश्य-श्रव्य स्वरूप वाला इलेक्ट्रानिक मीडिया अपने प्रसार के विस्तार, घटना स्थल से सीधे घटना को दिखा सकने की ताकत और शब्दों तथा भाषा से उपर उठकर किए जाने वाले वाले सम्प्रेषण के कारण आज सबसे सशक्त जन संचार माध्यम बन चुका है।

विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक माध्यम एवं हिन्दी पत्रकारिता

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के मुख्य माध्यम निम्नलिखित हैं-

1. रेडियो

आधुनिक संचार क्रांति ने समाचार जगत में उथल-पुथल कर दी है। इस क्रांति ने पहले चरण में रेडियो तथा दूसरे चरण में टेलीविजन के आविष्कार ने जनसंचार के पारंपरिक मुद्रित माध्यमों को पीछे छोड़ते हुए समाचार प्रेषण की नई पद्धति को विकसित किया। यही नहीं पूरे विश्व के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जगत में इस नई तकनीक ने चमत्कार कर दिया है। रेडियो, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का महत्त्वपूर्ण श्रव्य माध्यम है।

2. टेलीविजन

टेलीविजन जनसंचार का बहुत ही प्रभावशाली और युवा माध्यम है। ध्वनि के साथ-साथ चित्रों को प्रस्तुत करके इस माध्यम द्वारा मानव व्यक्तित्त्व को भी प्रस्तुत किया जाता है और इस प्रकार इसका जनता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह दृश्य-श्रव्य माध्यम है और इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती। इसलिए इसे सार्वभौमिक माध्यम भी कहा जाता है।

3. कम्प्यूटर

सम्प्रति सर्वत्र कम्प्यूटर का वर्चस्व है। उद्योग, शिक्षा, यातायात-नियंत्रण, चिकित्सा-सुविधा, चुनाव सम्बन्धी भविष्यवाणियों, मौसम-सम्बन्धी सूचनाएं और कानून-व्यवस्था को अधिक कारगर बनाने में कम्प्यूटर सर्वाधिक सक्षम है। संचार व्यवस्था को अधिकाधिक सफल बनाने में इलेक्ट्रॉनिक्स की प्रगति से सम्बद्ध कम्प्यूटर का विशेष हाथ है।

कम्प्यूटर के कारण समाचार-प्रेषण में क्रान्ति मची हुई है। एक समय था जब कि कबूतर, डाकिए, टेलीग्राफ द्वारा संवाद भेजे जाते थे जो मंथर गति से गंतव्य तक कभी पहुँचे तो कभी बीच में ही खो जाते थे अब तो कम्प्यूटर के कारण वे तत्काल समाचार कार्यालय में पहुँच जाते हैं। टेलीप्रिंटर और वीडियो मानीटर स्क्रीन से संवाद प्रेषण में क्षिप्रता आई है। समाचारों के ढेर से समाचार छांटना और उसे संबंधित विभागाध्यक्ष के पास भेजना कंप्यूटर द्वारा सरलता से हो रहा है।

4. मल्टीमीडिया

मल्टीमीडिया की संकल्पना, कई माध्यमों (टेक्स्ट, फोटोग्राफी, आडियो एवं वीडियो टेप आदि) की पारम्परिक विचारधारा से आयी है। नये कम्प्यूटर के प्रयोग से डिजिटलाइज्ड सूचना जिसमें टेक्स्ट, ग्राफिक्स, साउंड एनीमेशन एवं वीडियो आदि की एकीकरण करने की अवधारणा ने इसे पुनर्परिभाषित किया।

5. इन्टरनेट

इन्टरनेट दुनिया को जोड़ने की एक अत्याधुनिक विकसित एवं सफल संचार प्रणाली है। विश्व में इस समय जितने कम्प्यूटर नेटवर्क सक्रिय हैं, उनमें इंटरनेट सबसे बड़ा है, जो विश्व स्तर पर कम्प्यूटरों का नेटवर्क बनाता है। एक अनुमान के अनुसार इस नेटवर्क से विश्व भर में लगभग करोड़ों कम्प्यूटर जुड़े हुए हैं। इस प्रकार 164 देशों के लगभग करोड़ों लोगों का सूचना के इस महामंत्र से जुड़ पाना संभव हो पाया है।

कम्प्यूटर नेटवर्किंग साफ्टवेयर एवं डाटा बेस इन्टरनेट का आधार है। इन्टरनेट में ध्वनि, तस्वीर, डाटा, सॉफ्टवेयर, आवाज आदि को डालने के लिए मल्टीमीडिया के विकास के साथ ही इंटरनेट के प्रति लोगों में तेजी से आकर्षक बढ़ा है। इसके माध्यम से कम्प्यूटर, टेलीफोन और इलेक्ट्रॉनिक्स प्रणालियों का संयोजन तथा ऑप्टिकल फाइबर प्रणाली के विकास से शब्दों, ध्वनियों और चित्रों को डिजिटल रूप से प्राप्त करना और भेजना संभव हो गया है। इंटरनेट के माध्यम से हमें निम्नलिखित जनसंचार माध्यमों का सहयोग प्राप्त होता है–

इलेक्ट्रानिक मेल – (ई. मेल) पत्र या संदेश भेजने का यह अति आधुनिक तथा अत्यंत तीव्र तरीका है। डाक प्रणाली की भांति अब पत्रों को इलेक्ट्रॉनिक मेल द्वारा कम्प्यूटर की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा जा सकता है।

ई-बुक – इंटरनेट के विस्तार के साथ ही इस बात की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। संसार भर में प्रकाशित पुस्तकों को किसी तरह नेट पर भी सुलभ बनाया जाए। इसके लिए उनके डिजिटल स्वरूप की जरूरत थी। यह काम हुआ और प्रकाशकों के सहयोग से अब असंख्य पुस्तकें इंटरनेट पर पी.डी. एफ. फॉर्मेट में उपलब्ध हैं। उन्हें ऑनलाइन क्रय करके अपने कंप्यूटर या किसी डिजिटल स्टोरेज डिवाइस में सुरक्षित रखा और पढ़ा जा सकता है। इस तरह किताबों को रखने में कोई जगह नहीं घिरती और वे आपसे बस एक क्लिक की दूरी पर होती हैं।

ई-मैगजीन - इंटरनेट पर अब कई पत्रिकाएँ ऐसी मौजूद हैं, जिनका कोई प्रिंट एडिशन नहीं निकलता। वे इंटरनेट पर ही छपती और पढ़ी जाती हैं तथा हमेशा के लिए सुरक्षित रखी जा सकती हैं- इन्हें ही प्रचलित भाषा में ई-मैगजीन कहा जाता है। हिंदी में भी ऐसी पत्रिकाओं की शुरूआत हो चुकी है।

ब्लॉग - ब्लॉग वेब-लॉग का संक्षिप्त रूप है, जो अमेरिका में 1997 के दौरान इंटरनेट में प्रचलन में आया। प्रारंभ में कुछ ऑनलाइन जर्नल्स के लॉग प्रकाशित किए गए थे, जिसमें जालंधर के भिन्न क्षेत्रों में प्रकाशित समाचार, जानकारी इत्यादि लिंक होते थे, तथा लॉग लिखने वालों की संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी उनमें होती थीं। इन्हें ही ब्लॉग कहा जाने लगा। ब्लॉग लिखने वाले, जाहिर है, ब्लॉगर कहलाने लगे।

इन तमाम नई तकनीकों के कारण जनसंचार माध्यमों ने हमारे लिए सारे संसार को समझना आसान कर दिया है। ई-मेल, बेव, पोर्टल, ई-चैटिंग, ब्लॉग, सर्च इंजन आदि कितने-कितने संसाधन आज हमें आसानी से उपलब्ध हैं। विकिपीडिया, ए.पी.एस.कारपोरेट, हिन्दी नेस्ट कॉम, अनुभूति, कार्यालय, अभिव्यक्ति, वागर्थ, सरस्वती, भारत दर्शन, आदि दर्जनों हिन्दी वेबसाइट इस समय कार्यरत हैं और तमाम अखबार भी अब इंटरनेट संस्करणों के रूप में इंटरनेट में उपलब्ध हो गए हैं।

डिजिटल युग में हिन्दी पत्रकारिता

तकनीकी विकास को साथ-साथ जनसंचार माध्यमों यथा हिन्दी पत्रकारिता के रुख में तेजी से परिवर्तन देखने को मिला है। तकनीकी के विस्तार से हिन्दी पत्रकारिता के विस्तार में मदद मिली है। हिन्दी समाचार चैनल, समाचार पत्रों के साथ-साथ हिन्दी में समाचार वेबसाइट के कारण हिन्दी पत्रकारिता का दायरा बढ़ा है। हिन्दी पत्रकारिता को व्यवसायिक कलेवर में ढाला जा चुका है। वहीं तमाम समानान्तर माध्यम भी कार्य कर रहे हैं, जो व्यवसायिकता से अभी परे हैं। यह समय के साथ लगातार विकसीत हो रहा है। तकनीकी के कारण सूचनाओं पर लगने वाली बंदिशे कम हुई हैं और लोगों तक अबाध सूचना का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इन सबके चलते हिन्दी पत्रकारिता ने नये दौर में प्रवेश किया है।

21वीं शताब्दी सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। आधुनिक संचार तकनीकी का मूल आधार इन्टरनेट है। कलमविहीन पत्रकारिता के इस युग में इन्टरनेट पत्रकारिता ने एक नए युग का सूत्रपात किया है। वेब पत्रकारिता को हम इन्टरनेट

पत्रकारिता, ऑनलाइन पत्रकारिता, साइबर पत्रकारिता के नाम के जानते हैं। यह कम्प्यूटर और इंटरनेट द्वारा संचालित एक ऐसी पत्रकारिता है, जिसकी पहुँच किसी एक पाठक, एक गाँव, एक प्रखण्ड, एक प्रदेश, एक देश तक नहीं अपितु समूचे विश्व तक है।

प्रिंट मीडिया से यह रूप में भी भिन्न है इसके पाठकों की संख्या को परिसीमित नहीं किया जा सकता है। इसकी उपलब्धता भी सर्वाधिक है। इसके लिए मात्र इन्टरनेट और कम्प्यूटर, लैपटॉप या मोबाइल की जरूरत होती है। इंटरनेट वेब मीडिया की सर्वव्यापकता को भी चरितार्थ करती है जिसमें खबरें दिन के चौबीसों घण्टे और हफ्ते के सातों दिन उपलब्ध रहती हैं वेब पत्रकारिता की सबसे बड़ी खासियत है उसका वेब यानी तरंगों पर आधारित होना। इसमें उपलब्ध किसी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिका को सुरक्षित रखने के लिए किसी आलमीरा या लाइब्रेरी की जरूरत नहीं होती।

समाचार पत्रों और टेलीविजन की तुलना में इंटरनेट पत्रकारिता की उम्र बहुत कम है, लेकिन उसका विस्तार बहुत तेजी से हुआ है। उल्लेखनीय है कि भारत में इंटरनेट की सुविधा 1990 के मध्य में मिलने लगी। इस विधा में कुछ समय पहले तक अंग्रेजी का एकाधिकार था लेकिन विगत दशकों में हिन्दी ने भी अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज की है। इंदौर से प्रकाशित समाचार पत्र 'नई दुनिया' ने हिन्दी का पहला वेब पोर्टल 'वेब दुनिया' के नाम से शुरू किया। अब तो लगभग सभी समाचार पत्रों का इंटरनेट संस्करण उपलब्ध है। चेन्नई का 'द हिन्दू' पहला ऐसा भारतीय अखबार है जिसने अपना इंटरनेट संस्करण वर्ष 1995 ई. में शुरू किया। इसके तीन साल के भीतर यानी वर्ष 1998 ई. तक लगभग 48 समाचार पत्र ऑन-लाइन हो चुके थे। ये समाचार पत्र केवल अंग्रेजी में ही नहीं अपितु हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं जैसे मलयालम, तमिल, मराठी, गुजराती आदि में थे। आकाशवाणी ने 02 मई 1996 'ऑन-लाइन सूचना सेवा' का अपना प्रायोगिक संस्करण इंटरनेट पर उतारा था। एक रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2006 ई. के अन्त तक देश के लगभग सभी प्रतिष्ठित समाचार पत्रों एवं टेलीविजन चैनलों के पास अपना इंटरनेट संस्करण भी है जिसके माध्यम से वे पाठकों को ऑन-लाइन समाचार उपलब्ध करा रहे हैं।

ऑन-लाइन पत्रकारिता, हिन्दी ब्लॉग, हिन्दी ई-पत्र-पत्रिकाएँ, हिन्दी ई-पोर्टल, हिन्दी वेबसाइट्स, हिन्दी विकिपीडिया आदि के रूप में नव-जनमाध्यम आधारित हिन्दी पत्रकारिता के विविध स्वरूपों को समझा जा सकता है।

हिंदी के विकास में वेब मीडिया का योगदान

आज के प्रौद्योगिकी के दौर में मीडिया एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में उभरा है और उसमें भी न्यू मीडिया यानि वेब मीडिया के प्रति लोगों का आकर्षण प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है भूमंडलीकरण के दौर में मीडिया का दायरा काफी विस्तृत हो चुका है, ऐसे में विभिन्न भाषाओं का विकास भी वेब मीडिया के तहत ही हो रहा है . आज की स्थिति में वेब और भाषा एक-दूसरे के अहम सहयोगी माने जा सकते हैं।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ व्यापक क्षेत्र में हिंदी बोली जाती है वहां इसके विकास में वेब मीडिया के योगदान को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। ये सच है कि वेब के असर से हिंदी के स्वरूप में इसके मूल स्वरूप से भिन्नता है, लेकिन यही भिन्नता ही इस विकास की गाड़ी के पहियें हैं। एक विस्तृत दायरे के साथ हिंदी अपने आप में व्यापक है। वेब मीडिया के प्रयोगों के बावजूद हिंदी के अस्तित्त्व पर कोई संकट नहीं है। दूसरी भाषाओं के कुछ शब्दों के प्रयोग से ही हिंदी वेब के लायक बनी अन्यथा अपने मूल स्वरूप में हिंदी एक दायरे तक सीमित होकर रह जाती।

यूँ तो 80 के दशक में ही हिंदी को कंप्यूटर की भाषा बनाने का प्रयास शुरू हो चुका था परन्तु वेब के साथ हिंदी का प्रयोग 20वीं सदी के समाप्ति के बाद शुरू हुआ। सन 2000 में यूनिकोड के पदार्पण के बाद 2003 में सर्वप्रथम हिंदी में इन्टरनेट सर्च और ई मेल की सुविधा की शुरुआत हुई। हिंदी के विकास में यह एक मील का पत्थर साबित हुआ। 21वीं सदी के पहले दशक में ही गूगल न्यूज, गूगल ट्रांसलेट तथा ऑनलाइन फोनेटिक टाइपिंग जैसे औजारों ने वेब की दुनिया में हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण सहायता की।

उपरोक्त सभी ऑनलाइन औजार यूँ तो प्रत्यक्ष से कोई बड़ी भूमिका में न रहें हों परन्तु हिंदी के समग्र विकास में इनकी सहायता से इंकार नहीं किया जा सकता है। भारत जैसे देश में जहाँ महज 10 प्रतिशत से भी कम लोग अंग्रेजी का ज्ञान रखते हैं, वहां हिंदी के इस स्वरूप की आवश्यकता बढ़ जाती है। हिंदी के इसी महत्त्व पर मशहूर विचारक सच्चिदानन्द सिन्हा ने लिखा है-"भाषा जो प्रतीकों का समुच्चय होती है, संस्कृतियों के संकलन और सम्प्रेषण का सबसे सरल माध्यम भी होती है। और सम्प्रेषण आम बोलचाल की भाषाओं से भी होता है-बल्कि अधिक सशक्त रूप से।"

यहाँ सम्प्रेषण के एक और सशक्त माध्यम "वेब मीडिया" का भी उल्लेख किया जा सकता है। या फिर हम कह सकते हैं कि वेब मीडिया एक ऐसा गुरुकुल है जहाँ प्रत्येक भाषा एक संकाय की भांति प्रतीत होती है।

इलेक्ट्रॉनिक संचार-माध्यम और कंप्यूटर आदि के उपयोग में हिंदी अपनी जगह बना ली है। इससे एक तरफ इन माध्यमों से हिंदी का प्रसार हो रहा है, तो दूसरी तरफ हिंदी का अपना बाजार भी बन रहा है। इससे हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका मजबूत हो रही है। कुछ इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति ने कहा था- "यदि भारत को समझना है तो हिंदी सीखो।"

देबाशीष चक्रवर्ती के 'एग्रीगेटर' से शुरू हुआ हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। अलोक कुमार के 'नौ दो ग्यारह' नाम के हिंदी के पहले ब्लॉग से श्रीगणेश के बाद आज हजारों की संख्या में हिंदी ब्लॉग वेब में मौजूद हैं। अपनी अभिव्यक्ति को अपनी भाषा में प्रदर्शित करने का सुख वेब मीडिया में ब्लॉगिंग के माध्यम से प्राप्त होता है। आज जबकि वर्डप्रेस, इन्दिक्जूमला जैसे ढेरों ऐसे मंच उपलब्ध हैं जहाँ हम अपनी बात बेहद स्पष्ट व विस्तृत रूप से रख सकते हैं। यहाँ स्पष्टता से मतलब भाषीय स्वत्रंतता से है।

हिंदी भाषा में कही बात यदि अंग्रेजी अनुवाद में कही जाय तो यह निश्चित है कि इसकी स्पष्टता में कम से कम दस फीसदी की कमी जरूर आयेगी। हिंदी के विकास में ब्लॉगिंग ने निश्चित रूप से एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, इसका प्रमाण यह है कि हिंदी के कई ऐसे ब्लॉग हैं, जो रोजाना 1000 से भी ज्यादा व्यक्तियों द्वारा देखे जाते हैं और यह कोई सामान्य बात नहीं है। शैली तथा वैचारिक रूप से अलग-अलग ये ब्लॉग अपनी भाषायी खुशबू को प्रतिदिन हजारों जनमानस तक पहुँचाते हैं। किसी भाषा के विकास व उत्थान के लिए इससे बेहतर क्या हो सकता है।

हिंदी के इसी स्तिथि को हम मजरूह सुल्तानपुरी के इस शेर से भी जोड़ सकते हैं-

"मनचले बुनेंगे अन रंगो-बू के पैराहन
अब संवर के निकलेगा हुस्न कारखाने से"

वेब मीडिया के आने से पूर्व सभी कृतिकारों को अपनी बात आम जनमानस तक पहुँचाने में अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ता था। ढेरों प्रयास के बावजूद भी वे अपनी कृति को एक सीमित दायरे तक ही पंहुचा पाते थे.

वेब मीडिया ने इन सभी सीमाओं को तोड़ा है। आज सभी लेखक गुमनामी की कालिमा को इस माध्यम के प्रकाश की सहायता से खत्म कर सकते हैं।

इन्टरनेट पर हिंदी में खोज आने के बाद हमारी मूल जिज्ञासा का जवाब हिंदी में ही पलक झपकते ही हमारे सामने होता है, और ये सब इसलिए सम्भव हुआ है क्योंकि इंटरनेट के सागर में नित प्रतिदिन हिंदी ज्ञान स्वरूपी नदियाँ समाहित हो रही हैं। और इसी प्रक्रिया का परिणाम हुआ कि आज भारत से बाहर सात समन्दर पार भी हिंदी सभाएं एवं गोष्ठियां, सम्मेलन, पुरस्कार समारोह आदि आयोजित किये जा रहे हैं।

भारत की भाषायी स्थिति और उसमे हिंदी के स्थान को देखने के बाद यह स्पष्ट है कि हिंदी आज भारतीय जनमानस के सम्पर्क की राष्ट्रीय भाषा है। संख्या की दृष्टि से दुनिया की इस तीसरी सबसे बड़ी भाषा के जानने वालों की यह विशाल जनसंख्या हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क का साक्षात्कार कराती है क्योंकि आज दुनिया के हर कोने में बसे भारतीय वेब मीडिया की सहायता से हिंदी को तवज्जो देना शुरू कर चुके हैं। उपर्युक्त तथ्यों और बातों के आधार पर ये कहा जा सकता है कि वेब मीडिया ने हिंदी समेत सभी भाषाओं को एक सामान वैश्विक मंच प्रदान किया है। चूँकि हिंदी की अपनी विशेषताएं हैं इसलिए हिंदी अन्य भाषाओं से तेज व सकारात्मक रूप से परिवर्तनशील यानि कि विकासशील है।

7

हिन्दी पत्रकारिता एवं साहित्य का परस्पर संबंध

साहित्य और पत्रकारिता के बीच अटूट रिश्ता रहा है। एक जमाना था जब इन दोनों को एक-दूसरे का पर्याय समझा जाता था। ज्यादातर पत्रकार साहित्यकार थे और ज्यादातर साहित्यकार पत्रकार। मीडिया और साहित्य में गहरा संबंध है। एक-दूसरे के बिना दोनों का काम चल नहीं सकता। सशक्त मीडिया ऐसी भूमि है जिस पर साहित्य का विशाल वटवृक्ष खड़ा हो सकता है। वास्तव में पत्रकारिता भी साहित्य की भाँति समाज में चलने वाली गतिविधियों एवं हलचलों का दर्पण है। वह हमारे परिवेश में घट रही प्रत्येक सूचना को हम तक पहुँचाती है। सत्य और तथ्य को बेलाग उद्घाटित करना रचनाधर्मिता है। साहित्यकार और पत्रकार का रचनाधर्मिता का क्षेत्र अलग-अलग होते हुए भी दोनों में चोली-दामन का साथ है। दोनों ही सम-सामयिक समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी लेखनी के माध्यम से समाज हित में सामाजिक मूल्यों और सम्वेदनाओं को दृष्टि प्रदान करते हैं। रास्ते अलग-अलग होते हुए भी दोनों की मंजिल एक है। दोनों ही संघर्ष पथ के राही के रूप में जीवन मूल्यों को प्रशस्त करते हुए दीनहीन की आवाज को बुलन्द करते हैं। शोषण विहीन समाज की स्थापना में दोनों का अहम योगदान है। साहित्य और पत्रकारिता ज्ञान के भण्डार हैं और समाज में जनजागरण का कार्य करते हैं। हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता हिन्दी साहित्य के विकास का अभिन्न अंग है। दोनों परस्पर एक-दूसरे का दर्पण हैं। पत्रकारिता की विधा को भी साहित्य के अंतर्गत माना जाता है। बहुत से विचारकों ने पत्रकारिता को तात्कालिक साहित्य की संज्ञा भी दी है। विचार किया जाए तो समय-समय पर

विभिन्न साहित्यकारों ने पत्रकारिता में अपना योगदान और पत्रकारों का मार्गदर्शन भी किया है। पत्रकार और साहित्यकार वस्तुत: जनता के प्रतिनिधि होते हैं। वे जनता के सुख-दुख की आवाज को अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त कर समाज को सही राह दिखाते हैं। पत्रकार में लेखक, साहित्यकार, कवि और सम्पादक के सभी गुण समाहित होते हैं। कहने का तात्पर्य है, जो व्यक्ति समाज हित में समाजोपयोगी साहित्य का सृजन, निर्माण और विकास करता है वही साहित्यकार और पत्रकार कहलाता है।

साहित्यकार और पत्रकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पत्रकार का कार्य है समाज में घटित होने वाली सभी अच्छी-बुरी घटनाओं को ज्यों का त्यों समाज के समक्ष परोसना। यदि पत्रकार इन घटनाओं के समाचारों को विश्लेषित कर उसे समाजोपयोगी बनाता है तो वह निश्चय ही साहित्य का सृजन कर रहा है। साहित्यकार अपनी रचनाओं को शाश्वत मूल्यों के साथ गद्य-पद्य विधाओं में सृजित करता है और फिर उसे प्रकाशन का रूप देता है। यह प्रकाशन समाचार पत्रों में क्रमिक रूप से होता रहता है। फिर उसे पुस्तकाकार का रूप देने का प्रयास करता है।

साहित्यकार अपनी रचनाओं का सोच-समझ कर सृजन करता है। इसके लिए उसके पास काफी समय होता है। इस समय का सदुपयोग वह अपने साहित्य को समाज हित में बेहतर और उपयोगी बनाता है। वहीं पत्रकार अपना रचना कार्य दैनन्दिनी रूप में करता है। वह अपने कार्य को समाचार पत्र के माध्यम से स्वरूप प्रदान करता है। एक सफल पत्रकार त्वरित रूप से घटनाओं का ब्यौरा तैयार करता है, क्योंकि उसे अपने समाचार पत्र के अगले अंक में प्रकाशन के लिए आकार देना होता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि एक पत्रकार में साहित्यकार, लेखक और रचनाकर्मी के सभी गुण समाहित होते हैं।

आजादी के आन्दोलन में पत्रकार और साहित्यकार समानधर्मी होते थे। महात्मा गांधी ने अहिंसक क्रांति के जरिये भारत को आजादी दिलाने के आंदोलन का नेतृत्व किया था। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, वियोगी हरि और डॉ. राम मनोहर लोहिया स्वतंत्रता सेनानी के साथ-साथ पत्रकार और लेखक के रूप में भी प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपनी लेखनी के जरिये देशवासियों में आजादी के आंदोलन का जज्बा जगाया था। आजादी के बाद हिन्दुस्तान, धर्मयुग, दिनमान, सारिका, कादम्बिनी, ब्लिटज, नंदन, पराग, नवनीत, रविवार जैसी पत्रिकाओं ने पत्रकार के साथ साहित्य का

झंडा बुलन्द रखा। धरातलीय कसौटी पर देखा जाये तो एक पत्रकार में रिपोर्टर, सम्पादक, लेखक, प्रूफ रीडर से लेकर समाचार पत्र वितरक या हॉकर तक के सभी गुण विद्यमान होते हैं। वह अपने हाथ से अपने समाचार पत्र में समाचारों के साथ-साथ सम्पादकीय भी लिखता है और समय-समय पर सम सामयिक विषयों पर आलेख भी निर्मित करता है। आजादी के आंदोलन के दौरान पत्रकार और साहित्यकार में कोई अन्तर नहीं था। यह अवश्य कहा जा सकता है कि बहुत से साहित्यकार सिर्फ साहित्य सृजन तक ही सीमित रहते हैं। वे लेखक, कवि, कहानीकार और उपन्यासकार का दायित्व निभाते हैं। मगर एक पत्रकार में ये सभी गुण समाहित होते हैं। वह समय-समय पर अपनी लेखनी के माध्यम से कवि, कहानीकार और लेखक भी बन जाता है। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक आदि को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

आधुनिक भारत में भारतेन्दु, अज्ञेय, विद्यानिवास मिश्र, रघुवीर सहाय, कमलेश्वर, श्याम मनोहर जोशी, बाल कृष्ण राव, चन्द्रगुप्त विकालंकार, खुशवन्त सिंह, कुलदीप नैय्यर, डॉ. कन्हैया लाल नंदन और डॉक्टर वेद प्रताप वैदिक आदि को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। इन्होंने लेखक और पत्रकार के श्रेष्ठ दायित्व का समान रूप से निर्वहन किया है। आज भी बहुत से पत्रकार साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।

साहित्यिक पत्रकारिता

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने वाराणसी से कविता केंद्रित पत्रिका 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन 15 अगस्त, 1867 को प्रारंभ किया था। इस तरह हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के 150 वर्ष पूरे हुए। भारतेंदु 'कवि वचन सुधा' में आरंभ में पुराने कवियों की रचनाएँ छापते थे जैसे चंद बरदाई का रासो, कबीर की साखी, जायसी का पदमावत, बिहारी के दोहे, देव का अष्टयाम और दीन दयाल गिरि का अनुराग बाग। लेकिन जल्द ही पत्रिका में नए कवियों को भी स्थान मिलने लगा। पत्रिका के प्रवेशांक में भारतेंदु ने अपने आदर्श की घोषणा इस प्रकार की थी -

'खल जनन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै।
अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै।।
बुध तजहि मत्सर, नारि नर सम होंहि, जग आनंद लहै।
तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै।'

भारतेंदु खलजनों द्वारा पीड़ित किए जानेवाले सज्जनों के प्रति संवेदना जताते हैं, वहीं यह आकांक्षा प्रकट करते हैं कि पाठक अच्छी कविता का रसास्वादन करें। भारतेंदु की यह भी कामना है कि भारत अपने खोए हुए स्वत्व को प्राप्त करे। वे नर-नारी की समानता पर भी बल देते हैं। भारतेंदु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कविवचनसुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा, 'यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।'

'कवि वचन सुधा' में साहित्य तो छपता ही था। उसके अलावा समाचार, यात्रा, ज्ञान विज्ञान, धर्म, राजनीति और समाज नीति विषयक लेख भी प्रकाशित होते थे। इससे पत्रिका की जनप्रियता बढ़ती गई। इतनी कि उसे मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक कर दिया गया। प्रकाशन के दूसरे साल 'कवि वचन सुधा' पाक्षिक हो गई थी और 5 सितंबर, 1873 से साप्ताहिक। 'कवि वचन सुधा' के द्वितीय प्रकाशन वर्ष में मस्टहेड के ठीक नीचे छपता था -

'निज-नित नव यह कवि वचन सुधा सकल रस खानि।
पीवहु रसिक आनंद भरि परमलाभ जिय जानि।।
सुधा सदा सुरपुर बसै सो नहीं तुम्हरे जोग।
तासों आदर देहु अरु पीवहु एहि बुध लोग।।'

'कवि वचन सुधा' में सूचना का एक नियमित स्तंभ रहता था। सूचना के अलावा नाना विषयों पर टिप्पणियाँ छपती थीं। 'कवि वचन सुधा' के 8 फरवरी, 1874 के अंक में प्रकाशित एक ऐसी ही टिप्पणी द्रष्टव्य है, 'कुछ काल पहले अँग्रेज लोग जब हिंदुस्थान के विषय में व्याख्यान देते थे तब यही प्रगट करते थे कि हम लोग इस देश के लाभ अर्थ राज्य करते हैं यही चिल्ला-चिल्ला कर सर्वदा कहा करते कि हम सदैव हिंदुस्तान की वृद्धि के निमित्त विचार करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करेंगे और यहाँ के निवासियों को विद्यामृत पिलाएँगे और राज्य का प्रबंध किस भात करना यह ज्ञान प्रजा को स्वतः हो जाएगा तब हम लोग हिंदुस्तान का सब राज्य प्रबंधन यहाँ के निवासियों को स्वाधीन कर देंगे और अंत को सब राम-राम कह कर जहाज पर पैर रख स्वदेश गमन करेंगे। यह वार्ता हम लोग अपनी गड़ी हुई नहीं कहते। पर इन्हीं अँग्रेजों की और मुख्य करके पादरियों के जो व्याख्यान प्रसिद्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट प्रगट होता

है कि यह प्रकार पाठकजनों के देखने में निस्संदेह आया ही होगा इसमें संदेह नहीं।' अँग्रेजी शासन के प्रति भारतेंदु की यह टिप्पणी बेहद तात्पर्यपूर्ण है कि भारतीयों के लाभ के लिए अँग्रेजी शासन होने का दावा खोखला था। अँग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया, 'सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है, उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।'

'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित लेख 'भुतही इमली का कन कौआ' पर राजा शिवप्रताप सितारेहिंद ने गवर्नर से शिकायत की। रही-सही कसर 'मर्सिया' के प्रकाशन ने पूरी कर दी। उससे अँग्रेजी शासन का क्रोध और बढ़ गया। भारतेंदु ने 20 अप्रैल, 1874 के अंक में शंका शोधन (स्पष्टीकरण) भी छापा, 'मर्सिया में हमारे अपने ग्राहकों को शंका होगी कि वह राजा कौन था? इससे अब हम उस राजा का अर्थ स्पष्ट करके सुनाते हैं। वह राजा अँग्रेजी फैसन था जो इस अपूर्ण शिक्षित मंडली रूप अँधेर नगरी का राज करता था जब से बंबई और काशी इत्यादि स्थानों में अच्छे-अच्छे लोगों ने प्रतिज्ञा करके अँग्रेजी कपड़ा पहिरना छोड़ देने की सौगंध खाई तब से मानो वह मर गया था।' स्पष्टीकरण का कोई लाभ न हुआ।

अँग्रेज सरकार ने 'कवि वचन सुधा' की प्रतियों की खरीद बंद कर दी। सरकार भक्तों ने भी पत्र खरीदना, पढ़ना और अपने घर में रखना बंद कर दिया, इससे 'कविवचन सुधा' को आर्थिक नुकसान तो बहुत हुआ, किंतु उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। भारतेंदु ने अँग्रेजी हुकूमत के मानद दंडाधिकारी का पद भी त्याग दिया। यही क्या, उन्होंने अँग्रेज अफसरों से मिलना तक बंद कर दिया। भारतेंदु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था, 'हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई

विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्राय: सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।'

सात वर्षों तक 'कवि वचन सुधा' का संपादन-प्रकाशन करने के बाद भारतेंदु ने उसे अपने मित्र चिंतामणि धड़फले को सौंप दिया और 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' का प्रकाशन 15 अक्टूबर, 1873 को बनारस से आरंभ किया। 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के मुखपृष्ठ पर उल्लेख रहता था कि यह 'कवि वचन सुधा' से संबद्ध है। 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के प्रवेशांक में एक निबंध छापा - 'हिंदूज क्वश्चन टू यूरोपीयन'। यह लेख प्रश्नोत्तर शैली में है–आप इंग्लैंड के हो या हमारे? क्यों अपना घरबार छोड़कर यहाँ आ बसे? यदि आप हमारे हैं तो क्यों हमारे देश को इतनी पीड़ा दे रहे हैं।..? आप किसी के नहीं हैं - फिर आपकी स्तुति करें या निंदा? आपको साधु कहें या गुरु? इसी तरह 'रिलीजन्स' शीर्षक लेख में अंधविश्वासी युवकों की खबर ली गई थी, 'हमें यह देखकर खेद होता है कि हिंदू धर्म का पतन हो रहा है। हिंदू धर्म, अन्य सभी धर्मों से श्रेष्ठ है। परंतु हमारे प्रबुद्ध मित्र इसे अंधविश्वास की संज्ञा देते हैं।' प्रथम अंक 24 पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। कुछ अंक बीस और बयालीस पृष्ठ के भी निकले। इसमें प्राय: अँग्रेजी भाषा में हर अंक में तीन से छह पृष्ठ होते थे। अँग्रेजी की सामग्री अधिकतर अन्य व्यक्ति लिखकर भेजते थे जिनके नाम से वह छपती थी। इसमें साहित्य, विज्ञान, राजनीति, धर्म, पुरातत्त्व, इतिहास आदि विषयों पर लेखों के साथ ही उपन्यास, कविता, हास्य-व्यंग्य आदि पर भी सामग्री रहती थी।

'हरिश्चंद्र मैग्जीन' जल्द ही 'कवि वचन सुधा' से भी अधिक लोकप्रिय हो गई थी तथा उस समय के मशहूर लेखक जैसे बाबू तोताराम मुंशी, ज्वाला प्रसाद, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, दयानंद सरस्वती और स्वयं भारतेंदु समय-समय पर 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के लिए लिखा करते थे। भारतेंदु जी ने अपने लेखकों को सहायक संपादकों की मर्यादा दी। 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के केवल आठ अंक ही निकल सके। उन आठ अंकों में कुल 113 रचनाएँ प्रकाशित हुईं। आठवें अंक निकलने के बाद पत्रिका का नाम 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया गया। मुखपृष्ठ

पर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' छपा होता था और आखिरी पृष्ठ पर 'हरिश्चंद्र मैग्जीन'।

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का प्रवेशांक जून 1874 में निकला। मुखपृष्ठ पर यह 'लोक और छंद छपता था –

'विद्वत्कुलाम लस्वांत कुमुदामोददायिका।
आर्याज्ञान-तमोहंती श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका।।'

'कविजन-कुमुद-गन हिय विकासि चकोर रसिकन सुख भरै।
प्रेमिन सुधा सों सींचि भारतभूमि आलस तम हरै।।
उद्यम सु औषधि पोखि विरहिनि दाहि खल चोरन दरै।
हरिश्चंद्र की यह चंद्रिका पर कासि जग मंगल करै।।'

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में हठीकृत राधा सुधा शतक, भारतेंदु जी का धनंजय विजय व्यायोग, गदाधर सिंह कृत कादंबरी, लाला श्रीनिवास दास कृत तप्सासंवरण नाटक आदि प्रकाशित हुए। भारतेंदु का 'पाँचवा पैगंबर', मुंशी कमला सहाय का 'रेल का विकट खेल', मुंशी ज्वाला प्रसाद का 'कलिराज की सभा' आदि रचनाएँ भी उसमें छपे। पुरातत्त्व संबंधी लेख भी उसमें प्रकाशित किए जाते थे। कुछ पृष्ठों में अँग्रेजी रचनाएँ भी प्रकाशित होती थीं। कविता में ही मूल्यादि का विवरण छपता था –

'षट् मुद्रा पहिले दिए बरस बिताए सात।
साथ चंद्रिका के लिए दस में दोऊ मिल जात।।
बरन गए बारह लगत दो के दो महसूल।
अलग चंद्रिका सात, शट् वचन सुधा समतूल।।
दो आना एक पत्र की टका पोस्टेज साथ।
सारध आना आठ दै लहत चंद्रिका हाथ।।
प्रति पंगति आना जुगुल जो कोऊ नोटिस देई।
जो विशेष जानन चहै पूछि सबै कुछ लेई।।'

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का प्रकाशन घाटे के बावजूद छह वर्षों तक होता रहा। हरिश्चंद्र ने 'नवोदित हरिश्चंद्र चंद्रिका' भी निकाली। उसमें धारावाहिक रूप में 'पुरावृत संग्रह', 'स्वर्णलता' (उपन्यास) तथा 'सती प्रताप' (नाटक) का प्रकाशन हुआ था। 'प्रेम-प्रलाप' के कुछ उत्कृष्ट पद भी प्रकाशित किए गए थे। उस पत्रिका के तीन अंकों का ही विवरण मिलता है। नवंबर 1874 के अंक में 31 सहायक संपादकों के नाम दिए गए हैं। जैसे – ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महर्षि दयानंद सरस्वती। कहना न होगा कि वस्तुतः ये सहायक संपादक पत्रिका के

लेखक थे। पत्रिका के विदेशों में भी पाठक थे। भारतेंदु ने एक स्त्री शिक्षोपयोगी मासिक पत्रिका की जरूरत को शिद्दत से महसूस किया और जनवरी, 1874 में 'बाला बोधिनी' नामक आठ पृष्ठों की डिमाई साइज की पत्रिका प्रकाशित की। उसके मुखपृष्ठ पर यह कविता प्रकाशित होती थी –

'जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारि सोई पुरुष या में कुछ न विभक्ति।।
सीता अनुसूया सती अरुंधती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण लहौ सकल जग नारि।।
पितु पति सुत करतल कमल लालित ललना लोग।
पढ़ै गुनैं सीखैं सुनै नासैं सब जग सोग।।
और प्रसविनी बुध वधू होई हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की सांचेहि स्वामिनि होय।।'

उन दिनों 'बाल बोधिनी' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' की पाँच-पाँच सौ प्रतियाँ छपती थीं जिसमें सौ-सौ प्रतियाँ तो सरकार ही खरीद लेती थी। 'बाला बोधिनी' के प्रवेशांक में लिखा था, 'मैं तुम लोगों से हाथ जोड़कर और आँचल खोलकर यही माँगती हूँ कि जो कभी कोई भली-बुरी कड़ी-नरम कहनी अनकहनी कहूँ उसे मुझे अपनी समझकर क्षमा करना क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगी सो तुम्हारे हित की कहूँगी।' इस पत्रिका में महिलापयोगी रचनाएँ ही अधिकतर छपती थीं, परंतु इतिहास, साहित्य, राजनीति पर सामयिक लेख भी दिए जाते थे। 'मुद्राराक्षस' नाटक का प्रकाशन भी इसमें हुआ था। यह पत्रिका चार वर्षों तक निरंतर प्रकाशित होती रही।

भारतेंदु स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देते थे। उस समय जो युवतियाँ अँग्रेजी परीक्षाएँ पास करतीं, उनको वे साड़ी भेंट करते थे। 'बाला बोधिनी' के जिल्द 2 संख्या-73 में स्त्रियों में नैतिक शिक्षा के प्रसार के लिए लिखा गया था, 'हे सुमति, जब बालक तुम्हारा भली प्रकार बातचीत करने लगे तो उसको वर्णमाला याद कराती रहें फिर उन्हीं को पट्टी पै लिख के अभ्यास कराओ और रातों को गिनती और सुंदर-सुंदर श्लोक व छोटे स्रोत याद कराओ। इस व्योहार में कई एक बातें सुंदर प्राप्त होंगी। प्रथम तो बालक को खेल ही खेल में अक्षर ज्ञान हो जावेगा दूसरे उसका काल भी व्यर्थ नहीं जाने का फिर इस अवसर का पढ़ा-लिखा विशेष करके याद रहता है।' 'बाला बोधिनी' में 'गुरुसारणी' नाम से एक स्तंभ होता था जिसमें घर के हिसाब-किताब के सूत्र कविता में प्रकाशित किए जाते

थे। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के साथ ही 'बाला बोधिनी' की भी सरकारी सहायता बंद हो गई तो भारतेंदु ने उसे 'कविवचनसुधा' में समाहित कर दिया। राममोहन राय ने स्त्री अधिकारों के लिए जो रचनात्मक संघर्ष किया, सती प्रथा और बाल विवाह का विरोध किया, विधवा विवाह को समर्थन दिया और स्त्री शिक्षा पर जोर दिया और उस नवजागरण के लिए पत्रकारिता को अस्त्र बनाया और जिसे द्वारिका प्रसाद टैगोर तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका के माध्यम से आगे बढ़ाया, उसी की अगली कड़ी भारतेंदु की पत्रिका 'बालाबोधिनी' से जुड़ती है। ध्यान देने योग्य है कि 'बालाबोधिनी' का प्रकाशन होने के दस साल बाद 1884 में फ्रेडरिक एंगेल्स की किताब 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' आई थी जिसमें मार्क्सवादी अवधारणा के आलोक में स्त्रीत्ववाद का गंभीर विवेचन किया गया था। कहना न होगा कि हिंदी साहित्य और पत्रकारिता में स्त्री विमर्श की जब भी चर्चा होगी तो उसमें 'बालाबोधिनी' के रचनात्मक अवदान का उल्लेख अनिवार्य होगा।

भारतेंदु की पत्रिकाओं के बाद बालकृष्ण भट्ट के संपादन में 1877 में मासिक पत्रिका 'हिंदी प्रदीप' निकली। उसके प्रत्येक अंक में 'विद्या, नाटक, इतिहास, परिहास, उपन्यास, साहित्य, दर्शन, राज संबंधी इत्यादि के विषय में हर महीने की पहली को छपता है' लिखा रहता था। 'हिंदी प्रदीप' ने भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रसार किया। बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में कालिदास, श्री हर्ष, भवभूति, बिल्हण, बाण, त्रिविक्रम भट्ट, हरिश्चंद्र, भारवि, क्षेमेंद्र तथा गोवर्धन आदि कवियों के जीवन और योगदान पर लेख प्रकाशित किए और प्राचीन पुस्तकों की समालोचनाएँ भी छापीं। 'नल दमयंति', 'किरातार्जुनीयम', 'सौ अजान एक सुजान' और 'भाग्य की परख' जैसे नाटक भी 'हिंदी प्रदीप' में छपे। 1908 में माधव शुक्ल की कविता 'बम क्या है' छापने के लिए 'हिंदी प्रदीप' पर तीन हजार रुपए का जुर्माना लगा जिसे न चुका पाने के कारण उसका प्रकाशन बंद हो गया। सन 1878 में 'भारत मित्र', 1879 में 'सारसुधानिधि' और 1880 में 'उचित वक्ता' का प्रकाशन हुआ। 'भारत मित्र' के संपादक छोटेलाल मिश्र, 'सारसुधानिधि' के संपादक सदानंद मिश्र और 'उचित वक्ता' के दुर्गाप्रसाद मिश्र ने हिंदी गद्य के उन्नयन के लिए ठोस काम किए। 'सारसुधानिधि' के वर्ष 2, अंक 12 की संपादकीय टिप्पणी में सदानंद मिश्र ने लिखा था, "एक विशुद्ध साधु हिंदी भाषा की सर्वत्र एक ही पुस्तक पढ़ाई जाना उचित है। किंतु विशेष दुख का विषय है कि जिस हिंदी भाषा का अधिकार इतना बड़ा है कि भारतवर्ष

के प्रायः आधे दूर तक परिव्याप्त है। ...हिंदुस्तान की उन्नति का मूल जब यह ठहरा कि हिंदुस्तान की प्रधान भाषा हिंदी परिशुद्ध होकर सर्वत्र एक ही रूप से प्रचार हो, तब अवश्य गवर्नमेंट की सहायता आवश्यक है क्योंकि संप्रति भारतवासियों की सर्व प्रकार की शिक्षा एकमात्र गवर्नमेंट के अधीन है।" इसी तरह दुर्गाप्रसाद मिश्र ने 12 जनवरी, 1895 के 'उचितवक्ता' की संपादकीय टिप्पणी में लिखा था, 'आजकल हिंदी साहित्य की विचित्र दशा वर्तमान है। इसकी कुछ स्थिरता ही नहीं देख पड़ती।

विविध प्रकार के रंग-बिरंगे लेख प्रकाशित होते हैं। कोई तो आज संस्कृत शब्दों पर झुक रहे हैं और ज्यों ही किसी ने कह दिया कि आपकी भाषा कठिन है, कुछ सरल कीजिए, कि चट-पलट कर उर्दू की खिचड़ी पकाने लग गए, फिर ज्यों ही किसी ने कह दिया कि केवल संस्कृत के शब्दों के मिलाने से वा उर्दू के शब्दों के प्रयोग से भाषा पुष्ट होगी, बस चट बदल गए और दोनों प्रकार के शब्दों को मिलाने में उतारू हो गए। सारांश यह कि ग्राहकों की खोज में भाषा को भी भटकाते रहते हैं।' 'सारसुधानिधि' और 'उचितवक्ता' की इन संपादकीय टिप्पणियों से स्पष्ट है कि तब के संपादकों में भाषा के प्रश्न को लेकर कितनी गहरी चिंता थी। इसी सरोकार से 1881 में बद्रीनारायण उपाध्याय ने 'आनंद कादंबिनी' और प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' का प्रकाशन किया।

माधवराव सप्रे ने छत्तीसगढ़ के पेंड्रा से 'छत्तीनसगढ़ मित्र' पत्रिका का प्रकाशन व संपादन जनवरी, 1900 में आरंभ किया। वामन बलीराम लाखे और रामराव चिंचोलकर उनके सहयोगी थे। 'छत्तीनसगढ़ मित्र' के प्रवेशांक में सप्रेजी ने 'आत्म परिचय' शीर्षक से अपने मंतव्य की घोषणा इस प्रकार कि - (1) इसमें कुछ संदेह नहीं कि सुसंपादित पत्रों के द्वारा हिंदी भाषा की उन्नति हुई है। अतएव यहाँ भी 'छत्तीकसगढ़ मित्र' हिंदी भाषा की उन्नति करने में विशेष प्रकार से ध्यान देवे।

आजकल भाषा में बहुत सा कूड़ा-कर्कट जमा हो रहा है, वह न होने पावे, इसलिए प्रकाशित ग्रंथों पर प्रसिद्ध मार्मिक विद्वानों के द्वारा समालोचना भी करे। (2) अन्यान्य भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद कर सर्वोपयोगी विषयों का संग्रह करना आवश्यक है।' 'छत्तीरसगढ़ मित्र' तीन साल ही निकल सका किंतु उसने सर्जनात्मक साहित्य यथा - कविता, कहानी, व्यंग्य व निबंध विधा की रचनाएँ तो छापीं ही, समालोचना विधा को प्रतिष्ठित करने का महत्त्वपूर्ण काम भी किया। 'छत्तीसगढ़ मित्र' में सप्रे जी ने दस पुस्तकों की विस्तृत समालोचना की

और सत्रह पुस्तकों पर परिचयात्मक टिप्पणियाँ प्रकाशित की। सप्रे जी की राय थी कि किसी पुस्तक या पत्र की आलोचना करने में समालोचक को उचित है कि उस पुस्तक या पत्र के गुण-दोष सप्रमाण सिद्ध करे।

सन 1900 में ही इलाहाबाद के इंडियन प्रेस से 'सरस्वती' निकली। आरंभ में इसका संपादन एक समिति को सौंपा गया था जिसमें बाबू श्याम सुंदर दास, बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद, बाबू जगन्नाथ दास और किशोरीलाल गोस्वामी शामिल थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी 1903 के जनवरी महीने में 'सरस्वती' के संपादक बने। उन्होंने पत्रिका को ज्ञान के सभी अनुशासनों का खुला मंच तो बनाया ही, यह भी सुनिश्चित किया कि प्रकाशन के पहले हर रचना की भाषा व्याकरण की दृष्टि से ठीक हो। भाषा-परिष्कार उनकी पहली प्राथमिकता थी।

उन्होंने 'सरस्वती' के नवंबर, 1905 के अंक में 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक से अपनी भाषा नीति स्पष्ट की और भारतेंदु हरिश्चंद्र, राजा शिवप्रसाद, गदाधर सिंह, काशीनाथ खत्री, मधुसूदन गोस्वामी और बाल कृष्ण भट्ट आदि की भाषा की गलतियों पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि भाषा की यह अनस्थिरता बहुत ही हानिकारिणी है।' द्विवेदी जी के इस 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर लंबा विवाद चला। (11 'भारतमित्र' के तत्कालीन संपादक बालमुकुंद गुप्त ने आत्माराम के नाम से दस लेख लिखकर द्विवेदी जी की तीखी आलोचना की। गोविंदनारायण मिश्र भी सामने आए और उन्होंने 'हिंदी बंगवासी' में 'आत्माराम की टें-टें' शीर्षक से लेख लिखकर गुप्त जी की आलोचना की। वह ऐतिहासिक विवाद डेढ़ साल तक चला।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक रचनाकारों को सबसे पहले अवसर दिया और जिनकी कविता या कहानी या लेख 'सरस्वती' में छपते थे, वे भी चर्चा में आ जाते थे। श्यामसुंदर दास, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथ दास रत्नाकर, किशोरीलाल गोस्वामी, माधवराव सप्रे, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, रायकृष्ण दास, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर आदि की रचनाएँ 'सरस्वती' में ही प्रकाशित हो कर चर्चित हुईं। 'सरस्वती' ने सर्जनात्मक साहित्य की हर विधा के विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। रामचंद्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' 1903 में द्विवेदी जी के संपादन में 'सरस्वती'

में ही छपी। बंग महिला (राजेंद्रबाला घोष) की कहानी 'कुंभ की छोटी बहू' 'सरस्वती' के सितंबर 1906 के अंक में छपी। 'सरस्वती' में 1909 में वृंदावन लाल वर्मा की कहानी 'राखी बंद भाई' और 1915 में प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'सौत' तथा 1916 में 'पंच परमेश्वर' छपी। 1915 में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' 'सरस्वती' में ही छपकर विख्यात हुई। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दिसंबर 1920 में 'सरस्वती' से विदा ली। सरस्वती 1975 तक निकलती रही किंतु महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन काल को सर्वोत्कृष्ट काल माना जाता है।

शारदा चरण मित्र ने 1907 में 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकाला था जो बीच में कुछ व्यवधान के बावजूद उनके जीवन पर्यंत यानी 1917 तक निकलता रहा। 'देवनागर' के पहले संपादक यशोदानंदन अखौरी थे। देवनागर में बांग्ला, उर्दू, नेपाली, उड़ीया, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, मलयालम और पंजाबी आदि की रचनाएँ देवनागरी लिपि में लिप्यंतरित होकर छपती थीं। उस पत्रिका में पं. रामावतार शर्मा, डॉ. गणेश प्रसाद, शिरोमणि अनंतवायु शास्त्री, अक्षयवट मिश्र, कोकिलेश्वर भट्टाचार्य और पांडेय लोचन प्रसाद जैसे विशिष्ट लोग लिखते थे। 1909 में वाराणसी से 'इंदु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। अंबिकाप्रसाद गुप्त उसके संपादक थे। 'इंदु' को छायावाद की नींव डालने का श्रेय जाता है। जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' 'इंदु' में ही 1911 में छपी थी।

नवंबर 1922 में रामरख सिंह सहगल ने स्त्रियों के सर्वांगीण उत्थान पर केंद्रित सचित्र मासिक 'चाँद' का प्रकाशन प्रारंभ किया। बाद में इसका दायरा विस्तृत कर दिया गया। 'चाँद' ने कई विशेषांक निकाले जैसे अछूतांक, पत्रांक, वैश्यांक, शिशु अंक, विधवा अंक, प्रवासी अंक। 'चाँद' का फाँसी अंक नवंबर 1928 में आया था और उसमें चार अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानियाँ छपी थीं। वे हैं – चतुरसेन शास्त्री की 'फंदा', पांडेय बेचन शर्मा उग्र की 'जल्लाद', जनार्दन प्रसाद झा द्विज की 'विद्रोही के चरणों पर' और विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की 'फाँसी'। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' 'चाँद' के अप्रैल 1936 के अंक में छपी थी। महादेवी वर्मा का अधिकांश साहित्य 'चाँद' में ही छपा।

विष्णुनारायण भार्गव द्वारा 1922 में नवल किशोर प्रेस से साहित्यिक मासिक पत्रिका 'माधुरी' निकाली। संपादक थे दुलारेलाल भार्गव व रूपनारायण पांडेय। शिवपूजन सहाय, प्रेमचंद, बांके बिहारी भटनागर भी कभी न कभी

पत्रिका की संपादकीय टीम के हिस्से रहे। 1950 में पत्रिका बंद हो गई। 1923 में कलकत्ता से साप्ताहिक 'मतवाला' पत्रिका निकली। संपादक के रूप में महादेव सेठ का नाम छपता था किंतु संपादक मंडल में निराला, शिवपूजन सहाय और मुंशी नवजादिक लाल भी थे। 'मतवाला' के प्रकाशन का एक मकसद निराला की कविताओं को प्रकाशित करना भी था। पत्रिका के हर अंक में प्रथम पृष्ठ पर निराला की कविता छपती थी। पत्रिका में समालोचना भी वही करते थे। संपादकीय, चलती चक्की व अन्य विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ लिखने तथा प्रूफ पढ़ने का जिम्मा शिवपूजन सहाय का था।

मुंशी नवजादिक लाल भी हास्य विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ लिखते थे। प्रेस की व्यवस्था महादेव सेठ देखते थे। पत्रिका का प्रबंध मुंशी जी के जिम्मे था। 1927 में मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य समिति इंदौर ने अंबिकाप्रसाद त्रिपाठी के संपादन में मासिक पत्रिका 'वीणा' का प्रकाशन किया। बाद में कालिकाप्रसाद दीक्षित कुसुमाकर, शांतिप्रिय द्विवेदी, चंद्ररानी सिंह, नेमीचंद्र जैन उसके संपादक हुए। इसी साल लखनऊ से दुलारेलाल व सावित्री के संपादन में मासिक पत्रिका 'सुधा' का प्रकाशन हुआ। 'सुधा' का प्रवेशांक दो बार छपा था। पहली बार तीन हजार प्रतियाँ बिक जाने पर दोबारा चार हजार छापा गया था। 'सुधा' का मार्च 1929 का अंक कार्टून विशेषांक के रूप में निकला। कार्टून पर पहली बार कोई विशेषांक तब निकला था।

1928 में रामानंद चट्टोपाध्याय ने हिंदी मासिक 'विशाल भारत' का प्रकाशन प्रारंभ किया। बनारसीदास चतुर्वेदी उसके संस्थापक संपादक थे। चतुर्वेदी जी के संपादन में 'विशाल भारत' जल्द ही हिंदी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका बन गई। शुरू के तीन वर्षों में ही उसने साहित्यांक, प्रवासी अंक तथा कला अंक जैसे विशेषांक निकालकर अपनी धाक जमा ली। जैनेंद्र की पहली कहानी 'खेल' 1928 में 'विशाल भारत' में ही छपी। 'विशाल भारत' ने प्रचुर अनुवाद साहित्य भी प्रकाशित किया। 1937 में बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर 'विशाल भारत' का संपादन करने के लिए अज्ञेय कलकत्ता आ गए। 'विशाल भारत' में आने के पहले अज्ञेय 1936 में आगरा के साप्ताहिक 'सैनिक' के बिना नाम के संपादक थे। वहाँ साल भर रहे थे।

अज्ञेय अकेले साहित्यकार हैं जिन्होंने हर तरह की पत्रकारिता की। उन्होंने दैनिक अखबार, साप्ताहिक अखबार, मासिक पत्रिका, द्विमासिक पत्रिका और त्रैमासिक पत्रिका का संपादन किया। 1947 में अज्ञेय ने इलाहाबाद से द्वैमासिक

'प्रतीक' नामक साहित्यिक पत्रिका निकाली। बाद में वह मासिक हो गई। त्रिलोचन, शमशेर, भारतभूषण अग्रवाल, सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीश गुप्त, कुँवरनारायण, रांगेय राघव, राजेंद्र यादव, मनोहरश्याम जोशी, अहमद हुसैन, शिवप्रसाद सिंह, राधाकृष्ण, विद्यानिवास मिश्र 'प्रतीक' में छपकर ही चर्चित हुए। 'प्रतीक' में अज्ञेय की संपादकीय टीम में रघुवीर सहाय, सियाराम शरण गुप्त, शिवमंगल सिंह सुमन और श्रीपत राय थे और प्रिंट लाइन में इन सबका नाम छपता था।

मार्च 1930 में मुंशी प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका निकाली। प्रेमचंद ने 'हंस' में श्रेष्ठ कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, अनूदित साहित्य, साहित्यिक लेख व टिप्पणियाँ छापकर उसे भारतीय साहित्य का मुखपत्र ही बना दिया। 1932 में 'हंस' के अलावा साप्ताहिक 'जागरण' का भी संपादन भार प्रेमचंद पर आ पड़ा। 'जागरण' पहले पाक्षिक साहित्यिक पत्र के रूप में शिवपूजन सहाय के संपादन में 11 फरवरी, 1932 को निकला किंतु उसके बारह अंक निकालने के बाद सहाय जी ने उसे प्रेमचंद जी को हस्तांतरित कर दिया। मासिक 'हंस' और 'जागरण' साप्ताहिक प्रेमचंद घाटे के बावजूद निकालते रहे। हजारीप्रसाद द्विवेदी के संपादन में 1942 'विश्वभारती पत्रिका' शांतिनिकेतन से निकली। द्विवेदी जी उसे 1947 तक निकालते रहे।

द्विवेदी जी के संपादन में उस पत्रिका ने रवींद्र साहित्य से हिंदी जगत को अवगत कराया। प्रवेशांक के संपादकीय में द्विवेदी जी ने लिखा था कि देश आज किस प्रकार नाना भाँति की संकीर्णताओं का शिकार बनता जा रहा है। उससे रक्षा पाने का सर्वोत्तम उपाय साहित्य ही है। रवींद्रनाथ टैगौर ने द्विवेदी जी के बारे में कहा था कि उनका ज्ञान हमलोग पाँच सौ वर्षों में भी सीख पाएँगे, कहना कठिन है। टैगोर ने यह टिप्पणी इसलिए की थी क्योंकि द्विवेदी जी ने भारतीय दर्शन, अध्यात्म, साधना, इतिहास, संस्कृति और कला को खोद डाला था और वैदिक वांङमय, इतिहास, संस्कृति, नीति शास्त्र, दर्शन शास्त्र और काव्य शास्त्र का द्विवेदी जी ने अपने साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता में जितना समर्थ उपयोग किया, उतना किसी अन्य साहित्यकार ने नहीं। मोहन सिंह सेंगर ने कलकत्ता से जुलाई 1948 में 'नया समाज' का प्रवेशांक निकाला। अस्सी पृष्ठों का। उसमें प्रकाशित पहली रचना मैथिलीशरण गुप्त की सोद्देश्य कविता 'एकलव्य' है। द्वितीय रचना हरिवंश राय बच्चन की दो शिक्षाप्रद कविताएँ – 'बापू के फूलों का जुलूस' और 'आत्मशक्ति का पुजारी' है। इसी अंक में जैनेंद्र कुमार का लेख

'सर्वोदय की नीति', अंबिकाप्रसाद वाजपेयी का लेख 'क्या यही स्वराज्य है', हजारीप्रसाद द्विवेदी का निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' छपा है। 'नया समाज' दस वर्षों तक निकलता रहा। उसे मैथिलीशरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, महादेवी वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, अज्ञेय समेत हिंदी के सभी दिग्गजों का रचनात्मक सहयोग मिलता रहा। सितंबर 1948 के अंक में भगवत शरण उपाध्याय, वृंदावनलाल वर्मा, रांगेय राघव, हजारीप्रसाद द्विवेदी, काका कालेलकर की रचनाएँ छपी हैं तो दिसंबर 1948 के अंक में रघुवीर सहाय, चंद्रकुँवर लाल की रचनाएँ छपी हैं। 'नया समाज' ने साहित्य के माध्यम से समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया। 'नया समाज' दस वर्षों तक निकलने के बाद बंद हो गया।

बदरी विशाल पित्ती ने 1949 में हैदराबाद से 'कल्पना' का प्रकाशन शुरू किया। 'कल्पना' ने कई लेखक पैदा किए। कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास 'विमल उर्फ जाएँ तो जाएँ कहाँ' को उस दौर में सभी बड़े प्रकाशकों ने प्रकाशित करने तक से मना कर दिया था क्योंकि उसका कथ्य उन्हें पच नहीं रहा था, लेकिन बदरी विशाल ने उसे 'कल्पना' में छापा। वह उपन्यास हिंदी साहित्य की थाती बन गया है। मार्कंडेय 'चक्रधर' के उपनाम से लंबे समय तक 'कल्पना' के हर अंक में साहित्य समीक्षा का एक स्तंभ 'साहित्यधारा' लिखते रहे। उसी तरह 'कल्पना का सर्वेक्षण' नाम से विवेकी राय का साहित्य सर्वेक्षण धारावाहिक उसमें छपा। 'कल्पना' में सिर्फ साहित्य ही नहीं, ललित कलाओं पर समीक्षात्मक लेख भी छपते थे। बदरी विशाल ने रामकुमार, मकबूल फिदा हुसैन जैसे बड़े कलाकारों को 'कल्पना' से जोड़ा था।

रघुवीर सहाय, प्रयाग शुक्ल, कमलेश, मुनींद्र जी जैसे लोग कभी न कभी 'कल्पना' की संपादकीय टीम का हिस्सा रहे। 'कल्पना' 1977 तक निकली। जिस साल 'कल्पना' निकली थी, उसी साल 1949 के जनवरी महीने में भारतीय ज्ञानपीठ ने कलकत्ता से मासिक 'ज्ञानोदय' पत्रिका निकाली थी। लक्ष्मीचंद्र जैन और जगदीश के संपादन में 'ज्ञानोदय' ने नवलेखन के प्रयोगों को उदारतापूर्वक प्रस्तुत किया। रमेश बक्षी ने जब 'ज्ञानोदय' का संपादन भार सँभाला तो उन्होंने भी आधुनिकता से संबंधित विचार-विमर्श से परिपूर्ण निबंध लगातार प्रकाशित किए। 'ज्ञानोदय' फरवरी 1970 तक निकलती रही। 2003 से ज्ञानपीठ ने 'नया ज्ञानोदय' के नाम से पत्रिका का पुनर्प्रकाशन प्रारंभ किया। संप्रति उसके संपादक लीलाधर मंडलोई हैं। इसी तरह 'नई धारा' पिछले 67 वर्षों से पटना

से निरंतर निकल रही है। शिव पूजन सहाय के संपादन में अप्रैल 1950 में उसका प्रकाशन राधिकारमण प्रसाद सिंह ने प्रारंभ किया था। सहाय जी ने 'नई धारा' के प्रवेशांक की संपादकीय में लिखा था, 'समाज को विद्रोही चाहिए। उससे अधिक विद्रोही चाहिए साहित्य को, कला को। 'नई धारा' ऐसे विद्रोहियों की वाणी कहकर जिस दिन बदनाम की जाएगी, हमारी चरम सफलता का दिन तब होगा।' इस समय पत्रिका के संपादक डॉ. शिवनारायण हैं। वे पिछले 25 वर्षों से 'नई धारा' का संपादन कर रहे हैं। 'नई धारा' की तरह ही भारतीय विद्या भवन की मासिक पत्रिका 'नवनीत' 65 वर्षों से निरंतर निकल रही है। इस समय उसके संपादक विश्वनाथ सचदेव हैं। इस पत्रिका ने श्रेष्ठ साहित्य के प्रकाशन की धारावाहिकता अक्षुण्ण रखी है।

साहित्यिक पत्रिकाओं ने साहित्यांदोलनों में भी अहम भूमिका निभाई। नई कविता आंदोलन के विकास में 1954 में प्रकाशित 'नई कविता' नामक पत्रिका का उल्लेखनीय योगदान रहा। 'नई कविता' पत्रिका का संपादन जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी और विजयदेवनारायण साही करते थे। इसी तरह 'कहानी' और 'नई कहानी' पत्रिकाओं ने हिंदी में नई कहानी आंदोलन को जन्म दिया और 'सारिका' ने समानांतर कहानी को। भैरवप्रसाद गुप्त ने जनवरी 1955 से 'कहानी' पत्रिका के माध्यम से नई कहानी आंदोलन का नेतृत्व किया। 'कहानी' के नववर्षांक 1956 के अंक में पहली बार स्पष्टत: नई कहानी की बात उठाई गई। उस बीच छपी कई कहानियाँ कालजयी साबित हुईं। जैसे – 'राजा निरबंसिया', 'रसप्रिया', 'गुलकी बन्नो', 'गदल', 'मवाली', 'हंसा जाई अकेला', 'डिप्टी कलक्टरी', 'चीफ की दावत', 'बादलों के घेरे' और 'सेब'। 'कहानी' पत्रिका ने अमरकांत, शेखर जोशी, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर को प्रतिष्ठित किया। भैरव प्रसाद गुप्त 1955 से 1959 तक 'कहानी' पत्रिका के संपादक रहे। उसके बाद वे 'नई कहानियाँ' नामक पत्रिका का संपादन करने लगे जिसमें छपकर राम नारायण, प्रयाग शुक्ल, मन्नू भंडारी, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, रमेश बक्षी और उषा प्रियंवदा प्रतिष्ठित हुए।

बड़े मीडिया घरानों से प्रकाशित पत्रिकाओं की भूमिका की बात करें तो हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' का प्रकाशन 1950 से शुरू हुआ। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' लगभग 42 वर्ष तक निकलता रहा, जिसका संपादन मुकुटबिहारी वर्मा, बांकेबिहारी भटनागर, रामानंद दोषी, मनोहरश्याम जोशी, शीला झुनझुनवाला, राजेंद्र अवस्थी तथा मृणाल पांडे ने किया। मनोहरश्याम

जोशी ने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' को पत्रकारीय उत्कर्ष प्रदान किया। टाइम्स ऑफ इंडिया समूह ने 'धर्मयुग' जैसी उत्कृष्ट पत्रिका निकाली। 'धर्मयुग' का जन्म 'नवयुग' की कोख से हुआ। 1950 में बेनेट एंड कोलमैन ने बंबई से 'नवयुग' से संयुक्त कर रविवार 8 अक्टूबर, 1950 से 'धर्मयुग' का प्रकाशन शुरू किया। 'धर्मयुग' का इलाचंद्र जोशी एवं हेमचंद्र जोशी का संपादककाल अल्पकालीन रहा। 'धर्मयुग' को शैशव से किशोरावस्था तक पहुँचाने का श्रेय सत्यदेव विद्यालंकार को जाता है।

उन्होंने एक दशक तक 'धर्मयुग' का संपादक किया। 'झूठा सच', 'आपका बंटी', 'आधे-अधूरे', 'सुखदा', 'गली आगे मुड़ती है', 'तेरी मेरी उसकी बात', 'इदन्नमम', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'मानस के हंस', 'खंजन नयन' जैसी प्रसिद्ध रचनाएँ 'धर्मयुग' ने ही छापीं। इसके अलावा विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ 'दुराचारिणी', 'भीगी पलकें', 'मर्यादा की रक्षा', यशपाल की कहानी 'सामंती कृपा', जैनेंद्र की कहानी 'ये पल' व उपन्यास 'सुखदा', वृंदावन लाल वर्मा की 'इस हाथ लें, उस हाथ दें', डॉ. रामकुमार वर्मा के नाटक - 'दुर्गावती, रात का रहस्य', भवानी प्रसाद मिश्र की 'परछाइयाँ' और राजेंद्र यादव की कहानी 'कुलटा' धर्मयुग में छपकर ही चर्चित हुई थीं। गोपाल सिंह नेपाली, दिनेश नंदिनी, रामधारी सिंह दिनकर, गोपाल दास नीरज, रांगेय राघव, हरिवंश राय बच्चन, रमानाथ अवस्थी, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, शिवकुमार श्रीवास्तव, वीरेंद्र मिश्र आदि की कविताएँ नियमित रूप से 'धर्मयुग' में प्रकाशित होती थीं। रवींद्रनाथ ठाकुर, सरोजिनी नायडू जैसे कवियों की कविताओं के अनुवाद प्रमुखता से प्रकाशित होते थे। 'धर्मयुग' का 16 अगस्त, 1956 का अंक 'कविता अंक' था। 1957 में देशी विदेशी कविताओं पर आधारित लेखों की शृंखला का प्रकाशन और 1958 का व्यंग्य विशेषांक भी चर्चित रहा था।

6 मार्च, 1960 को धर्मवीर भारती 'धर्मयुग' के संपादक हुए और 28 नवंबर, 1987 तक यानी 27 वर्षों तक उन्होंने 'धर्मयुग' का संपादन किया। उस कालखंड में 'धर्मयुग' और धर्मवीर भारती एक-दूसरे के पर्याय बन गए। भारती ने उच्च कोटि का साहित्य प्रकाशित कर 'धर्मयुग' को श्रेष्ठ राष्ट्रीय साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका बनाया। धर्मवीर भारती के संपादन काल में 60-70 दशक में वसंत ऋतु आई (ख्वाजा अहमद अब्बास), अरक्षणीया (राजकमल चौधरी) उत्सव, मलयालम कहानी, (तकषी शिवशंकर पिल्लै) अंतरपट, (गुजराती कहानी, हसुनायक) रात आठ बजे वाली सवारी (बांग्ला

कहानी, विमल मित्र), समय (यशपाल), सिफारिशी चिट्ठी (भीष्म साहनी), बिल्लियाँ (मृणाल पांडेय), कल्कि अवतार (शिव प्रसाद सिंह), बयान (कमलेश्वर), माँ (बांग्ला कहानी-विमल मित्र), ऊब (एक उलजलूल कहानी-छेदी लाल), बदलाव (विवेकी राय), चतुरी लाल (बांग्ला कहानी-बनफूल), अरस का पावा (सलमा सिद्दकी), झुका हुआ आकाश (उड़िया कहानी - नंदनी सत्यपथी), प्रेत (गंगा प्रसाद विमल), प्रतीक्षा (लंबी कहानी - शिवानी), दिलबाग सिंह की हत्या (सुदर्शन सिंह मजीठिया), बौना और चाँद (देशज प्रसाद मिश्र) 'धर्मयुग' में छपकर ही चर्चित हुई थीं। धर्मवीर भारती के संपादन काल में 'कथा दशक' शृंखला का सफल आयोजन 'धर्मयुग' की उल्लेखनीय उपलब्धि थी।

उसमें कथाकार अपनी कहानियों के पीछे की कहानी भी बताते थे। 'कथा दशक' शृंखला के तहत उस दशक के सभी चर्चित कथाकारों जैसे उषा प्रियंवदा, कमलेश्वर, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, नरेश मेहता, फणीश्वरनाथ रेणु, भीष्म साहनी, मार्कंडेय, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, अमरकांत, रघुवीर सहाय, राजेंद्र यादव, राजकमल चौधरी, राजकुमार, लक्ष्मीनारायण लाल, विजय चौहान, शरद जोशी, ज्ञानी, शिव प्रसाद सिंह, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, सर्वेश्वर दयाल, सक्सेना, हरिशंकर परसाई, रमेश बक्षी आदि की कहानियाँ प्रस्तुत की गईं। अनेक श्रेष्ठ उपन्यास 'धर्मयुग' में धारावाहिक प्रकाशित हुए। 'धर्मयुग' ने महिला कथाकारों एवं कवयित्रियों को भी आगे बढ़ाया। शिवानी, मृणाल पांडेय, सूर्यबाला, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, कुर्रतुल उन हैदर, पद्मा सचदेव, मैत्रेयी पुष्पा, अमृता प्रीतम इस्मत चुगताई, महादेवी वर्मा, ममता कालिया, मालती जोशी, नासिरा शर्मा, कमला चमोला, शांति मेहरोत्रा, कुंदनिका कापड़िया, इंदिरा चंद्रा, सुधा अरोड़ा, उषा महाजन, आभा दयाल, मृदुला हसन, शुभदा मिश्र की रचनाएँ धर्मयुग में निरंतर प्रकाशित हुईं। भारती के बाद गणेश मंत्री और मंत्री जी के बाद विश्वनाथ सचदेव उसके संपादक बने। 'धर्मयुग' पत्रिका 47 वर्षों तक निकलती रही।

टाइम्स ऑफ इंडिया समूह ने ही 1965 में साप्ताहिक 'दिनमान' पत्रिका निकाली थी। अज्ञेय उसके संस्थापक संपादक थे। उनके संपादन में 'दिनमान' जल्द ही राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित पत्रिका बन गई थी। उसका आधार वाक्य था 'राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान।' उसने पाठकों में राजनीतिक और सामाजिक चेतना का संचार किया। 'दिनमान' ने नई शब्दावली चलाई। अज्ञेय की

मान्यता थी कि व्यक्तियों और स्थानों के नामों को जहाँ तक हो सके, वैसे ही लिखा जाए, जैसा उन देशों में बोला जाता है। मास्को शब्द जब पूरे भारत में चल गया था, उस समय 'दिनमान' मस्क्वा लिखता था। इसी तरह चिली को 'दिनमान' चिले लिखता था। सौ किलोग्राम के लिए जब कुएँटल शब्द चला तो दिनमान ने उसे कुंतल लिखना शुरू किया। अज्ञेय ने 'दिनमान' के लिए वर्तनी के लिए जो नियम स्थिर किए थे, उनमें कुछ प्रमुख हैं –

1. विभक्तियाँ सर्वनाम के साथ लिखी जाएँ – जैसे–मैंने, हमने, किससे, उससे। 2. क्रिया पद 'कर' मूल क्रिया से मिलाकर लिखा जाए – जैसे–जाकर, जमकर, हँसकर। 3. चंद्रबिंदु के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाएं – जैसे–हंसना, मां, पहुँचना। 4. प्रदेशों के नाम मिलाकर लिखे जाए – जैसे–उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, अरुणाचलप्रदेश, आंध्रप्रदेश, हिमाचलप्रदेश। 5. बड़े संवाद के लिए दोहरा उद्धरण चिह्न और छोटे उद्धरणों तथा वाक्याशों के लिए एकल उद्धरण चिह्न यथेष्ट है। 6. संस्कृत के शब्दों में जहाँ 'यी' का प्रयोग होता है, वहाँ 'ई' का प्रयोग उचित नहीं, जैसे – स्थायी, अनुयायी। अज्ञेय ऐसे संपादक थे जिन्होंने हर जगह अपने उत्तराधिकारी खुद बनाए। इसीलिए उनके संपादक पद से हटने के बाद भी संबद्ध समाचार पत्र या पत्रिका में उत्तराधिकार का कोई संकट कभी खड़ा नहीं हुआ। 'दिनमान' की अपनी संपादकीय टीम में उन्होंने रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को शामिल किया था। इसीलिए 1969 में अज्ञेय ने 'दिनमान' छोड़ा, उसके बाद भी वह पुराने तेवर के साथ ही निकलता रहा।

सन 1973 में अज्ञेय ने 'प्रतीक' को नए सिरे से निकाला। इस बार उसका नाम 'नया प्रतीक' था। वह मासिक पत्रिका भी नई प्रतिभाओं का खुला मंच बनी। अज्ञेय 1977 के अगस्त में दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संपादक बने और 1979 तक वहाँ रहे। उन्होंने 'नवभारत टाइम्स' को तत्कालीन अँग्रेजी दैनिक पत्रकारिता का विकल्प बनाने की चेष्टा की। यही काम परवर्ती काल में विद्यानिवास मिश्र ने किया। विद्यानिवास मिश्र 1992 से 1994 यानी दो वर्ष तक हिंदी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संपादक थे। उन्होंने दस वर्षों तक मासिक 'साहित्य अमृत' का भी संपादन किया। बड़े मीडिया समूहों द्वारा निकाली गईं 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और 'दिनमान' का हिंदी समाज पर व्यापक सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा था। वे पत्रिकाएँ बंद हो चुकी हैं, ऐसे में मासिक पत्रिका 'अहा जिंदगी' का पिछले तेरह वर्षों से हो रहा नियमित प्रकाशन तात्पर्यपूर्ण है।

भास्कर समूह ने यशवंत व्यास के संपादन में 2004 में मासिक पत्रिका 'अहा जिंदगी' निकाली थी। संप्रति आलोक श्रीवास्तव उसके संपादक हैं। राजकमल प्रकाशन समूह ने 1951 में 'आलोचना' पत्रिका शुरू की थी। शिवदान सिंह चौहान उसके संस्थापक संपादक थे। 'जनयुग' के संपादक रह चुके तथा सहारा के प्रधान संपादकीय सलाहकार रह चुके नामवर सिंह 'आलोचना' के प्रधान संपादक हैं।

संपादन नामवर जी के लिए कविता अथवा आलोचनात्मक निबंध लिखने जैसा सर्जनात्मक कार्य ही रहा है। यही बात राजेंद्र यादव, ज्ञानरंजन तथा कमलेश्वर के लिए भी सही है। राजेंद्र यादव ने 1986 में 'हंस' का संपादन शुरू किया और उसमें छपकर ही उदय प्रकाश, संजीव, शिवमूर्ति, प्रियंवद, सृंजय, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा आदि प्रतिष्ठित हुए। राजेंद्र यादव ने 'हंस' के जरिए दलित और स्त्री विमर्श को आंदोलन के रूप में चलाया और चर्चा के केंद्र में ला खड़ा किया। राजेंद्र यादव के निधन के बाद 'हंस' संजय सहाय के संपादन में निकल रही है। 'पहल' का 108 वाँ अंक जुलाई 2017 में आया है। ज्ञानरंजन उसे 1973 से ही निकाल रहे हैं। कमलेश्वर ने 'सारिका' का संपादन बहुत कुशलता से किया था और उसके माध्यम से हिंदी में समानांतर कहानी आंदोलन का नेतृत्व भी किया था। परवर्ती काल में वे दैनिक भास्कर के संपादकीय सलाहकार भी बने थे। 'अमृत प्रभात' और 'जनसत्ता' के साहित्य संपादक रहे मंगलेश डबराल निकट अतीत तक 'सहारा समय', 'पब्लिक एजेंडा' से जुड़े रहे। इस समय वे 'शुक्रवार' के साहित्य संपादक हैं।

'शुक्रवार' को विष्णु नागर का भी संपादकीय संस्पर्श मिला था। प्रयाग शुक्ल ने 'रंगप्रसंग', पंकज बिष्ट ने 'समयांतर', अखिलेश ने 'तद्भव' और ज्योतिष जोशी ने 'समकालीन कला' को अपनी संपादन दृष्टि से अलग पहचान दी है। प्रभाकर श्रोत्रिय ने 'अक्षरा', 'साक्षात्कार', 'वागर्थ' और 'नया ज्ञानोदय' का संपादन किया और हर जगह अपनी अमिट छाप छोड़ी। 'वागर्थ' पत्रिका 1995 से ही निकल रही है। प्रभाकर श्रोत्रिय, रवींद्र कालिया और एकांत श्रीवास्तव के बाद अब शंभुनाथ उसके संपादक हैं। हरिनारायण के संपादन में मासिक 'कथादेश' 36 वर्षों से निरंतर निकल रही है। देशबंधु समाचार पत्र समूह से मासिक पत्रिका 'अक्षर पर्व' दो दशकों से निरंतर निकल रही है। सर्वमित्रा सुरजन उसकी संपादक हैं। 'अक्षर पर्व' पत्रिका के वर्ष में दो विशेषांक भी निकालते हैं। सितंबर 2017 में प्रेम भारद्वाज के संपादनवाली 'पाखी' के ठीक

नौ साल पूरे हुए। सितंबर 2008 में उसका प्रवेशांक आया था। एक समय 'अब' निकालनेवाले शंकर संप्रति द्विमासिक 'परिकथा' निकाल रहे हैं। विभूतिनारायण राय 'वर्तमान साहित्य' निकाल रहे हैं। हरिशंकर परसाई और कमला प्रसाद के बाद अब राजेंद्र शर्मा के संपादन में 'वसुधा' निकल रही है। इसी कड़ी में 'मधुमती', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'गवेषणा', 'इंद्रप्रस्थ भारती', 'बहुवचन', 'पुस्तक वार्ता', 'आजकल', 'त्रिपथगा', 'भाषा', 'उत्तर प्रदेश', 'पूर्वग्रह', 'समकालीन सृजन', 'संवेद', 'समास', 'समीक्षा', 'बया', 'अपेक्षा', 'कसौटी', 'कल के लिए', 'कथा', 'कथाक्रम', 'समालोचना', 'लमही', 'अभिव्यक्ति', 'संचेतना', 'अभिनव कदम', 'परिवेश', 'साम्य', 'साखी', 'संबोधन', 'पल-प्रतिपल', 'दस्तक', 'पुरुष', 'विपक्ष', 'उद्‌भावना', 'मंतव्य', 'परिवेश', 'दस्तावेज', 'बया', 'स्त्री काल', 'इकाई', 'गल्पभारती', 'संदर्भ', 'परिदृश्य', 'समवेत', 'समिधा', 'विध्वंस,' 'अर्थात', 'धूमकेतु', 'बोध' जैसी पत्रिकाओं का उल्लेख लाजिमी है। पत्रिकाओं की दुनिया में नया चलन ई-पत्रिकाओं और ब्लॉग का है जिसमें बड़ी शीघ्रता से पाठ्य सामग्री सारी दुनिया में पाठकों तक पहुँच जाती है।

सिनेमा और पत्रकारिता का साहित्य में योगदान

सिनेमा और पत्रकारिता का साहित्य में योगदान साहित्य का अर्थ है - सबका कल्याण. सः हितः. यानी ऐसी युक्ति ऐसा नियोजन, ऐसा माध्यम, ऐसी संप्रेरणा जिसके पीछे किसी एक वर्ग-जाति-धर्म-समाज-समूह-संप्रदाय-देश के बजाय समस्त विश्व-समाज के कल्याण की भावना सन्निहित हो. साहित्यकार के पास भरपूर कल्पनाशीलता और विश्वदृष्टि होती है। अपनी नैतिक चेतना से अभिप्रेत, कल्पनाशीलता के सहयोग से वह श्रेयस् के स्थायित्व एवं उसकी सार्वत्रिक व्याप्ति के लिए शब्दों तथा अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों द्वारा प्राणीमात्र के कल्याण का प्रयोजन रचता रहता है। भारत में छपाई मशीन 1674 में ही आ चुकी थी, किंतु अखबार-प्रकाशन के लिए 102 वर्ष का लंबा इंतजार करना पड़ा। 1776 में विलेम बाल्ट नामक अंग्रेज ने ईस्ट इंडिया कंपनी के समाचारों को लोगों तक पहुँचाने के लिए अंग्रेजी में अखबार निकालना आरंभ किया। भारत का पहला समाचारपत्र जिसमें समाचारों की विविधता के साथ स्वतंत्र अभिव्यक्ति को भी महत्त्व दिया गया था। हिंदी के पहले साप्ताहिक 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन 1826 में कलकत्ता की हवेली नंबर 37, आमड़तल्ला

गली, कोलू टोला नामक स्थान से हुआ था। संपादक थे–जुगलकिशोर मुकुल। पहला अंक 30 मई, 1826 को बाजार में पहुँचा। इसके बाद तो वह प्रत्येक मंगलवार को पाठकों के दरवाजे पर दस्तक देने लगा। पत्र के प्रथम अंक से ही पत्रकारिता और हिंदी साहित्य के शाश्वत रिश्ते का संकेत मिलता है।

पत्रकारिता और साहित्य एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों के लिए तथ्य और तत्त्व की जरूरत होती है, जो समाज से ही प्राप्त होते हैं। साहित्यिक पत्रकारिता वास्तविक कथा का एक रूप है, जो कथात्मक तकनीकों और शैलीगत रणनीतियों के साथ तथ्यात्मक रिपोर्टिंग को पारंपरिक रूप से कथा साहित्य से जोड़ती है।

लेखन के इस रूप को कथात्मक पत्रकारिता या नई पत्रकारिता भी कहा जा सकता है। साहित्यिक पत्रकारिता शब्द का उपयोग कभी–कभी रचनात्मक रूप से गैर–काल्पनिक कथाओं के साथ किया जाता है। एंथोलॉजी द लिटररी जर्नलिस्ट्स में, नॉर्मन सिम्स ने लिखा है साहित्यिक पत्रकारिता जटिल, एवं कठिन विषयों में विसर्जन की मांग करती है। विश्व स्तर पर मीडिया पर विज्ञापनों का दबाव बढ़ने के कारण साहित्यिक पत्रकारिता हाशिए पर चली गयी है, जो कि देश और समाज के लिए बेहद निराशाजनक है। हिन्दी में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली गद्य का विकास हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से ही किया। साथ ही दुनियाभर के मुद्दों से पाठकों को परिचित करवाया। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान तिलक और गांधी जी ने प्रतिरोध की पत्रकारिता की, जिसकी वजह से उन्हें जेल जाना पड़ा। उस समय पत्रकारिता ने ही सबसे पहले स्वदेशी और बंगाल विभाजन जैसे ज्वलंत मुद्दों को उठाया था। साहित्यिक पत्रकारिता ही उस समय मुख्य धारा की पत्रकारिता थी।

लेकिन आज हालात एकदम बदल गये हैं। उन्होंने कहा कि साहित्यिक पत्रकारिता ने पत्रकारिता की विश्वसनीयता इतनी मजबूत बना दी थी कि लोग अखबार में लिखी गई खबर को झूठ मानने को तैयार ही नहीं होते थे। बाद के दौर में विज्ञापनों के दबाव के चलते साहित्यिक पत्रकारिता हाशिए पर जाने लगी। साहित्य और पत्रकारिता को सामाजिक मान्यता तभी मिलती है, जब वह समाज के विभिन्न वर्गों में समन्वय और सद्भाव की बात करे। नैतिक मूल्यों से आबद्ध साहित्यकार और पत्रकार केवल प्रचार अथवा सत्ताप्राप्ति की लालसा में ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकता जो मानवादर्शों के विपरीत हो। अपनी व्याप्ति को व्यापक, स्थायी एवं संग्रहणीय बनाने के लिए साहित्य रसज्ञता का गुण रखता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ही आगे चलकर हरिश्चंद्र मैग्जीन, बाला बोधिनी, हरिश्चंद्र चंद्रिका पत्रिकाएं निकालीं। उनसे प्रेरणा लेकर अन्य पत्रकारों-साहित्यकारों ने भी समाचारपत्र-पत्रिकाओं के संपादन-प्रकाशन का दायित्वभार संभाला। हिंदी के कुछ प्रमुख आरंभिक पत्र, पत्रिकाओं में हिंदी प्रदीप (बालकृष्ण भट्ट), आनंद कादंबिनी (चौधरी बद्रीनारायण प्रेमधन), ब्राह्मण (प्रतापनारायण मिश्र), भारत मित्र (रुद्रदत्त शर्मा), सरस्वती (महावीर प्रसाद द्विवेदी) आदि प्रमुख हैं। इसके बाद तो उनकी बाढ़-सी आ गई. काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के प्रबंधन में- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, विशाल भारत, चांद, मतवाला, इंदु, माधुरी, हंस, सरस्वती आदि पत्रिकाएं हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार का आधार बन गईं। यह सिलसिला लगातार आगे, देश के दूसरे हिस्सों में भी फैलता चला गया।

सिम्स के अनुसार, कुछ लचीले नियम और सामान्य विशेषताएं साहित्यिक पत्रकारिता को परिभाषित करती हैं। 'साहित्यिक पत्रकारिता की साझा विशेषताओं में विसर्जन रिपोर्टिंग, जटिल संरचनाएं, चरित्र विकास, प्रतीकवाद, आवाज, सामान्य लोगों पर ध्यान केंद्रित करना और सटीकता प्रमुख हैं।'

साहित्यक पत्रकारिता की कुछ विशिष्टताएँ निम्नांकित हैं–

- साहित्य के पत्रकार खुद को विषयों की दुनिया में डुबो देते हैं ...
- साहित्यिक पत्रकार सटीकता और स्पष्टवादिता के बारे से कथा का वर्णन करते हैं।
- साहित्यिक पत्रकार ज्यादातर नियमित घटनाओं के बारे में लिखते हैं।
- साहित्यिक पत्रकार पाठकों की क्रमिक प्रतिक्रियाओं से अर्थ विकसित करते हैं।

साहित्यिक पत्रकारों को जटिल चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उन्हें तथ्यों को वर्तमान घटनाओं के आधार पर वर्णित कर उन्हें इस तरह पेश करना पड़ता है, जो संस्कृति, राजनीति और जीवन के अन्य प्रमुख पहलुओं के बारे में बहुत बड़ी तस्वीर के सच को बयां करती हैं। साहित्यिक पत्रकार, को अन्य पत्रकारों की तुलना में प्रामाणिकता से अधिक बंधा हुआ रहना पड़ता है।

भूमंडलीकरण और उपभोक्तावाद के आने के बाद से मीडिया में अपराध, सेक्स और दुर्घटनाओं की खबरों को ज्यादा महत्त्व दिया जाने लगा है। इसका कारण यह है कि इसे साधारण पाठक भी सरलता से समझ लेता है, जबकि साहित्यिक पत्रकारिता को समझने में उसे कुछ मुश्किल आती है। लेकिन महत्त्वपूर्ण यह है कि संपादकीय और साहित्यिक पृष्ठ पढ़ने वाले 10-12

प्रतिशत पाठक ही समाज का नेतृत्व करते हैं। इसलिए संचार माध्यमों में साहित्यिक और वैचारिक सामग्री को रोका नहीं जा सकता है। मुक्त अर्थव्यवस्था आने के बाद से मीडिया में संपादक की जगह ब्रांड मैनेजर लेने लगे। ये मैनेजर अखबार को ऐसा उत्पाद बनाने लगे जिसे विशाल जनसमूह खरीदे। इस वजह से साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्श हाशिए पर चले गए। समाज बदल गया है, इसलिए पत्रकारिता भी बदली है।

हमें साहित्य और पत्रकारिता में एक सामंजस्य बनाना होगा। साहित्य को पत्रकारिता में संस्कार भरने का काम करना चाहिए और पत्रकारिता को साहित्य को लोकप्रिय बनाने में योगदान देना चाहिए। हिंदी साहित्य को जिंदा रखने में पत्रिकाओं का बहुत योगदान है। धर्मयुग साप्ताहिक पत्रिका थी। यह पत्रिका 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ग्रुप द्वारा मुंबई से प्रकाशित होती थी। यह पत्रिका 1949 से लेकर 1993 तक प्रकाशित हुई थी। अपने दौर में यह पत्रिका पत्रकारिता और साहित्य में रुचि रखने वालों की अलख को जिंदा रखने का काम बखूबी करती थी। दूसरी पत्रिका हंस थी जो हिंदी साहित्य के रत्न कहे जाने वाले 'मुंशी प्रेमचंद' ने इस पत्रिका को प्रकाशित किया था। इस पत्रिका के संपादक मंडल में महात्मा गांधी भी रह चुके हैं। साहित्यकार राजेंद्र यादव ने प्रेमचंद के जन्मदिन के दिन ही 31 जुलाई 1986 को अक्षर प्रकाशन के तले इस पत्रिका को पुनः शुरू किया था। हिंदी साहित्य में 'आलोचना' को स्थापित करने का श्रेय नामवर सिंह को जाता है। आपको बता दें कि 'आलोचना' एक त्रैमासिक पत्रिका है एवं इसके प्रधान संपादक नामवर सिंह थे।

इसका संपादन अरुण कमल संभाल रहे हैं। यह पत्रिका हिंदी साहित्य में आलोचना को जिंदा रखे हुए है। अगस्त 2015 में नया ज्ञानोदय पत्रिका का 150वां अंक आया था। यह साहित्यक पत्रिका नई दिल्ली के भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित की जाती है। पहले इसका संपादन साहित्यकार रवीन्द्र कालिया देखते थे लेकिन उनके इंतकाल के बाद लीलाधर मंडलोई इसके संपादन का कार्यभार संभाल रहे हैं। 'पाखी 'यह मासिक पत्रिका है। इसके संपादक प्रेम भारद्वाज हैं। सिंतबर 2008 से इसका प्रकाशन शुरू हुआ था। इसका लोकार्पण नामवर सिंह ने किया था। अहा! जिंदगी यह पत्रिका साहित्य, सिनेमा, संस्कृति और कला के अन्य आयामों को थामे चल रही है। यह पत्रिका दैनिक भास्कर समूह द्वारा प्रकाशित की जाती है। आलोक श्रीवास्तव इसके संपादक हैं। जानेमाने पत्रकार एवं कवि मंगलेश डबराल का कहना था कि पत्रकारिता इतिहास का

पहला ड्राफ्ट होती है और साहित्यिक रचना अंतिम ड्राफ्ट होती है। उन्होंने कहा कि इलेक्ट्रानिक मीडिया में हत्या, बलात्कार, आपदा और झगड़े की खबरें भी मनोरंजन बन गई हैं। हिंदी पत्रकारिता हिंदी साहित्य से ही निकली है। भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर रघुवीर सहाय तक साहित्यकारों ने इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान किया। हिन्दी के जाने-माने कवि लीलाधर जगूड़ी ने कहा कि केवल बाजार को कोसने से कुछ नहीं होगा। बाजार तो हजारों वर्षों से हमारी संस्कृति का अंग रहा है। यह भी सच है कि वैश्विक बाजार से हमारे स्थानीय बाजार को पंख लगे हैं। इसलिए बाजार का नहीं, अनैतिक बाजार का विरोध होना चाहिए।

सिनेमा

सिनेमा एक नवसृजित कला है, इसने रंगमंच और साहित्य की पिछली पीढ़ियों से अपने सबसे कमजोर वर्षों में सफलता पाई है। विश्व में कई संस्कृतियाँ और महाद्वीप हैं, जिसमें बहुपक्षीय दर्शन और बेतहाशा असंगत धर्मशास्त्र समृद्ध और उपजाऊ मिट्टी है, जिसमें सिनेमा ने अपनी जड़ें जमायी हैं और हमेशा फलता-फूलता रहा है क्योंकि इसने सदियों से साहित्य का सहारा लिया है। साहित्य और सिनेमा में एक चीज साझी है। दोनों एक स्तर पर वृतांतपरक कला-रूप हैं। जहाँ तक सिनेमा की बात की जाए, लक्षण विज्ञान में काफी विशेषीकृत भाषा को ईजाद किया गया है।

सिनेमा की स्थापना के बाद से, साहित्य ने सभी रचनात्मक फिल्म निर्माताओं को आकर्षित किया है। भारत में, प्रमथेश बरुआ और देबकी बसु जैसे अग्रणियों फिल्म निर्माताओं ने अपनी फिल्मों को शरत चटर्जी जैसे लेखकों के काम पर आधारित किया है। सत्यजीत रे की फिल्म पाथेर पांचाली, जिसने पहली बार भारतीय सिनेमा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति दिलाई थी, प्रसिद्ध साहित्यकार, विभूति भूषण बंदोपाध्याय द्वारा, साहित्य के महान कार्य पर आधारित थी।

दुनिया भर में प्रख्यात निर्देशक अभी भी शेक्सपियर, डिकेंस और हेमिंग्वे के कार्यों पर आधारित फिल्में बना रहे हैं। इससे यह बात साबित होती है, कि फिल्म निर्माताओं के लिए अनूठा आकर्षण साहित्य ही है। सिनेमा का साहित्य से अटूट रिश्ता रहा है। लगभग दुनिया भर में सबसे लोकप्रिय फिल्मों में से आधी फिल्में साहित्य के आधार पर ही लोकप्रिय हुई हैं। इसी प्रकार हम ऐसे लेखकों का नाम ले सकते हैं कि जिन्होंने दुनिया भर में प्रसिद्ध होने के साथ-साथ फिल्म

निर्माताओं का ध्यान अपनी ओर खींचा है। जैसे कि विलियम शेक्सपीयर, चार्ल्ज डिकेंस और एलेक्जैंडर डूमाज का नाम लिया जा सकता है। इसके अलावा अनेक दूसरे स्क्रिप्ट राइटरों के नाम लिए जा सकते हैं, जिन्होंने प्रसिद्ध और लोकप्रिय फिल्में दीं।

1900 के दशक की शुरुआत में सिनेमा के आगमन ने, फिल्म और साहित्य के बीच तेजी से जुड़ाव पैदा किया। दोनों माध्यमों का संगम विशेष रूप से 1930 के दशक के प्रारंभ में महत्त्वपूर्ण हो गया, यह एक ऐसी अवधि थी जिसे अक्सर क्लासिक सिनेमाई काल कहा जाता है। यद्यपि फिल्मों और साहित्य के बीच संबंध काफी हद तक फायदेमंद रहा है। हाल के वर्षों में, साहित्य और सिनेमा के बीच टाई में एक गहन और निरंतर पुनरुद्धार देखा गया है, लेकिन आलोचकों और समीक्षकों के बीच फिक्शन के ग्रंथों से फिल्म रूपांतरण की विश्वसनीयता कमजोर हुई है। कुछ महत्त्वपूर्ण हिंदी फिल्म जो साहित्यिक कृतियों पर आधारित हैं उनका विवरण निम्नानुसार है –

(1) विजयराम तेंदुलकर के इसी नाम के मराठी नाटक पर आधारित घासीराम कोतवाल (मणि कौल, 1976)। (2) रवीन्द्रनाथ टैगोर के इसी नाम के एक उपन्यास पर आधारित 'चार अध्याय ' (कुमार शाहनी, 1997)। (3) सुबोध घोष की जोतु गृह पर आधारित 'इज्जत ' (गुलजार, 1987)। (4) रस्किन बॉन्ड के नॉवेल ए फ्लाइट ऑफ पीजन्स पर आधारित 'जूनून' (श्याम बेनेगल, 1978)। (5) रबींद्रनाथ टैगोर की इसी नाम की लघु कथा पर आधारित 'कबाली' (तपन सिन्हा, 1965)। (6) हिंदी लेखक मोहन राकेश के नाटक आषाढ़ का दिन पर आधारित वन मानसून डे (मणि कौल, 1991) (7) इडीयट (मणि कौल, 1991) फ्योदोर दोस्तोयेव्स्की के 1869 के उपन्यास पर आधारित है। (8) सारा आकाश (बसु चटर्जी, 1969) हिंदी लेखक रंजेंद्र यादव के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित है। (9) शरत चंद्र चट्टोपाध्याय के इसी नाम (1914) के उपन्यास पर आधारित 'परनीता '(पशुपति चटर्जी, 1942य बिमल रॉय, 1953य अजॉय कुमार, 1969)। (10) संस्कार (पट्टाभि राम रेड्डी, 1970) यू.आर. अनंतमूर्ति के एक उपन्यास पर आधारित है।। (11) उर्दू पत्रों की महिला उर्दू लेखक इस्मत चुगताई द्वारा इसी नाम की एक छोटी कहानी पर आधारित' जिद्दी' (शहीद लतीफ, 1948)। (12) सुबोध घोष की एक छोटी कहानी पर आधारित सुजाता (बिमल रॉय, 1959)। (13) एक ही नाम (1936) के मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास पर आधारित एक गाय (एक त्रिलोक

जेटली, 1962) का गोदान एके। (14) यूटीएसएवी (गिरीश कर्नाड, 1984) सुद्रका के संस्कृत नाटक मृच्छकटिकम पर आधारित है। (15) शरत चंद्र चटर्जी (1914) के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित विराज बहु (बिमल रॉय, 1954) (16) समकालीन हिंदी लेखक प्रियंवद की एक छोटी सी कहानी पर आधारित, खरगोश द रेबिट (परेश कामदार, 2009)। (17) 15 वीं सदी के हिंदी कवि कबीरदास की आधुनिक भारत में विरासत पर 4 वृत्तचित्रों की एक शृंखला, कबीर (शबनम विरमानी) के साथ चार्लीज। वृत्तचित्र हैं– हद-आहदय चलो हमरा देशय कबीरा खाड़ा बाजार में और कोई सुनता है। (18) सैमुअल बेकेट के कम एंड गो पर आधारित एन्ड नॉट एक अंतराल (आशीष अविकुंठक, 2005)। (19) निराकार छाया फॉर्म लेस शेडो (आशीष अविकुंथक, 2007), मलयालम लेखक सेतुमाधवन के उपन्यास पांडवपुरम से प्रेरित है।

कुछ लेखक जिनके काम पर भारतीय निर्देशकों ने काम किया है–

रबीन्द्रनाथ बाघ (1861-1941)–चारुलता, घर और दुनिया विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय (1894-1950)–अपू त्रयी, दूर थंडर एके अशानी साकेत सरत चंद्रा चेटर्जी (1876-1938)–देवदास, परिणीता, बिराज बहु ...विनोद कुमार शुक्ल (ठ. 1937): द सर्वेंट शर्ट एक नौकर की कमीज (1979) की लेखक और अमित दत्ता की फिल्म आदमी और औरत (ट्री ऑन द मैन द वुमन) की दो लघु कथाएँ। विनोद कुमार शुक्ला के उपन्यास द सेवर्स शर्ट। धर्मवीर भारती (1926-1997): सूर्य का सातवां घोड़ा मोहन राकेश (1925-1972)–हमारी रोजी रोटी एक उसकी रोटी, वन मॉनसून डे आषाढ़ का एक दिन (1958) निर्मल वर्मा (1929-2005)–द मिरर ऑफ इल्यूजन माया दर्पन गजानन माधव मुक्तिबोध (1917-1964)–मणि कौल का धरातल से उठना उनके लेखन पर आधारित है।

डेटाबेस में फिल्में और लेखक जिनके काम इन पर आधारित हैं–

(1) हिंदी लेखक मोहन राकेश की इसी कहानी की लघु कथा पर आधारित। (उसकी रोटी) (मणि कौल, 1970)। (2) (आदमी की औरत और अन्य कहानियाँ) द मैन वोमन एंड अदर स्टोर्स (अमित दत्ता, 2009), छोटी कहानियों के आधार पर–रूम ऑन द ट्री (प्रति परि कामरा, 1988) और द मैन ऑफ द मैन हिंदी लेखक विनोद कुमार शुक्ला द्वारा महिला (आधार की और, 1996), उर्दू लेखक सआदत हसन मंटो द्वारा 200 वाट्स का एक बल्ब। (3) निर्मल वर्मा के इसी नाम की लघु कहानी पर आधारित (माया दर्पण) मिरर

ऑफ इलूजन (कुमार शाहनी, 1972)। (4) विभूतिभूषण के उपन्यास पर आधारित रोड (सत्यजीत रे, 1955) का गीत पार्थ पंचाल (5) अपराजितो ए के विभूति (सत्यजीत रे, 1956) विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय के उपन्यास पर आधारित है। (6) ए पीआर संसार उर्फ द वर्ल्ड ऑफ ए पी यू (सत्यजीत रे, 1969) विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय के उपन्यास पर आधारित है। (7) विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय के उपन्यास पर आधारित डस्टेन थंडर (सत्यजीत रे, 1972)। (8) ताराशंकर बनर्जी के एक उपन्यास पर आधारित जालसाज (सत्यजीत रे, 1958)। रवींद्रनाथ टैगोर के उपन्यास नस्तनिरह (1901) पर आधारित चार्लीटा एके द लॉनी वाइफ (सत्यजीत रे, 1964)। (11) (शतरंज के खिलाड़ी) (सत्यजीत रे 1977) को हिंदी लेखक मुंशी प्रेमचंद की इसी नाम की लघु कहानी से रूपांतरित किया गया। (12)। (सतह से उठता आदमी) राइजिंग फ्रॉम सरफेस (मणि कौल, 1980) हिंदी लेखक मुक्तिबोध के लेखन पर आधारित है। (13) हिंदी लेखक धर्मबीर भारती के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित सूर्या का सेवन घोडा (सूरज का सातवाँ घोड़ा) द सेवंथ हार्स ऑफ द सन (श्याम बेनेगल, 1993)। (14) एंटोन चेखव द्वारा लघु कहानी इन द गुली पर आधारित कस्बा (कुमार शाहनी, 1991) प्रमुख हैं।

हालाँकि चिंतक, लेखक और आलोचक हिंदी सिनेमा को साहित्य का हिस्सा मानने से हमेशा हिचकते रहें हैं। बॉलीवुड के सिनेमा को कलात्मक सम्मान के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है और इसने अब भी दुनिया के सामने अपनी सौंदर्यशास्त्रीय क्षमता का प्रदर्शन नहीं किया है। यह ऐसे विचलन का संकेत देता है, जो वास्तव में उपयोग और रूपांतरण की प्रक्रिया के मिलावट तक जा पहुँचने की दास्तान बयान करता है। कलात्मक और रचनात्मक रूप से दीवालिया बॉलीवुड ने कई रूपांतरणों में अपना हाथ आजमाया है, लेकिन वे आखिरकार सिर्फ मिलावट ही साबित हुए हैं। भारतीय सिनेमा निश्चय ही हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में अपनी विश्वव्यापी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। उनकी यह प्रक्रिया अत्यंत सहज, बोधगम्य, रोचक, संप्रेषणीय और ग्राह्य है। हिन्दी यहाँ भाषा, साहित्य और जाति तीनों अर्थों में ली जा सकती है। जब हम भारतीय सिनेमा पर दृष्टिपात करते हैं तो भाषा का प्रचार-प्रसार, साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रूपांतरण, हिंदी गीतों की लोकप्रियता, हिन्दी की उपभाषाओं, बोलियों का सिनेमा और सांस्कृतिक एवं जातीय प्रश्नों को उभारने में भारतीय सिनेमा का योगदान जैसे मुद्दे महत्त्वपूर्ण ढंग से सामने आते हैं।

साहित्यिक पत्रकारिता के नए आयाम

साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता में थीम का महत्त्वपूर्ण होना स्वयं में समस्यामूलक है। हिन्दी की अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं ने फासीवाद, प्रेम, बेबफाई, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, भूमंडलीकरण आदि पर विशेषांक निकाले हैं। इन सभी विशेषांकों का एक ही साझा संदेश है कि हम विषय के बारे में, अपने बारे में कितना जानते हैं। इससे थीम केन्द्र में आई है और व्यक्ति का स्थानान्तरण हुआ है।

थीम के हिमायती भूल गए हैं कि साहित्य का थीम के आधार पर प्रसार नहीं होता। इससे अनुकरण, पैरोडी और साहित्यानुकरण होता है।

एक पत्रिका ने युवा रचनाकार विशेषांक निकाला तो बाकी पत्रिकाएं अनुकरण करके युवा लेखन पर विशेषांक निकाल रही हैं। किसी ने स्त्री या दलित पर विशेषांक निकाला तो बाकी पत्रिकाएं उससे बेहतर विशेषांक निकाल रही हैं। इस विशेषांक संस्कृति ने थीम को प्रतिष्ठित किया है विषय और व्यक्ति को अपदस्थ किया है। साहित्य में इस बहाने व्यक्ति का बहिष्कार हुआ है। विषय का अंत हुआ है।

पहले साहित्य और साहित्यिक पत्रिकाओं में लेखक के विजडम और मासकल्चर के रूपों पर जोर था। इन दिनों साहित्य में आकर्षक, इकसार और रूढ़िबद्ध विषयों का महिमामंडन चल रहा है।

मसलन् यदि किसी दलित ने एक खास अंदाज में अपनी आत्मकथा में कुछ खास पक्षों को उठाया है तो हठात् दलित आत्मकथाओं में मिलते –जुलते चित्रों की बाढ़ आ गयी है। दलित और स्त्री आत्मकथाओं में एक खास किस्म का अंधानुकरण साफतौर पर देख सकते हैं। एक जमाना था साहित्य में विषय की विशिष्टता थी। विशिष्टता की जगह इन दिनों अंधानुकरण हो रहा है।

विषय से लेकर समस्या के ट्रीटमेंट तक इकसारता के कारण साहित्य से व्यक्ति की विदाई और विशिष्टता का अंत हो गया है। पहले पाठ का संबंध ऑब्जेक्ट के साथ था इन दिनों ऑब्जेक्ट की जगह फैशन ने ले ली है। थीम ने ले ली है। इन दिनों साहित्य थीम से थीम की ओर बढ़ रहा है। थीम से पैदा होने वाला साहित्य स्टीरियोटाईप और बोगस होता है चाहे उसे कितने ही बड़े लेखक ने लिखा हो। साहित्य का आधार अब जीवन नहीं थीम है और यही वह बिंदु है जहां साहित्य का अंत हो जाता है। दूसरी प्रवृत्ति निर्धारणवाद की है। इसमें

स्त्री, युवा, दलित आदि को निर्धारणवादी ढंग से पेश किया जा रहा है। अब कोई भी रचना मर्दवाद के आतंक-उत्पीड़न, वर्णाश्रम व्यवस्था के उत्पीड़न, भूमंडलीकरण के उत्पीड़न के बिना नहीं लिखी जा रही।

साहित्य को 'स्पेस' के संदर्भ में देखें तो ऐसी रचनाएं ज्यादा आ रही हैं जिनमें 'घर' का चित्रण ज्यादा है। व्यक्तिगत, करीबी बातों और लोगों का चित्रण ज्यादा हो रहा है। अब ऐसी रचनाएं कम लिखी जा रही हैं जिनमें सार्वजनिक स्पेस हो। साहित्य की स्टाईल की बजाय खास अंचल या भौगोलिक क्षेत्र पर बातें हो रही हैं। एक जमाना था हिन्दी में लेखकगण समय पर बातें करते थे, युग पर बातें करते थे, अब समय को स्थान ने अपदस्थ कर दिया है। स्पेस का विकृतिकरण हो रहा है। इसे घर, बाहर, शहर, कामकाजी स्थान आदि के संदर्भ में देख सकते हैं।

स्त्री और दलित पर लिखी रचनाओं में स्टाइल के रूपों में पुरानी पितृसत्तात्मक अभिव्यक्ति शैली को चुनौती दी जा रही है। पुरानी पितृसत्तात्मक शैली और नयी शैली में क्या अंतर है। इस पर बातें नहीं हो रही हैं। इसी तरह दलित लेखन में कामुकता और वर्चस्व की स्मृतियों की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है। उनके विभिन्न आख्यान या रूपक सामने आए हैं।

कामुकता और वर्चस्व की स्मृतियों का आना इस बात का संकेत है कि हमारा लेखक मीडिया इमेजों से गहरे प्रभावित है। मीडिया इमेजों के प्रभाव के कारण ही स्मृतियों को साहित्य में अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है। स्मृतियों का साहित्य मीठा होता है और उसकी खपत आसानी से हो जाती है। साहित्य में चीजों को माल बनाकर पेश करने की प्रवृत्ति ने उसकी खपत बढ़ा दी है। इस क्रम में संस्कृति और यथार्थ का अंतर मिटा है।

खासकर स्त्री और दलित केन्द्रित आत्मकथाओं में यथार्थ और संस्कृति का अंतर खत्म हो गया है। इन आत्मकथाओं के जरिए स्त्री के यथार्थ की बजाय संस्कृति पर ज्यादा बातें हो रही हैं। चित्रण में भी यथार्थ गौण है संस्कृति प्रमुख है। साहित्य के चित्रण में यथार्थ की जगह संस्कृति और विचार विशेष का आना और यथार्थ का गायब हो जाना साहित्य के वस्तुकरण की प्रक्रिया को सामने लाता है। इस तरह के साहित्य की रूपान्तरणकारी भूमिका नहीं होती। वह बिकता ज्यादा है, उसकी खपत ज्यादा होती है, वह आलोचनात्मक नजरिए से रहित होता है। साहित्य का वस्तुकरण वस्तुतः परवर्ती पूंजीवाद के सास्कृतिक तर्कों की विजय है।

फ्रेडरिक जेम्सन ने लिखा है कि नए युग की विशेषता है कि हमारे कानों में इतिहास का आवाजें आनी बंद हो जाती हैं। इतिहास के प्रति बहरापन एक सामान्य फिनोमिना है। नए युग का विचारशास्त्र संस्कृति में सत्य की खोज कर रहा है। संस्कृति के परे सत्य के किसी भी आयाम को ये लोग नोटिस ही नहीं लेते।

सार्वजनिक इतिहास से हमारा संबंध कमजोर हुआ है और नए किस्म की निजी सामयिकता से उसे जोड़ दिया गया है। इसके कारण एक खास किस्म की उन्मादी भाषा का प्रयोग हो रहा है। साहित्य और मीडिया में शुद्ध भौतिक अनुभवों को उभारा जा रहा है। साहित्य में दैनन्दिन जीवन के सतही मनो अनुभवों और स्पेस केन्द्रित सांस्कृतिक भाषा के वैविध्यपूर्ण चित्रों की बाढ़ आयी हुई। बैचैनी के चित्र यथार्थ के बिना आ रहे हैं। नई संचार तकनीक का साहित्य पर गहरा असर हुआ है। नई तकनीक पुनर्उत्पादन की तकनीक है। फलतः साहित्य सृजन कम और उसका पुनर्उत्पादन ज्यादा हो रहा है।

उत्तर आधुनिक अवस्था में 'साहित्य के अंत' की भी घोषणा की गई है। इसका वास्तव में क्या अर्थ है इस ओर हमारे समीक्षकों ने कभी गंभीरता से ध्यान नहीं दिया। लेकिन एक परिवर्तन आया है साहित्य को विधाओं में वर्गीकृत करके पढ़ने की परंपरा का अंत हुआ है। साहित्य के पुराने वर्गीकरण और मानक अप्रासंगिक हो गए हैं।

मसलन् एक जमाना था साहित्य की कोटि में अखबार का लेखन नहीं आता था। लेकिन इधर यह नहीं कह सकते। सवाल उठता है स्व. प्रभाष जोशी का हिन्दी गद्य साहित्य का हिस्सा है या नहीं ? इसी तरह बड़े पैमाने पर साहित्येतर समस्याओं पर हिन्दी में लिखा जा रहा है वह साहित्य का हिस्सा है या नहीं ? विधाओं के दायरे भी टूट रहे हैं, साहित्य में आए दिन नई विधाएं जन्म ले रही हैं। कल तक जिस लेखन को विधा नहीं मानते थे उसे अब विधा मानते हैं।

मसलन, निजी पत्र साहित्य का हिस्सा नहीं थे। लेकिन रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' में पत्रों का इस्तेमाल किया और पत्रों का ही एक खण्ड बना दिया। अपनी आत्मकथा में भी उन्होंने यही पद्धति अपनायी। इसी तरह नवजागरण संबंधी बहस में भी उन्होंने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' नामक किताब लिखकर बड़े पैमाने पर साहित्येतर विषयों को साहित्य बना दिया। यही काम अपने तरीके से नामवर सिंह ने आलोचना पत्रिका

के पुनर्प्रकाशन के साथ किया और उन्होंने आलोचना का फासीवाद विरोधी विशेषांक निकाला। कहने का तात्पर्य है कि साहित्य अब पुराने अर्थ को त्याग चुका है। नए रूप में साहित्य को लेखन के नाम से जाना जाता है। इसमें अब साहित्य और साहित्येतर का भेद नहीं रह गया है। विधाओं का वर्गीकरण नहीं रह गया है। विधाओं का भी लेखन की अवधारणा में विलय हो चुका है। अब सब कुछ लेखन है।

पहले साहित्य की सीमाएं थीं आज साहित्य की कोई सीमा नहीं है। अब साहित्य में सब कुछ शामिल है। साहित्य में यह परिवर्तन नयी संचार तकनीक आने के साथ आया है। कम्प्यूटर के आने साथ आया है। जिस तरह कम्प्यूटर में उससे पहले के सभी माध्यमों का विलय हो गया है, कनवर्जन हो गया। ठीक वैसे ही लेखन में सब विधाओं का विलय हो गया है। पहले रचना का एक ही अर्थ होता था ,यही कहा जाता था लेखक का काम है सत्य की खोज करना। लेकिन अब किसी भी रचना का एक अर्थ नहीं है। बल्कि अनेक अर्थों की चर्चा हो रही है। एक सत्य की नहीं एकाधिक सत्य की चर्चा हो रही है। एक व्याख्या नहीं व्याख्याओं का अनंत आकाश खुल गया है। इस पूरी प्रक्रिया में आलोचना, सत्य, व्याख्या आदि के संदर्भ में 'सापेक्षतावाद' घुस आया है। अब हम सापेक्ष रूप में विचार करते हैं। सत्य, कथ्य और व्याख्या की एकाधिक अस्मिताओं पर जोर दिया जा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो पुराने साहित्य की धारणा का अंत हो गया है।

'साहित्य के अंत' की प्रक्रिया में 'साहित्य' पर नहीं ,साहित्य के सवालों पर बहस हो रही है। 'साहित्य' पर जब बातें कर रहे थे तो साहित्य समीक्षा के आधार पर लगातार कृति का विवेचन कर रहे थे, समीक्षा या आलोचना का विकास कर रहे थे। साहित्य के नियमों को लागू करते हुए बता रहे थे कि साहित्य की सीमा क्या है और रचना में साहित्येतर क्या है ? साहित्य को साहित्येतर से दूर रखने में आलोचना मदद कर रही थी। लेकिन अब ऐसा नहीं हो रहा।

हमारे साहित्यिक बंधु साहित्य के सवालों पर चर्चा करते हुए साहित्यालोचना के दायरे के बाहर चले गए हैं। अब साहित्य और साहित्येतर का विभाजन खत्म हो गया है। यह विभाजन और किसी ने नहीं साहित्य के दो महान आलोचकों रामविलास शर्मा और नामवर सिंह ने किया है। जब आप साहित्य की बजाय साहित्य के सवालों पर चर्चा रहे होते हैं तो साहित्य की सीमाओं को खत्म करते

हैं। इस क्रम में साहित्य की अपनी कोई निजी पहचान नहीं रह जाती। अब तक यह कहा जाता था कि साहित्य की अपनी पहचान या अस्मिता होती है। लेकिन यह पहचान अब खत्म हो गयी है। अब हम नहीं जानते कि साहित्य की अस्मिता क्या है ? पहचान क्या है ? यही वह जगह है जहां पर साहित्यालोचना की जगह साहित्य सैद्धांतिकी आ गयी है। अब ज्यादा से ज्यादा साहित्यालोचना नहीं साहित्य की थ्योरी के आधार पर चर्चाएं हो रही हैं।

पहले 'आलोचना' लिखी जाती थी अब 'परिप्रेक्ष्य' की बातें हो रही हैं। आलोचना को परिप्रेक्ष्य ने अपदस्थ कर दिया है। इसका गहरा असर हुआ है। अब साहित्य में अनेक परिप्रेक्ष्यों के आधार पर मूल्यांकन किया जा रहा है। जैसे मार्क्सवाद, संरचनावाद, उत्तर आधुनिकतावाद, स्त्रीवाद आदि।

मजेदार बात यह है कि हिन्दी में आलोचना के मसलों को पूरी तरह दुरूस्त भी नहीं कर पाए थे कि अचानक आलोचना को परिप्रेक्ष्य ने अपदस्थ कर दिया। अब परिप्रेक्ष्य के आधार पर साहित्य में व्यक्त सत्य को तय किया जा रहा है। परिप्रेक्ष्य अलग हैं तो सत्य भी भिन्न होगा। इसके कारण दुनिया भी अलग दिखाई देगी। दुनिया का अलग-अलग हिस्सा दिखाई देगा।

मसलन् स्त्रीवादी और मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य को ही लें, इसके मानने वाले 'लिंग' और 'वर्ग' के अलावा और किसी भी बात पर ध्यान नहीं देते। वे अन्य पक्षों की अनदेखी करते हैं। व्यवस्था में 'लिंग' और 'वर्ग' के अलावा भी चीजें हैं जिन्हें हमें देखना चाहिए। वे साहित्य को 'लिंग' और 'वर्ग' के सीमित दायरे में रखकर देखते हैं, साहित्य का दायरा बहुत बड़ा है, स्त्री साहित्य और मार्क्सवादी साहित्य या दलित साहित्य के दायरे की तुलना में। फलतः साहित्य में टुकड़ों या अंशों पर बातें हो रही हैं, समग्रता में साहित्य पर बातें नहीं हो रहीं। इसी अर्थ में साहित्य का अंत हुआ है।

परिप्रेक्ष्य में देखने की यह खूबी काफी पहले से चली आ रही है इसमें उत्तर आधुनिकतावाद के आने से मामला दूसरी दिशा में चला गया है। जितने भी परिप्रेक्ष्य प्रचलन में हैं उनमें राजनीति गहरे समायी हुई है। राजनीति के बिना इन पर बातें करना संभव नहीं है।

इस समूची प्रक्रिया का साहित्य के पठन-पाठन पर भी गहरा असर हुआ है। अब साहित्य के विभाग नहीं होते, बल्कि उनकी जगह साहित्यिक अध्ययन के विभाग होते हैं। साहित्यिक अध्ययन विभाग बनते ही अनुसंधान और अध्ययन के क्षेत्र में हिंसा, दमन, उत्पीड़न, विभाजन आदि राजनीतिक केटेगरी का

अध्ययन प्रमुख हो गया है। अब कोई शोध ऐसा नहीं होता जिसका ठोस आधार राजनीति न हो। अब प्रत्येक निर्णय राजनीतिक आधारों पर हो रहा है। राजनीतिक आधार पर सोचने का परिणाम निकला है कि अब कोई चीज निश्चित नहीं है। टिकाऊ नहीं है। राजनीति के अलावा अन्य पहलुओं को छिपाया जा रहा है।

जब कोई चीज निश्चित नहीं है तो अब अनुमानाधारित दर्शन, काल्पनिक साहित्य और रेडिकल गणित पर जोर दिया जा रहा है और इसी क्रम में गेम या खेल की सैद्धांतिकी सामने आई है।

गेम थ्योरी के आधार पर खास सीमा के बाद ज्ञान, विचार, अनुभव आदि को ठेल दिया जाता है। लेकिन राजनीतिक एक्शन को लक्ष्य से नहीं हटाया जा सकता। चूंकि चीजें राजनीति से जुड़ी हैं अतः संदर्भ को वास्तव होना चाहिए। बिना वास्तव संदर्भ के राजनीति की व्याख्या संभव नहीं होती। इस क्रम में वास्तव पर संदेह नहीं किया जा सकता। अथवा यह भी कह सकते हैं कि कुछ सवाल उठाए ही नहीं जा रहे। ऐसी स्थिति में जो भी मूल्यांकन करेंगे उसके लिए वास्तव के बाहर जाने की जरूरत पड़ेगी।

हमें चलताऊ तुलनाओं, प्रतिगामी उपेक्षाभाव, अतार्किकता, सांस्थानिकता, बौद्धिकता विरोध, अराजनीति आदि से बचना होगा। वास्तव पर निर्भर आलोचना लिखेंगे तो राजनीति और स्कॉलरशिप दोनों में संतुलन बना रहेगा।

पत्रकार और साहित्यकार का परस्पर संबंध

साहित्यकार और पत्रकार का चोली-दामन का साथ है। दोनों ही सम सामयिक समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी लेखनी के माध्यम से समाज हित में सामाजिक मूल्यों और सम्वेदनाओं को दृष्टि प्रदान करते हैं।

साहित्य और पत्रकारिता के बीच अटूट रिश्ता रहा है। एक जमाना था जब इन दोनों को एक-दूसरे का पर्याय समझा जाता था। ज्यादातर पत्रकार साहित्यकार थे और ज्यादातर साहित्यकार पत्रकार। मीडिया और साहित्य में गहरा संबंध है। एक-दूसरे के बिना दोनों का काम चल नहीं सकता। सशक्त मीडिया ऐसी भूमि है जिस पर साहित्य का विशाल वटवृक्ष खड़ा हो सकता है। वास्तव में पत्रकारिता भी साहित्य की भाँति समाज में चलने वाली गतिविधियों एवं हलचलों का दर्पण है। वह हमारे परिवेश में घट रही प्रत्येक सूचना को हम तक पहुँचाती है। सत्य और तथ्य को बेलाग उद्घाटित करना रचनाधर्मिता है। साहित्यकार और पत्रकार का रचनाधर्मिता का क्षेत्र अलग-अलग होते हुए भी दोनों में चोली-दामन का

साथ है। दोनों ही सम सामयिक समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी लेखनी के माध्यम से समाज हित में सामाजिक मूल्यों और सम्वेदनाओं को दृष्टि प्रदान करते हैं। रास्ते अलग-अलग होते हुए भी दोनों की मंजिल एक है। दोनों ही संघर्ष पथ के राही के रूप में जीवन मूल्यों को प्रशस्त करते हुए दीनहीन की आवाज को बुलन्द करते हैं। शोषण विहीन समाज की स्थापना में दोनों का अहम योगदान है। साहित्य और पत्रकारिता ज्ञान के भण्डार हैं और समाज में जनजागरण का कार्य करते हैं। हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता हिन्दी साहित्य के विकास का अभिन्न अंग है। दोनों परस्पर एक-दूसरे का दर्पण हैं। पत्रकारिता की विधा को भी साहित्य के अंतर्गत माना जाता है। बहुत से विचारकों ने पत्रकारिता को तात्कालिक साहित्य की संज्ञा भी दी है। विचार किया जाए तो समय-समय पर विभिन्न साहित्यकारों ने पत्रकारिता में अपना योगदान और पत्रकारों का मार्गदर्शन भी किया है।

पत्रकार और साहित्यकार वस्तुतः जनता के प्रतिनिधि होते हैं। वे जनता के सुख-दुख की आवाज को अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त कर समाज को सही राह दिखाते हैं। पत्रकार में लेखक, साहित्यकार, कवि और सम्पादक के सभी गुण समाहित होते हैं। कहने का तात्पर्य है, जो व्यक्ति समाज हित में समाजोपयोगी साहित्य का सृजन, निर्माण और विकास करता है वही साहित्यकार और पत्रकार कहलाता है। साहित्यकार और पत्रकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पत्रकार का कार्य है समाज में घटित होने वाली सभी अच्छी-बुरी घटनाओं को ज्यों का त्यों समाज के समक्ष परोसना। यदि पत्रकार इन घटनाओं के समाचारों को विश्लेषित कर उसे समाजोपयोगी बनाता है तो वह निश्चय ही साहित्य का सृजन कर रहा है। साहित्यकार अपनी रचनाओं को शाश्वत मूल्यों के साथ गद्य-पद्य विधाओं में सृजित करता है और फिर उसे प्रकाशन का रूप देता है। यह प्रकाशन समाचार पत्रों में क्रमिक रूप से होता रहता है। फिर उसे पुस्तकाकार का रूप देने का प्रयास करता है।

साहित्यकार अपनी रचनाओं का सोच-समझ कर सृजन करता है। इसके लिए उसके पास काफी समय होता है। इस समय का सदुपयोग वह अपने साहित्य को समाज हित में बेहतर और उपयोगी बनाता है। वहीं पत्रकार अपना रचना कार्य दैनन्दिनी रूप में करता है। वह अपने कार्य को समाचार पत्र के माध्यम से स्वरूप प्रदान करता है। एक सफल पत्रकार त्वरित रूप से घटनाओं का ब्यौरा तैयार करता है, क्योंकि उसे अपने समाचार पत्र के अगले अंक में

प्रकाशन के लिए आकार देना होता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि एक पत्रकार में साहित्यकार, लेखक और रचनाकर्मी के सभी गुण समाहित होते हैं।

आजादी के आन्दोलन में पत्रकार और साहित्यकार समानधर्मी होते थे। महात्मा गांधी ने अहिंसक क्रांति के जरिये भारत को आजादी दिलाने के आंदोलन का नेतृत्व किया था। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, वियोगी हरि और डॉ. राम मनोहर लोहिया स्वतंत्रता सेनानी के साथ-साथ पत्रकार और लेखक के रूप में भी प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपनी लेखनी के जरिये देशवासियों में आजादी के आंदोलन का जज्बा जगाया था। आजादी के बाद हिन्दुस्तान, धर्मयुग, दिनमान, सारिका, कादम्बिनी, ब्लिटज, नंदन, पराग, नवनीत, रविवार जैसी पत्रिकाओं ने पत्रकार के साथ साहित्य का झंडा बुलन्द रखा। धरातलीय कसौटी पर देखा जाये तो एक पत्रकार में रिपोर्टर, सम्पादक, लेखक, प्रूफ रीडर से लेकर समाचार पत्र वितरक या हॉकर तक के सभी गुण विद्यमान होते हैं। वह अपने हाथ से अपने समाचार पत्र में समाचारों के साथ-साथ सम्पादकीय भी लिखता है और समय-समय पर सम सामयिक विषयों पर आलेख भी निर्मित करता है। आजादी के आंदोलन के दौरान पत्रकार और साहित्यकार में कोई अन्तर नहीं था। यह अवश्य कहा जा सकता है कि बहुत से साहित्यकार सिर्फ साहित्य सृजन तक ही सीमित रहते हैं। वे लेखक, कवि, कहानीकार और उपन्यासकार का दायित्व निभाते हैं। मगर एक पत्रकार में ये सभी गुण समाहित होते हैं। वह समय-समय पर अपनी लेखनी के माध्यम से कवि, कहानीकार और लेखक भी बन जाता है। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक आदि को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

आधुनिक भारत में भारतेन्दु, अज्ञेय, विधानिवास मिश्र, रघुवीर सहाय, कमलेश्वर, श्याम मनोहर जोशी, बाल कृष्ण राव, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, खुशवन्त सिंह, कुलदीप नैय्यर, डॉ. कन्हैया लाल नंदन और डॉक्टर वेद प्रताप वैदिक आदि को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। इन्होंने लेखक और पत्रकार के श्रेष्ठ दायित्व का समान रूप से निर्वहन किया है। आज भी बहुत से पत्रकार साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।

8

प्रमुख समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ

लोकतंत्र में समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं का काफी महत्त्व होता है। समाचार-पत्र लोकमत को व्यक्त करने का सबसे सशक्त साधन है। जब रेडियो तथा टेलीविजन का ज्यादा जोर नहीं था, समाचार-पत्रों में छपे समाचार पढ़कर ही लोग देश-विदेश में घटित घटनाओं की जानकारी प्राप्त किया करते थे।

अब रेडियो तथा टेलीविजन सरकारी क्षेत्र के सूचना के साधन माने जाते हैं अत: तटस्थ और सही समाचारों के लिए ज्यादातर लोग समाचार-पत्रों को पढ़ना अधिक उचित और प्रामाणिक समझते है। समाचार-पत्र केवल समाचार अथवा सूचना ही प्रकाशित नहीं करते वरन् उसमें अलग-अलग विषयों के लिए अलग-अलग पृष्ठ और स्तम्भ (Column) निधारित होते हैं।

पहला पृष्ठ सबसे महत्त्वपूर्ण खबरों के लिए होता है। महत्त्वपूर्ण में भी जो सबसे ज्यादा ज्वलन्त खबर होती है वह मुख पृष्ठ पर सबसे ऊपर छापी जाती हैं। पहले पृष्ठ का शेष भाग अन्यत्र छापा जाता है। अखबार का दूसरा पन्ना ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं होता, उसमें प्राय: वर्गीकृत विज्ञापन छापे जाते हैं।

रेडियो, टेलीविजन के दैनिक कार्यक्रम, एकाध छोटी-मोटी खबर इसी पृष्ठ पर छपती हैं। तृतीय पृष्ठ पर ज्यादातर स्थानीय समाचार तथा कुछ बड़े विज्ञापन छापे जाते हैं। चौथा पृष्ठ भी प्राय: खबरों तथा बाजार भावों के लिए होता है। पांचवें पृष्ठ में सांस्कृतिक गतिविधियां और कुछ खबरें भी छापी जाती हैं। आधे/चौथाई पृष्ठ वाले विज्ञापन और कुछ समाचार भी इस पृष्ठ पर ही छापते हैं। अखबार का बीचोंबीच का भाग काफी महत्त्व का होता है। इसमें ज्वलन्त विषयों से सम्बन्धित सम्पादकीय किसी अच्छे पत्रकार का सामयिक विषयों पर लेख, ताकि सनद रहे जैसे रोचक प्रसंग भी इसी बीच के पृष्ठ पर छापे जाते

हैं। पहले अखबार केवल इकरंगे हुआ करते थे। उसमें छापे गए चित्र भी श्वेत-श्याम होते थे। अब छपाई अथवा मुद्रण कला में काफी प्रगति हुई है जिसकी वजह से अखबारों में अनेक प्रकार के आकर्षक रंगीन चित्र भी छापे जाते हैं। अखबार कई प्रकार के होते हैं दैनिक, त्रिदिवसीय, साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक अखबार भी होते है। कैलीफोर्निया में प्रकाशित हिन्दुइज्स टुडे मासिक समाचार-पत्र है, जो विश्वभर में हिन्दुओं की गतिविधियों का मासिक लेखा-जोखा छापता है। आमतौर से दैनिक समाचार-पत्र ही ज्यादा लोकप्रिय होते हैं। कुछ साप्ताहिक अखबार होते हैं, जो पूरे सप्ताह की गतिविधियों का लेखा-जोखा छापते हैं।

अखबार के बाद पत्रिकाओं का भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। पत्रिकाएं ज्यादातर विषय प्रधान तथा अपने एक सुनिश्चित उद्देश्य को लेकर निकाली जाती हैं। कुछ पत्रिकाएं केवल नवीन कथाकारों की कहानियां ही छापती हैं, सारिका, माया आदि में पहले कहानियाँ छपा करती थीं।

इंडिया टुडे साप्ताहिक पत्रिका है, जो अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में छपती है। इसमें ज्यादातर राजनीतिक समाचार होते हैं। कभी ब्लिट्ज का भी अच्छा नाम था, आज यह पत्रिका अपना पुराना स्तर बनाए रखने में सफल नहीं हो पा रही है। पांचजन्य हिन्दू विचारधारा की श्रेष्ठ पत्रिका मानी जाती है।

सिद्धान्ततः अखबार स्वतंत्र होने चाहिए और उसमें वही सामग्री छपनी चाहिए जो सत्य, शिव तथा सुन्दर हो। परन्तु ऐसा नहीं हो पाता। आजकल अखबार चलाना कोई हंसी-खेल नहीं है। अतः इनके स्वामी कोई-न-कोई बड़े पूंजीपति ही होते हैं।

इन पूंजीपतियों के विभिन्न राजनीतिक दलों से संबंध होते हैं जिनकी वजह से विचारों की अभिव्यक्तियों में कोई भी अखबार अपने आपको पूर्णरूपेण तटस्थ नहीं रख पाता। अवसर प्राप्त करते ही वह पार्टी विशेष का समर्थक बनकर उसी का गुणगान करने लगता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में अखबारों की यह शैली उचित नहीं कही जा सकती।

वर्तमान युग में अखबार (समाचार-पत्र) एवं पत्रिकाओं का महत्त्व निरंतर बढ़ता जाता है। प्रायः प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति अखबार पढ़ने के लिए उत्सुक अवश्य होता है। इसलिए अखबार तथा पत्रिकाओं के मालिकों एवं सम्पादकों को चाहिए कि वे अपने दायित्व को समझें तथा समाज की सहज उन्नति के लिए सदा सचेत रहकर ऐसी खबरें छापें जो सही तथा समन्वयवादी हों।

समाचार पत्र का इतिहास

ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी में रोम में राज्य की ओर से संवाद लेखक नियुक्त किये जाने के प्रमाण इतिहास में मिलते हैं। इन संवाद लेखकों का काम राजधानी से दूर के नगरों में जाकर हाथ से लिख कर राज्य के आदेशों का प्रचार करना होता था। ईसा पूर्व 60 सन में जब जूलियस सीजर ने रोम की गद्दी संभाली तो उसने 'एक्टा डिउर्ना' (cta Diurna) नामक दैनिक समाचार बुलेटिन शुरू करवाया। इसमें मूल रूप से राज्य की घोषणाएं होती थीं और इन्हें प्रतिदिन रोम शहर में सार्वजनिक स्थानों पर चिपकाया जाता था।

यूरोप में 16वीं सदी में मेलों व उत्सवों के दौरान दुकानों में बिकने वाली चीजों में ऐसे हस्तलिखित परचे भी होते थे जिनमें युद्ध की खबरें, दुर्घटनाएं, राज दरबारों के किस्से आदि लिखे होते थे। भारत में मुगल साम्राज्य में भी राज्य की ओर से वाकयानवीस अथवा कैफियतनवीस नियुक्त किये जाते थे। वाकयानवीस राज्य के अलग-अलग स्थानों से विशेष घटनाएं संग्रहीत कर धावकों और हरकारों के जरिए बादशाह तक भेजते थे।

समाचार पत्रों का प्रारम्भिक रूप 1526 में प्रकाशित नीदरलैण्ड के 'न्यूजाइटुंग' में मिलता है। 1615 में जर्मनी से 'फ्रैंकफुर्टेक जर्नल', 1631 में फ्रांस से 'गजट द फ्रांस', 1667 में बैल्जियम से 'गजट वैन गट', 1666 में इंग्लैण्ड से 'लन्दन गजट' और 1690 में अमेरिका से 'पब्लिक ऑकरेंसज' को प्रारम्भिक समाचार पत्र माना जाता है।

प्रारम्भिक दैनिक समाचार पत्रों में 11 मार्च 1702 को लन्दन से प्रकाशित 'डेली करेंट' का नाम प्रमुख है। इसी के बाद राबिन्सन क्रूसो के लेखक डेनियल डीफो ने कुछ साथियों के साथ मिलकर 1719 में 'डेली पोस्ट' नामक एक दैनिक निकाला, मगर ब्रिटिश पत्रकारिता की वास्तविक शुरूआत 1769 में हुई। जब लन्दन से ही 'मार्निंग क्रानिकल' नामक अखबार का प्रकाशन शुरू हुआ। एक जनवरी 1785 से लन्दन से ही 'डेली यूनिवर्सल रजिस्टर' नामक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ। 1788 में इसका नाम बदल कर 'टाइम्स' कर दिया गया। 'टाइम्स' को ब्रिटिश पत्रकारिता के इतिहास का एक मजबूत स्तम्भ माना जाता है। डेली टेलीग्राफ, स्काट्स मैन भी प्रारम्भिक ब्रिटिश समाचार पत्रों में शुमार किये जाते हैं। 1690 में जब अमेरिका से 4 पृष्ठों का 'पब्लिक ऑकरेसेज' नामक अखबार निकाला गया तो यह ब्रिटेन के बाहर प्रकाशित होने वाला पहला

समाचार पत्र था। हालांकि 1622 में लन्दन से प्रकाशित 'न्यूज वीक' पत्रिका की प्रतियां समुद्री पोतों के जरिए अमेरिका तक पहले से ही भेजी जाने लगी थीं। 1704 में अमेरिका के बोस्टन शहर से 'न्यूज लेटर' और 1719 से 'वीकली मर्करी' का प्रकाशन शुरू हुआ। अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के दौर में वहां समाचार पत्रों का बहुत तेजी से विकास हुआ। 1775 के अमेरिका में 37 समाचार पत्र प्रकाशित होते थे जिनमें 23 स्वतंत्रता समर्थकों के पक्षधर थे। आज अमेरिका का समाचार पत्रों की छपाई और कमाई में विश्व में पहला स्थान हो गया है।

सितम्बर 1778 में कोलकाता के कौंसिल हॉल व अन्य सार्वजनिक स्थानों पर एक हस्तलिखित परचा चिपका देखा गया था। इसमें वोल्टाज नामक एक व्यक्ति ने आम जनता से कहा था कि उसके पास ब्रिटिश राज से जुड़ी ऐसी लिखित जानकारियां हैं, जिसमें हर नागरिक की दिलचस्पी हो सकती है। परचे में वोल्टाज ने यह भी लिखा था कि चूंकि कोलकाता में छपाई की समुचित व्यवस्था नहीं है इसलिए वोल्टाज ने ऐसी सामग्री पढ़ने या नकल करने के इच्छुक लोगों को अपने घर पर आमंत्रित भी किया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों में इस परचे को लेकर बड़ी खलबली मच गई और उन्होंने वोल्टाज का बंगाल छोड़ कर यूरोप वापस लौट जाने का हुक्म सुना दिया। इस घटना को भारत में आधुनिक पत्रकारिता की शुरूआती घटना माना जाता है।

इसके 12 वर्ष बाद 29 जनवरी 1780 को कलकत्ता से पहले भारतीय अखबार 'कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' या हिकीज गजट का प्रकाशन हुआ। इसके मालिक सम्पादक जेम्स ऑगस्टस हिकी को भी ब्रिटिश अधिकारियों ने भ्रष्टाचार के खिलाफ लिखने की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। पहले पोस्टआफिस के जरिये भेजे जाने वाले उसके अखबारों पर रोक लगा दी गई और फिर उस पर मुकदमा चला कर एक साल की कैद व 200 रुपये का जुर्माना ठोंक दिया गया। हिकी का अखबार बन्द कर दिया गया, हिकी को भारत में स्वतंत्र पत्रकारिता को जन्म देने वाला भी कहा जाता है क्योंकि उसने कंपनी के अधिकारियों से भ्रष्टाचार के खिलाफ लिखने में कोई समझौता नहीं किया बल्कि उसने लिखो,' अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता के लिए अपने शरीर को बन्धन में डालने में मुझे आनन्द आता है।'

भारतीय भाषाओं का पहला अखबार 'दिग्दर्शन' भी कोलकाता से ही 1818 में बांग्ला में प्रकाशित हुआ था। आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव का श्रेय भी कोलकाता को ही जाता है। 'उदन्त मार्तण्ड' नामक इस साप्ताहिक

पत्र को 30 मई 1826 को कोलकाता के कालू टोला मोहल्ले से युगल किशोर शुक्ल ने निकाला था। आर्थिक संकट के कारण यह पत्र 4 दिसम्बर 1827 को बन्द हो गया। इसके अंतिम अंक में संपादक युगल किशोर ने लिखा–

''आज दिवस लो उग चुक्यो, मार्तण्ड उदन्त।
अस्ताचल को जात है, दिनकर दिन अब अन्त।।''

कोलकाता से ही 10 मई 1829 को 'हिन्दू हेराल्ड' का प्रकाशन शुरू हुआ। हिन्दी, बांग्ला, फारसी व अंग्रेजी में प्रकाशित इस अखबार के संपादक राजा राममोहन राय थे, देवनागिरी लिपि में प्रकाशित हिन्दी का पहला अखबार जनवरी 1845 में बनारस से शुरू हुआ। 'बनारस अखबार' नामक इस पत्र के संपादक राजा शिव प्रसाद सितारेहिन्द थे।

1850 में बनारस से 'सुधाकर' निकला और 1852 में आगरा से मुंशी सदासुख लाल ने 'बुद्धि प्रकाश' अखबार निकाला। 1854 में कोलकाता से ही हिन्दी का पहला दैनिक समाचार 'सुधावर्षण' निकला। 8 फरवरी 1857 को अजीमुल्ला खां ने दिल्ली से 'पयामे आजादी' नामक अखबार निकाला। इसे भारतीय स्वाधीनता संग्राम का पहला अखबार माना जाता है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद के दौर में 1867 में बनारस से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कवि वचन सुधा,' 1877 में बालकृष्ण भट्ट ने इलाहाबाद से 'हिन्दी प्रदीप' का प्रकाशन शुरू किया। 1878 में कोलकाता से 'भारत मित्र' 1885 में कालाकांकर से 'हिन्दोस्थान' आदि महत्त्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। इस दौर के प्रायः सभी पत्रों में जातीयता व स्वाभिमान की भावना साफ–साफ देखी जा समती है। छपाई की सीमाओं, वितरण की समस्याओं और संसाधनों की कमी के बावजूद इन सभी का भारतीय पत्रकारिता के विकास में उल्लेखनीय योगदान है।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में प्रायः सभी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में ब्रिटिश राज के प्रति कोई बड़ा विरोध या आक्रोश नहीं दिखता। हालांकि भारत में पत्रकारिता का आरम्भ ही कम्पनी के अधिकारियों के भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम के साथ हुआ था। इस दौर के सभी पत्रों ने सामाजिक सुधारों की दिशा में काफी योगदान दिया। राजा राम मोहन राय जैसे समाज सुधारक इस दौर के सम्पादकों में शामिल थे। लेकिन इस सदी के दूसरे भाग में आजादी के पहले संग्राम की छाप भारतीय पत्रकारिता पर साफ देखी जा सकती है।

बीसवीं सदी व वर्तमान परिप्रेक्ष्य

सन 1900 का वर्ष हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। इस वर्ष हिन्दी की युगान्तरकारी पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन शुरू हुआ था। इसके प्रकाशक चिन्तामणि घोष थे। सरस्वती का उद्देश्य हिन्दी भाषी क्षेत्र में सांस्कृतिक जागरण करना था। राष्ट्रीय जागरण तो उसका अंग था ही। सरस्वती के प्रकाशन के बाद देश की आजादी तक हिन्दी का समाचार जगत विविध प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं से समृद्ध होता चला गया था। 1925 के बाद गाँधी युग में हिन्दी पत्रकारिता ने चौमुखी विकास किया। इसी युग में राष्ट्रीय पत्रकारिता से अलग हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता ने भी अपना स्वतंत्र रूप विकसित कर लिया। इस युग ने हिन्दी को गणेश शंकर विद्यार्थी और बाबूराव विष्णु पराडकर जैसे पत्रकार भी दिए और स्वराज्य, अभ्युदय व प्रताप जैसे पत्र भी।

1907 में पण्डित मदन मोहन मालवीय ने अभ्युदय के जरिए उत्तर प्रदेश में जन जागरण का जर्बदस्त कार्य शुरू किया। शहीद भगत सिंह की फांसी के बाद प्रकाशित अभ्युदय के फांसी अंक ने तो हलचल ही मचा दी थी। 13 अप्रैल 1907 से नागपुर से निकला हिन्द केसरी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था कि इसमें लोकमान्य तिलक के प्रसिद्ध अखबार 'केसरी' के लेखों का हिन्दी अनुवाद होता था और इसमें वही सामग्री होती थी जो एक सप्ताह पूर्व केसरी में छप चुकी होती थी। हजारों की संख्या में छपने वाले इस अखबार ने अल्पकाल में ही उत्तर भारत के युवाओं में खासी पैठ बना ली थी।

इलाहाबाद के 'स्वराज' की तरह 1910 में कानपुर से निकला 'प्रताप' भी एक ओजस्वी अखबार था। गणेश शंकर विद्यार्थी के इस अखबार का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक क्रान्तिकारी कदम था। विद्यार्थी भारतीय पत्रकारिता में एक अमर हस्ताक्षर माने जाते हैं। 1917 में कोलकाता से शुरू हुए विश्वमित्र को इस वजह से महत्तवपूर्ण माना जाता है क्योंकि वह हिन्दी का पहला दैनिक था जो कि एक साथ 5 शहरों से प्रकाशित होता था। 5 सितम्बर 1920 को बनारस से शुरू 'आज' को भी इसी कड़ी का अंग माना जा सकता है।

भारत में पत्रकारिता के शुरुआती दिनों से ही उस पर सरकार की ओर से कड़े प्रतिबन्ध लगाए गए थे। कई दमनकारी कानून अखबारों और पत्रकारों का मुंह बन्द करने को समय-समय पर बनाए गए थे। 1878 का वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट भी इसी तरह का एक कानून था। लेकिन इसका सभी तत्कालीन समाचार

पत्रों ने एकजुट विरोध किया था और यह बेहद दमनकारी कानून भी भारतीय पत्रकारिता के उफान को रोक नहीं पाया। 12 मई 1883 को कलकत्ता के 'उचित वक्ता' यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। ''देशीय सम्पादको ! सावधान!! कड़ी जेल का नाम सुनकर कर्त्तव्यविमूढ़ मत हो जाना। यदि धर्म की रक्षा करते हुए यदि गवर्नमेंट को सत्परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिन्ता है।''

इस वैचारिक परम्परा की छाया में विकसित बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों की हिन्दी पत्रकारिता में धर्म और समाज सुधार के स्वर कुछ घीमे पड़ गए और जातीय चेतना ने साफ-साफ राष्ट्रीय चेतना का रूप ले लिया। देश की आजादी इस दौर की पत्रकारिता का एकमात्र ध्येय हो गया था। उत्तराख्ण्ड की पत्रकारिता में भी हम इन स्वरों को साफ देख सकते हैं। 'शक्ति' और 'गढ़वाली' तो इसके प्रतीक ही हैं। इस दौर की पत्रकारिता पर गांधी की विचार धारा की छाप की साफ देखी जा सकती है।

हालाँकि आजादी के बाद से धीरे-धीरे पत्रकारिता मिशन के बजाय व्यवसाय बनती चली गई लेकिन यह भी सत्य है कि आजादी के बाद ही भारत में पत्रकारिता के विकास का एक नया अध्याय भी आरम्भ हुआ। आजादी के वक्त जहां देश भर में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रों की संख्या 500 से कुछ ही अधिक थी आज यह बढ़ कर 10 हजार से अधिक हो चुकी है। पत्र पत्रिकाओं के कुल पाठकों की संख्या करोड़ों में पहुँच चुकी है। 1975 में आपातकाल में लागू कड़ी सेंसरशिप के दौर को छोड़ दिया जाए तो राज्य के दमन के दुश्चक्र से भी पत्रकारिता सामान्यत: मुक्त ही रही है। आपातकाल में लगभग 40 प्रिंटिंग प्रेस सील कर दी गई थीं। कुछ अखबारों का प्रकाशन तो हमेशा के लिए बन्द ही हो गया। लेखन व पत्रकारिता से जुड़े 7000 से अधिक लोग गिरफ्तार कर लिए गए थे।

इस काले अध्याय के बाद 1984 में बिहार में बिहार प्रेस बिल, और 1987 में राजीव गांधी द्वारा एंटी डिफेमेशन बिल लाकर मीडिया पर अंकुश लगाने की कोशिशें हुई मगर पत्रकार बिरादरी के तीव्र विरोध के कारण ये दोनों ही बिल वापस ले लिए गए।

80 के दशक में कम्प्यूटर टैक्नोलॉजी का इस्तेमाल मीडिया के क्षेत्र में व्यापक रूप से शुरू हो जाने के बाद तो भारतीय मीडिया का चेहरा ही बदल गया। इसके क्रान्तिकारी परिणाम हुए और आज देश का मीडिया विश्व भर में अपनी अलग पहचान बना चुका है। पत्र पत्रिकाओं के युग से आगे बढ़ कर वह

टीवी और इंटरनेट समाचारों के युग में पहुँच चुका है और उत्तरोत्तर प्रगति ही करता जा रहा है।

सरस्वती

सरस्वती हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध रूप गुणसम्पन्न प्रतिनिधि पत्रिका थी। इस पत्रिका का प्रकाशन इण्डियन प्रेस, प्रयाग से सन 1900 ई0 के जनवरी मास में प्रारम्भ हुआ था। 32 पृष्ठ की क्राउन आकार की इस पत्रिका का मूल्य 4 आना मात्र था। 1903 ई0 में महावीर प्रसाद द्विवेदी इसके संपादक हुए और 1920 ई0 तक रहे। इसका प्रकाशन पहले झाँसी और फिर कानपुर से होने लगा था। श्यामसुन्दर दास के बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके पश्चात् पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, देवी दत्त शुक्ल, श्रीनाथ सिंह, और श्रीनारायण चतुर्वेदी सम्पादक हुए। 1905 ई0 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का नाम मुखपृष्ठ से हट गया।

1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका कार्यभार संभाला। एक ओर भाषा के स्तर पर और दूसरी ओर प्रेरक बनकर मार्गदर्शन का कार्य संभालकर द्विवेदी जी ने साहित्यिक और राष्ट्रीय चेतना को स्वर प्रदान किया। द्विवेदी जी ने भाषा की समृद्धि करके नवीन साहित्यकारों को राह दिखाई। उनका वक्तव्य है–

हमारी भाषा हिंदी है। उसके प्रचार के लिए गवर्नमेंट जो कुछ कर रही है, सो तो कर ही रही है, हमें चाहिए कि हम अपने घरों का अज्ञान तिमिर दूर करने और अपना ज्ञानबल बढ़ाने के लिए इस पुण्यकार्य में लग जाएं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से ज्ञानवर्धन करने के साथ-साथ नए रचनाकारों को भाषा का महत्त्व समझाया व गद्य और पद्य के लिए राह निर्मित की। महावीर प्रसाद द्विवेदी की यह पत्रिका मूलतः साहित्यिक थी और हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त से लेकर कहीं-न-कहीं निराला के निर्माण में इसी पत्रिका का योगदान था परंतु साहित्य के निर्माण के साथ राष्ट्रीयता का प्रसार करना भी इनका उद्देश्य था। भाषा का निर्माण करना साथ ही गद्य-पद्य के लिए खड़ी बोली को ही प्रोत्साहन देना इनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था।

जून1980 के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया। जिस समय इस पत्रिका का प्रकाशन बन्द हुआ उस समय पत्रिका के संपादक निशीथ राय थे। लगभग अस्सी वर्षों तक यह पत्रिका निकली। अंतिम बीस वर्षों तक इसका सम्पादन पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा बिलकुल अंत में निशीथ राय ने किया।

सम्पादक

निम्नलिखित प्रसिद्ध साहित्यकार सरस्वती पत्रिका के सम्पादक रहे हैं-
सम्पादक मण्डल–जगन्नाथदास रत्नाकर, श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्ण दास, कार्तिक प्रसाद खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी–(जनवरी 1900 -- 1901)
श्यामसुन्दर दास (1899 -- 1902)
महावीर प्रसाद द्विवेदी (1903 -- 1921)
कामताप्रसाद गुरु (1920)
पदुमलाल पन्नालाल बख्शी (1921 -- 25 जुलाई, 1927 तथा जनवरी 1952)
देवी दत्त शुक्ल (1925 -- 1929)
हरिकेशव घोष, व्यवस्थापक इण्डियन प्रेस (1926)
उदयनारायण वाजपेयी (सहायक), गणेश शंकर 'विद्यार्थी', देवी दयाल चतुर्वेदी, हरिभाऊ उपाध्याय, देवी प्रसाद शुक्ल, शंभु प्रसाद शुक्ल, ठाकुर प्रसाद मिश्र (1928 -- 1933)
श्रीनाथ सिंह (1934 -- 1938)
लल्लीप्रसाद, उमेश चंद्र मिश्र (संयुक्त सम्पादक, 1935 -- 1945)
श्रीनारायण चतुर्वेदी (1955 -- 1976)
निशीथ राय (1977 से जून 1980)
देवेन्द्र शुक्ल (2020 से..)

पुनः प्रकाशन

दिसम्बर 2017 में समाचार आया कि सरस्वती पुनः प्रकाशित होगी लेकिन कुछ कानूनी अड़चनों से यह सम्भव नहीं हो सका। अब यह पत्रिका लगभग मुद्रित होकर तैयार है और 'कोविड-19' के विदा होते ही प्रयागराज में इसका विमोचन होगा। 'इंडियन प्रेस' के निदेशक श्री सुप्रतीक घोष ने पत्रिका के संपादक के रूप में देवेन्द्र शुक्ल तथा सह सम्पादक अनुपम परिहार को नियुक्त किया है।

17 अक्टूबर 2020 को 'हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज' के 'गांधी सभागार' में उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष श्री हृदय नारायण दीक्षित के द्वारा 'सरस्वती' पत्रिका का लोकार्पण हुआ।

दीपशील भारत

दीपशील भारत हिन्दी का एक प्रमुख दैनिक समाचारपत्र है। इसकी स्थापना पश्चिमी उत्तर प्रदेश के शहर आगरा में 30 जून सन् 1996 को की गयी थी। सन् 1996 में मान सिंह राजपूत एडवोकेट तथा मोहन सिंह राजपूत ने आगरा से 'दीपशील भारत' का प्रकाशन प्रारंम्भ किया। वह पश्चिमी उत्तरप्रदेश के आगरा, मथुरा, एटा, अलीगढ़, फिरोजाबाद और लखनऊ आदि जिलों और राजस्थान राज्य के भरतपुर और धौलपुर में वितरित किया जाने वाला एक लोकप्रिय पत्र है। दीपशील भारत का इंटरनेट संस्करण 26 मई 2015 को शुरू किया। दीपशील भारत समाचारपत्र की साज-सज्जा, समाचार प्रस्तुतीकरण, समाचार लेखन बहुत ही सुन्दर है।

स्वतंत्र भारत

स्वतंत्र भारत लखनऊ एवं कानपुर से प्रकाशित हिंदी का एक हिंदी दैनिक समाचार पत्र है। 15 अगस्त 1947 को लखनऊ से 'स्वतन्त्र भारत' का प्रकाशन अशोक जी के सम्पादन में हुआ। प्रारम्भ में ही इसने अवध की संस्कृति, लोग जीवन और इतिहास पर बहुत ध्यान दिया। दैनिक व्यंग्य विनोद का स्तम्भ काँव-काँव इसकी विशेषता थी। अशोक जी और बलदेव प्रसाद मिश्र इस स्तम्भ के मुख्य लेखक रहे। सन् 1953 में अशोक जी के केन्द्रीय सूचना विभाग में चले जाने पर सहकारी योगेन्द्र पति त्रिपाठी ने इसका सम्पादन सम्भाला और 31 अगस्त 1971 ई. को अपनी असामयिक मृत्यु तक इसे बड़ी योग्यता से चलाया। उत्तरप्रदेश की राजनीति में इस पत्र का अच्छा प्रभाव है। काँव-काँव, अग्रलेख टिप्पणी, व्यंग्य-चित्र, देश चक्र, देश-देशान्तर, विदेश-चर्चा, आपके विचार, सुझाव-शिकायत, राज्यों की चिठ्ठियां आदि इसके स्थायी स्तम्भ हैं।

राजस्थान पत्रिका

राजस्थान पत्रिका हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने वाला एक भारतीय समाचार पत्र है। यह अखबार भारत के सात राज्यों से प्रकाशित हो रहा है। यह जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा और सीकर सहित कई अन्य क्षेत्रों से राजस्थान से प्रकाशित होता है और राजस्थान के अलावा भोपाल, इन्दौर, जबलपुर, रायपुर, अहमदाबाद, ग्वालियर, कोलकाता, चेन्नई, नई दिल्ली और बंगलौर से प्रकाशित होता है।

राजस्थान पत्रिका का आरंभ 1956 में उधार के 500 रुपये पूँजी से एक शाम को प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र के रूप में हुआ था। स्वर्गीय श्री कर्पूर चन्द्र कुलिश ने 7 मार्च 1956 को राजस्थान पत्रिका की आधारशिला रखी। उससे पहले वो उस समय के मुख्य समाचार पत्र राष्ट्रदूत के लिए कार्य किया करते थे। उस समय राजस्थान में अन्य दो समाचार पत्र लोकवाणी और नवयुग प्रमुख पाठक दल में शामिल थे, जो दोनों ही दिल्ली आधारित समाचार पत्र थे।

1964 में यह समाचार पत्र सुबह प्रकाशित होने वाला समाचार पत्र बना। पत्रिका ने अपना प्रथम जोधपुर संस्करण 1981 में प्रकाशित किया और अपने उदयपुर प्रकाशन के साथ इन्होंने एक और मील का पत्थर रखा। कोटा संस्करण मार्च 1986 और बीकानेर संस्करण अगस्त 1987 में जोड़े गये। सन 2000 में नये संस्करण भीलवाड़ा, सीकर, श्रीगंगानगर आरम्भ हुए। 11 अगस्त 2002 को अहमदाबाद संस्करण और इसी वर्ष 28 अक्टूबर अजमेर संस्करण और वर्ष 2003 में सूरत संस्करण को इस सूची में शामिल किया गया।

न्यूयॉर्क टाइम्स के अनुसार राजस्थान पत्रिका में छपे समाचार पत्र को विश्वसनीय माना जाता है और यह एक पूर्ण रूप से प्रामाणिक और पूर्णतया पत्रिका के संवाददाताओं द्वारा प्राप्त होती है। प्रत्येक समाचार छपने से पूर्व तीन बार जाँचा जाता है।

हरिभूमि

हरिभूमि हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने वाला एक दैनिक समाचार पत्र है, जो भारत में हरियाणा, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में प्रकाशित होता है। इसकी स्थापना 1996 में हुई जो वर्तमान में हरियाणा में रोहतक से, छत्तीसगढ़ में बिलासपुर, रायपुर एवं रायगढ़ से, मध्य प्रदेश में जबलपुर से और दिल्ली से प्रकाशित होता है। हरिभूमि ग्रुप की शुरुआत 5 सितंबर 1996 को साप्ताहिक हिंदी पत्रिका के रूप में हुई थी। बाद में नवंबर 1997 में यह दैनिक हिंदी अखबार के रूप में हरियाणा से रोहतक एडिशन के रूप में लांच किया गया। रोहतक एडिशन के जरिए पूरे हरियाणा राज्य की खबरें प्रकाशित की जाने लगीं।

अप्रैल 1998 में हरिभूमि मीडिया ग्रुप ने दिल्ली संस्करण की शुरूआत की और दिल्ली के साथ फरीदाबाद और गुड़गांव की खबरें प्रकाशित की जाने लगीं। मार्च 2001 में हरिभूमि ग्रुप ने छत्तीसगढ़ में प्रवेश किया और बिलासपुर एडिशन की शुरूआत की। जून 2002 में बिलासपुर और रायपुर में ग्रुप के

ऑफिस शुरू किए गए। रायपुर एडिशन ने उड़ीसा के भी काफी क्षेत्र की खबरें प्रकाशित करनी शुरू कीं। अक्टूबर 2008 में मध्य प्रदेश से हरिभूमि जबलपुर की शुरूआत की गई। इसी साल छत्तीसगढ़ में रायगढ़ एडीशन की भी शुरूआत की गई। आईआरएस के आंकड़ों के अनुसार हरिभूमि छत्तीसगढ़ में प्रथम स्थान पर है। हरिभूमि मीडिया ग्रुप दैनिक समाचारपत्र के अलावा विभिन्न प्रकार के साप्ताहिक सप्लीमेंट भी उपलब्ध कराता है। इनमें महिलाओं के लिए 'सहेली', बच्चों के लिए 'बालभूमि', युवाओं के लिए 'मंजिल', रविवार स्पेशल 'रविवार भारती', मनोरंजन के लिए 'रंगारंग' तथा सांस्कृतिक मैग्जीन 'चौपाल' प्रकाशित करता है। हरिभूमि मीडिया ग्रुप के फाउंडर कैप्टेन अभिमन्यु सिंधु तथा ग्रुप एडिटर डॉ. कुलबीर छिकारा हैं।

दैनिक भास्कर

दैनिक भास्कर भारत का एक प्रमुख हिंदी दैनिक समाचारपत्र है। भारत के 12 राज्यों (व संघ-क्षेत्रों) में इसके 65 संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं। भास्कर समूह के प्रकाशनों में दिव्य भास्कर (गुजराती) और डीएनए (अंग्रेजी) और पत्रिका अहा जिंदगी भी शामिल हैं। 2015 में यह देश का सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला समाचार-पत्र बना।

वर्ष 1956 में दैनिक भास्कर ने अपना पहला समाचार-पत्र को भोपाल में प्रकाशित किया। परंतु उस समय इसका नाम सुबह सवेरे रखा गया था। वर्ष 1957 में ग्वालियर में अग्रेजी नाम गुड मॉर्निंग इंडिया से प्रकाशित किया। एक वर्ष पश्चात वर्ष 1958 में पुनः नाम परिवर्तित कर इसे भास्कर समाचार रख दिया गया। वर्ष 2010 में इसका नाम पुनः परिवर्तित कर दैनिक भास्कर रखा गया, जो वर्तमान में भी है। उस समय से अब तक यह भारत का शीर्ष एक दैनिक समाचार-पत्र है।

1995 को यह मध्य प्रदेश का शीर्ष समाचार पत्र बन गया। इसके बाद हुए पाठकों में सर्वेक्षण के पश्चात इसे सबसे अधिक बढ़ता हुआ दैनिक समाचार-पत्र कहा गया। इसके बाद इसने निर्णय लिया की मध्य प्रदेश के बाहर भी इसका प्रसार करना चाहिए। इसके लिए राजस्थान की राजधानी जयपुर को उपयुक्त समझा गया। 1996 में इसने जयपुर में समाचार पत्र शुरू किया। यहाँ उसने एक ही दिन में 50,000 प्रतियाँ बेच कर दूसरा स्थान प्राप्त किया। इसके लिए 2,00,000 समाचार पत्र लेने वाले परिवारों के मध्य सर्वेक्षण कराया। यह

कार्य 700 सर्वेक्षक द्वारा किया गया था। उसके बाद इसने एक उदाहरण के लिए समाचार पत्र दिया और आगे के लिए केवल 1.50 रुपये लिए। जबकि इसके लिए 2 रुपये होता था। इसके बाद दैनिक भास्कर ने मध्य प्रदेश के बाहर पहली बार 19 दिसम्बर 1996 में समाचार-पत्र प्रकाशित किया। इस दिन 1,72,347 प्रतियाँ बेचकर यह इससे पहले शीर्ष पर रहे राजस्थान पत्रिका को पीछे छोड़कर पहले स्थान पर आ गया। इसके बाद 1999 में यह राजस्थान में पहले स्थान पर आ गया।

इसके बाद इसने यह चंडीगढ़ में समाचार पत्र प्रकाशित करने के बारे में सोचा। यहाँ हिन्दी समाचार-पत्र की तुलना में अंग्रेजी समाचार-पत्र 6 गुणा अधिक बिकता था। इसने सर्वेक्षण का कार्य जनवरी 2000 में शुरू किया। इसने कुल 2,20,000 घरों में जाकर यह कार्य किया। इसके बाद सर्वेक्षण से यह पता लगा, कि वहाँ अंग्रेजी समाचार-पत्र को उसके गुणवत्ता के कारण लिया जाता था। इसके बाद इसने अपने कागज आदि की गुणवत्ता को और सुधारा। इसने हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी को मिलाकर मई 2000 में अपना प्रकाशन शुरू किया। यहाँ शीर्ष पर रहे अंग्रेजी समाचार-पत्र द ट्रिब्यून, जिसकी 50,000 प्रतियाँ बिकती थी। उसे पीछे छोड़ कर 69,000 प्रतियाँ बेची और प्रथम स्थान प्राप्त किया।

जनसत्ता

जनसत्ता हिन्दी का प्रमुख दैनिक समाचार पत्र है। जनसत्ता इंडियन एक्सप्रेस समूह का हिन्दी अखबार है। इसकी स्थापना इंडियन एक्सप्रेस, दिल्ली के संपादक प्रभाष जोशी ने की थी। 1983 में शुरू हुए इस अखबार ने रातों रात सबको पीछे छोड़ दिया और इसके कई संस्करण निकले। इसके सम्पादक मुकेश भारद्वाज हैं। जनसत्ता कोलकत्ता, चंडीगढ़ और रायपुर से भी निकलता है।

हिन्दी पत्रकारिता को नया आयाम देने वालों में दिल्ली से प्रकाशित दैनिक 'जनसत्ता' का नाम अग्रणी है। खोजपूर्ण पत्रकारिता को नए तेवर देने का श्रेय यदि किसी पत्र को दिया जा सकता है तो वह है-'जनसत्ता'। अपनी विशेष शैली, आम भाषा, तेज-तर्रार सम्पादकीय लेखों तथा समाचारों के प्रस्तुतीकरण ने इसे न केवल दिल्ली का बल्कि पूरे देश का लोकप्रिय पत्र बना दिया और उसे ही कुछ वर्षों में श्रेष्ठ हिन्दी दैनिक पत्रों में ला खड़ा किया। खोज खबर, गपशप, किताबें, अर्थात् इस पत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय स्तम्भ हैं। इसका रविवारीय संस्करण 'रविवारीय जनसत्ता' विविध सामयिक सामग्री से परिपूर्ण है। सामयिक

लेख, कविता, कहानी, नन्ही दुनियां, जोगलिखी, देखी-सुनी, महिला जगत् आदि इसके नियमित स्तम्भ हैं। जनसत्ता मुख्यालय दिल्ली से प्रकाशित होता है, जिसके संस्थापक संपादक प्रभाष जोशी थे। उनके बाद इसके संपादक बने राहुल देव। राहुल देव के बाद अच्युतानंद मिश्र ने इसके संपादक का कार्यभार संभाला। लेकिन उन्हें ठीक से काम नहीं करने दिया गया। इसके पीछे प्रभाष जोशी की शह पर रामबहादुर राय समेत कई पत्रकारों ने अच्युताजी की राह में रोड़े अटकाए। हालांकि बाद में संपादक बने ओम थानवी ने प्रभाष जोशी के नजदीकी लोगों को ही निबटा दिया।

दैनिक जागरण

दैनिक जागरण उत्तर भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय समाचारपत्र है। पिछले कई वर्षों से यह भारत में सर्वाधिक प्रसार संख्या वाला समाचार-पत्र बन गया है। यह समाचारपत्र विश्व का सर्वाधिक पढ़ा जाने वाला दैनिक है। इस बात की पुष्टि विश्व समाचारपत्र संघ (वैन) द्वारा की गई है। वर्ष 2008 में बीबीसी और रॉयटर्स की नामावली के अनुसार यह प्रतिवेदित किया गया कि यह भारत में समाचारों का सबसे विश्वसनीय स्रोत दैनिक जागरण है।

दैनिक जागरण को 1942 में शुरू किया गया था। इसका श्रेय आक्रामक स्वतन्त्रता सेनानी श्री पूर्णचन्द्र गुप्त को जाता है। 1942 का वर्ष भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का बहुत महत्त्वपूर्ण वर्ष था जब भारत में अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने के लिए संघर्ष अपने चरम पर था। भारत छोड़ो आंदोलन इस संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। ऐसे निर्णायक मोड़ पर दैनिक जागरण को इसके संस्थापक स्वर्गीय पूर्णचन्द्र गुप्त द्वारा जारी किया गया। इस दृष्टि के साथ कि अखबार जन-समूह के मुक्त स्वर को प्रतिबिम्बित कर सके। प्रथम संस्करण 1942 में झांसी से जारी किया गया। 1947 में इसका मुख्यालय झाँसी से कानपुर ले जाया गया। पूर्णचन्द्र गुप्त कभी भी अपने समाचारपत्र को संभ्रान्त बनाने की अपनी इच्छाशक्ति से नहीं डिगे।

दैनिक जलते दीप

दैनिक जलतेदीप भारत का एक हिंदी दैनिक समाचारपत्र है। जो राजस्थान प्रदेश के जोधपुर जिले से प्रकाशित होता है तथा इसका मुख्यालय भी जोधपुर में ही है। दैनिक जलतेदीप राजस्थान के दूसरे सबसे बड़े नगर जोधपुर से सन्

1969 से निरंतर प्रकाशित हो रहा है। केन्द्र सरकार के डीएवीपी व राज्य सरकार के विज्ञापनों हेतु दैनिक जलतेदीप को राज्य स्तरीय समाचार पत्र की मान्यता प्रदान की हुई है। जोधपुर के इस पुराने दैनिक की राजस्थान प्रदेश के पश्चिमी अंचल में विशेष लोकप्रियता एवं प्रभाव है। बारह पृष्ठ में ऑफसेट व फोटो कम्पोजिंग पद्धति से मुद्रित तथा राज्य के अधिकांश जिलों में इसका नित्य वितरण होता है। 26 जनवरी वर्ष 1999 से प्रकाशित इसका जयपुर संस्करण राजधानी जयपुर एवं आसपास में रहने वाले पश्चिमी राजस्थान के लोगों का प्रतिनिधि संवाहक है।

अनुभवी संपादकों की टीम एवं अपने स्वयं के दिल्ली, मुम्बई, जयपुर, बीकानेर, उदयपुर, अजमेर, कोटा, कार्यालयों से आधुनिक संचार सुविधाओं से जुड़ा दैनिक जलतेदीप जयपुर आधारित प्रमुख दैनिकों की भांति ही राजस्थान का एक सम्पूर्ण अखबार है। जलते दीप उन अग्रणी दैनिक समाचार पत्रों में से है, जो फर्स्ट ऑन रोटरी (1978), फर्स्ट ऑन ऑफसेट (1984), फर्स्ट ऑन कंप्यूटराइज्ड, डीटीपी (1988) और फर्स्ट ऑन 8 पेज शेप (1989) पर प्रकाशित हुआ था। जलते दीप एकमात्र प्रकाशन है, जो स्थानीय मारवाड़ी भाषा में एक पूर्ण पृष्ठ देता है। कोई अन्य प्रकाशन इस तरह की सामग्री नहीं देता है, जो व्यापक रूप से पढ़ी जाती है।

1997 से दैनिक जलते दीप, जर्दा, गुटखा, बीड़ी, सिगरेट, पान मसाला, शराब और पहेलियों के विज्ञापनों को नहीं प्रकाशित करने का फैसला करके सामाजिक सरोकारों की शुरुआत करने वाला देश का पहला अखबार है। दैनिक जलते दीप को वर्ष 1981 से MANAK ALANKARAN के रूप में जाने जाने वाले पत्रकारिता पुरस्कार की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। अब तक 38 पत्रकारों को इस पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

नवभारत टाइम्स

नवभारत टाइम्स दिल्ली और मुंबई से प्रकाशित होने वाला एक दैनिक समाचारपत्र है। इसकी प्रकाशक कम्पनी बेनेट, कोलेमन एवं कम्पनी लिमिटेड है, जो द टाइम्स ऑफ इण्डिया, द इकॉनॉमिक टाइम्स, महाराष्ट्र टाइम्स जैसे दैनिक अखबारों का प्रकाशन करती है। फिल्मफेयर एवं फेमिना जैसी पत्रिकाओं का यह वार्तापत्र प्रकाशन भी करती है। नवभारत टाइम्स इस समूह के सबसे पुराने प्रकाशनों में से एक है। दिल्ली में करीब 4.23 लाख की प्रसार संख्या और

19.7 लाख की पाठक संख्या के साथ यह अखबार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में छाया हुआ है। हिन्दी मुंबई में चौथे नम्बर की भाषा मानी जाती है, इसके बावजूद ग्रेटर मुम्बई क्षेत्र में नवभारत टाइम्स की प्रसार संख्या 1.3 लाख और पाठक संख्या 4.7 लाख है। इन दोनों शहरों में शुरू से ही नवभारत टाइम्स प्रथम स्थान पर है।

नई दुनिया

नईदुनिया नईदुनिया मिडिया लिमिटेड द्वारा संचालित एक दैनिक हिन्दी समाचार पत्र है। भारत की स्वतन्त्रता से कुछ दिन पूर्व 5 जून 1947 को इसकी स्थापना इन्दौर में हुई। 'नई दुनिया' का प्रकाशन इंदौर से 5 जून 1947 को कृष्णचन्द्र मुदकल तथा कृष्णकांत व्यास के सद्प्रयत्नों से आरम्भ हुआ। उस समय यह एक छोटा सा सायंकालीन दैनिक था। मध्यप्रदेश बनने के बाद 'नई दुनिया' ने अपने रायपुर (1952) और जबलपुर (1959) संस्करण प्रारम्भ किये लेकिन वे 1971 में बन्द कर दिये गए। हालांकि बाद में छत्तीसगढ़ अलग राज्य बनने के बाद नई दुनिया का रायपुर और बिलासपुर संस्करण का प्रकाशन आरंभ हुआ।

'नई दुनिया' की भव्य साज-सज्जा, सरल भाषा, उत्कृष्ट सम्पादकीय तथा ताजा समाचारों ने उसे न केवल मध्यप्रदेश का सर्वाधिक प्रसारित पत्र बना दिया बल्कि उसे देश के श्रेष्ठ हिन्दी दैनिकों की श्रेणी में बिठा दिया है। इसके प्रधान सम्पादक राहुल बारपुते ने पत्रकारिता के श्रेष्ठ आदर्श, मानदण्ड स्थापित किये। इसके अलावा स्व राजेंद्र माथुर, प्रभाष जोशी जैसे देश के नामचीन पत्रकारों ने भी नई दुनिया से अपनी पहचान बनाई। मध्यप्रदेश में अनेक साहित्यकार, लेखक, कवि इस पत्र के साथ जुड़े हुए हैं। भारतीय भाषाओं के बड़े समाचार पत्रों में उत्कृष्ट छपाई के लिए कई पुरस्कार 'नई दुनिया' को मिले हैं। देश के हिन्दी दैनिक समाचार-पत्रों में 'नई दुनिया' ने सर्व प्रथम आफसेट मुद्रण पद्धति अपनाई। राजेन्द्र माथुर भी इसके प्रधान सम्पादक रहे हैं।

मिशन जयहिन्द

मिशन जयहिन्द समाचारपत्र (Mission Jaihind Newspaper) एक हिंदी भाषीय पाक्षिक समाचारपत्र है, जो राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से प्रकाशित किया जाता है, तथा प्रसार पूरे भारत में है। मिशन जयहिन्द समाचारपत्र के मुख्य

संपादक, मोहित गौतम हैं तथा इसके संस्थापक भी हैं। मिशन जयहिन्द का पहला प्रकाशन/संस्करण 2014 में प्रकाशित किया गया था। फिलहाल मिशन जयहिन्द समाचारपत्र का प्रकाशन रुका हुआ है। मोहित गौतम, अब भारतीय ब्रॉडकास्ट कॉर्पोरेशन (Bhartiya Broadcast Corporation) का संचालन कर रहे हैं। भारतीय ब्रॉडकास्ट कॉर्पोरेशन (Bhartiya Broadcast Corporation) डैडम्क एक्ट 2006 के अधीन पंजीकृत न्यूज एजेंसी है।

दैनिक हिन्दुस्तान

दैनिक हिन्दुस्तान हिन्दी का दैनिक समाचार पत्र है। यह 1932 में शुरु हुआ था। इसका उद्घाटन महात्मा गांधी ने किया था। 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन छिड़ने पर 'हिन्दुस्तान' लगभग 6 माह तक बन्द रहा। यह सेंसरशिप के विरोध में था। एक अग्रलेख पर 6 हजार रुपये की जमानत माँगी गई। देश के स्वाधीन होने तक 'हिन्दुस्तान का मुख्य राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ावा देना था। इसे महात्मा गाँधी व काँग्रेस का अनुयायी पत्र माना जाता था। गाँधी–सुभाष पत्र व्यवहार को हिन्दुस्तान' से अविकल रूप से प्रकाशित किया।

'हिन्दुस्तान' में क्रांतिकारी यशपाल की कहानी कई सप्ताह तक रोचक दर से प्रकाशित हुई। राजस्थान में राजशाही के विरुद्ध आंदोलनों के समाचार इस पत्र में प्रमुखता से प्रकाशित होते रहे। हैदराबाद सत्याग्रह का पूर्ण 'हिन्दुस्तान' ने समर्थन किया। देवदास गाँधी के मार्गदर्शन में इस पत्र ने उच्च आदर्शों को अपने साथ रखा और पत्रकारिता की स्वस्थ परम्पराएँ स्थापित कीं। गाँधीजी के प्रार्थना प्रवचन पं जवाहरलाल नेहरू व सरदार वल्लभ भाई पटेल के भाषण अविकल रूप से 'हिन्दुस्तान' में छपते रहे। दैनिक 'हिन्दुस्तान' का पटना (बिहार) से भी संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

मर्यादा

मर्यादा पत्रिका का पहला अंक नवम्बर सन 1910 ई. में कृष्णकान्त मालवीय ने 'अभ्युदय' कार्यालय प्रयाग से इसे प्रकाशित किया था। इसके प्रथम अंक का प्रथम लेख 'मर्यादा' शीर्षक से पुरुषोत्तमदास टण्डन ने लिखा। 10 वर्षों तक इस पत्रिका को प्रयाग से निकालने के बाद कृष्णकान्त मालवीय ने इसका प्रकाशन ज्ञानमण्डल काशी को सौंप दिया। सन 1921 ई. से श्री शिवप्रसाद गुप्त के संचालन में और सम्पूर्णानन्द जी के संपादकत्व में 'मर्यादा' ज्ञानमण्डल से

प्रकाशित हुई। असहयोग आन्दोलन में उनके जेल चले जाने पर धनपत राय प्रेमचन्द स्थानापन्न संपादक हुए। मर्यादा अपने समय की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका थी। प्रेमचन्द की आरम्भिक कहानियाँ इसमें प्रकाशित हुईं। सन 1923 ई. में यह पत्रिका अनिवार्य कारणों से बन्द हो गई। इसका अन्तिम अंक प्रवासी विशेषांक के रूप में बनारसीदास चतुर्वेदी के सम्पादन में निकला, जो अपनी विशिष्ट लेख सामग्री के कारण ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

बनारस अखबार

बनारस अखबार का प्रकाशन जनवरी, 1845 में हुआ। यह अखबार गोविन्द नारायण थत्ते के सम्पादन में उत्तर प्रदेश से प्रकाशित हुआ। अखबार के संचालक राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द थे। अधिकांश लोग इस अखबार को ही हिन्दी का पहला अखबार मानते हैं। किंतु इसे हिन्दी भाषी क्षेत्र का प्रथम समाचार पत्र माना जा सकता है।

अरबी तथा फारसी शब्दों का प्रयोग

देवनागरी लिपि के प्रयोग के बावजूद इस अखबार में अरबी और फारसी भाषा के शब्दों की बहुतायत थी, जिसे समझना साधारण जनता के लिए एक कठिन कार्य था। पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि 'बनारस अखबार की निकम्मी भाषा का उत्तरदायित्व यदि किसी एक पुरुष पर है तो वे राजा शिवप्रसाद सिंह हैं।' बनारस से ही 1850 में तारा मोहन मैत्रेय के संपादन में 'सुधाकर' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र साप्ताहिक था तथा बंगला एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। भाषा की दृष्टि से समाचार पत्र 'सुधाकर' को हिन्दी प्रदेश का पहला पत्र कहा जाना अधिक उपयुक्त है। 1853 में यह पत्र सिर्फ हिन्दी में ही छपने लगा था।

अन्य अखबार

'बनारस अखबार' एवं 'सुधाकर' के बाद कुछ अन्य अखबारों का भी प्रकाशन हुआ, जिनके नाम निम्नलिखित हैं-

'मार्तण्ड' (11 जून, 1846)

'ज्ञान दीपक' (1846)

'जगदीपक भास्कर' (1849)

'सामदण्ड मार्तण्ड' (1850)
'फूलों का हार' (1850)
'बुद्धिप्रकाश' (1852)
'मजहरुल सरुर' (1852)
'ग्वालियर गजट' (1853)
'मालवा अखबार' (1894)

मुंशी सदासुखलाल के संपादन में आगरा से 'बुद्धि प्रकाश' नाम का यह पत्र पत्रकारिता के दृष्टि से ही नहीं, अपितु भाषा व शैली की दृष्टि से भी खास स्थान रखता है। प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस पत्र की भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि 'बुद्धि प्रकाश की भाषा उस समय की भाषा को देखते हुए बहुत अच्छी होती थी।'

हिन्दी प्रदीप

हिन्दी प्रदीप, हिन्दी की एक मासिक पत्रिका थी जिसका प्रथम अंक 1877 ई. में प्रकाशित हुआ। इस पत्र का विमोचन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया था। यह पत्रिका प्रयाग से निकलती थी और इसका सम्पादन बालकृष्ण भट्ट के द्वारा किया जाता था। हिन्दी प्रदीप में नाटक, उपन्यास, समाचार और निबन्ध सभी छपते थे।

हिंदी प्रदीप के मुखपृष्ठ पर लिखा था–

शुभ सरस देश सनेह पूरित, प्रगट होए आनंद भरै
बलि दुसह दुर्जन वायु सो मनिदीप समथिर नहिं टरै।
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब या में जरै,
हिंदी प्रदीप प्रकाश मूरख तादि भारत तम हरै।

प्रदीप से कई लेखकों का अभ्युदय हुआ। इनमें राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, आगम शरण, पंडित माधव शुक्ल, मदन मोहन शुक्ल, परसन और श्रीधर पाठक आदि थे। इनके अतिरिक्त बाबू रतन चंद्र, सावित्री देवी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जगदंबा प्रसाद उनके प्रभाव में थे। पुरुषोत्तम दास टंडन की प्रदीप में 12 रचनाएं प्रकाशित हुईं जो उन्होंने 1899 से लेकर 1905 के बीच लिखी थीं।

हिंदी प्रदीप में बहुत ही खरी बातें प्रकाशित होती थीं। 1909 अप्रैल के चौथे अंक में माधव शुक्ल ने 'बम क्या है' नामक कविता लिखी जो अंग्रेज सरकार को नागवार लगी और उन्होंने पत्रिका पर तीन हजार रुपये का जुर्माना

लगा दिया। उस समय भट्ट जी के पास भोजन तक के पैसे नहीं थे, जमानत कहां से भरते। विवश होकर उन्हें पत्रिका बंद करनी पड़ी।

हिन्दी प्रदीप लगभग 33 वर्ष तक प्रकाशित होता रहा और प्रकाशन की सम्पूर्ण अवधि तक पं. भट्ट जी ही संपादक बने रहे। तत्कालीन विषम परिस्थितियों में इतनी लम्बी अवधि तक पत्र का प्रकाशन स्वयं में एक उपलब्धि थी। यह भारतेन्दु युग के सर्वाधिक दीर्घजीवी पत्रों में से एक था।

हिन्दी प्रदीप एक साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मासिक पत्र था। इसमें राजनैतिक वयस्कता थी। समाज के प्रति दायित्व-बोध प्रचुर मात्रा में था। राजनैतिक वयस्कता की परिपक्वता की झलक हिन्दी प्रदीप में प्रकाशित विभिन्न नाटकों और संपादकीय अग्रलेखों से स्पष्ट होती थी। पुस्तक समीक्षा प्रकाशन की पहल हिन्दी प्रदीप ने ही की थी।

भट्ट जी ने पत्रकारिता का प्रारम्भिक ज्ञान रमानन्द चट्टोपाध्याय से प्राप्त किया था जो कायस्थ पाठशाला, प्रयाग के प्रिंसिपल थे। भट्ट जी इसी कॉलेज में संस्कृत के शिक्षक नियुक्त हुए। प्रिंसिपल रहते हुए ही श्री चट्टोपाध्याय अंग्रेजी मासिक माडर्न रिव्यू का सम्पादन किया करते थे।

14 मार्च 1878 को वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट परित हुआ जिसके तहत भारतीय प्रेस की स्वतंत्रता समाप्त कर दी गई। इस अधिनियम की निर्भीक व तीखी आलोचना कर 'हिन्दी प्रदीप' ने संपूर्ण भारतीय पत्रकारिता का मार्गदर्शन किया था। हिन्दी प्रदीप में 'हम चुप न रहें' शीर्षक से अग्रलेख प्रकाशित हुआ था जिसमें पाठकों से इस एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन करने का आग्रह किया गया था। तत्पश्च्चात अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने अधिनियम का विरोध किया और परिणामस्वरूप लॉर्ड रिपन को 19 जनवरी 1882 को यह एक्ट वापस लेना पड़ा।

देवनागरी लिपि को न्यायालय-लिपि और कार्यालय-लिपि की मान्यता प्रदान कराने की दिशा में हिन्दी प्रदीप का बहुमूल्य योगदान रहा है। अपने प्रकाशन के दसवें माह से ही इस पत्र ने इस विषय में जोरदार आन्दोलन किया और सम्पूर्ण हिन्दी भाषी जनता को जागरूक किया। भट्ट जी ने हिन्दी प्रदीप के माध्यम से 1878 में कहा था, 'खैर हिन्दी भाषा का प्रचार न हो सके तो नागरी अक्षरों का बरताव ही सरकारी कामों में हो, तब भी हम लोग अपने को कृतार्थ मानें।' 1896-97 के दौरान हिन्दी प्रदीप ने देशी अक्षर अर्थात देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा का संयुक्त प्रश्न खड़ा कर दिया। उस समय कहा गया था कि हमारे अक्षर और हमारी भाषा अदालतों में पदास्थापित नहीं हैं।

यद्यपि भट्ट जी हिन्दी के मुददे को भी बार-बार उठाते रहे किन्तु उर्दू भाषा व उसके अपनाने वालों की भावना का खयाल रखते हुए उनका अधिक जोर देवनागरी लिपि पर ही था। सन् 1898 उन्होंने हिन्दी प्रदीप के माध्यम से कहा था, 'भाषा उर्दू रहे। अक्षर हमारे हो जाएं, तो हम और वे दोनों मिलकर एक साथ अपनी तरक्की कर सकते हैं। और सच पूछे तो जिसे वे हिन्दी कहते हैं, वह भी उनकी भाषा है। वही हिन्दी जो सर्व साधारण में प्रचलित है।'

भारतमित्र

भारतमित्र सन 1878 में कलकता से प्रकाशित एक हिन्दी समाचार पत्र था। भारत मित्र कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) से प्रकाशित होने वाला समाचार पत्र था। भारतमित्र के पहले वैतनिक सम्पादक पण्डित हरमुकुन्द शास्त्री थे, जिन्हें लाहौर से बुलाया गया था। यह पत्र लम्बे समय (37 वर्षों) तक निरन्तर चलता रहा। राजा, प्रजा, राज्य-व्यवस्था, वाणिज्य, भाषा और सबके ऊपर देशहित की चिंता-चेतना जगानेवाला 'भारतमित्र' एक तेजस्वी राजनीतिक पत्र के रूप में चर्चित और विख्यात हुआ। 1899 ई. में बालमुकुन्द गुप्त इसके संपादक हुए और उसी वर्ष उनकी मृत्यु हुई।

'भारतमित्र' का स्वदेशी के प्रति विशेष आग्रह था। समग्र जातीय चेतना का विकास इसका लक्ष्य था। स्मरणीय है, समाचार-पत्र की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करनेवाला वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट 14 मार्च, 1878 ई. को लागू हुआ था। उस संदर्भ में 17 मार्च, 1878 के 'भारतमित्र' की संपादकीय टिप्पणी की भाषा विपत्ति को आहूत करने वाली भाषा है। उस समय राजा तक प्रजा के कष्ट तथा नाना प्रकार के अभाव की जानकारी पहुँचाने वाले सशक्त अभियोग-माध्यम-पत्रों की आजादी की माँग सरकारी दृष्टि से कदाचित् सबसे बड़ा अपराध था, किंतु राष्ट्रवाद और देश-प्रीति का यही तकाजा था। 'भारतमित्र' संपादक के सामने ब्रिटिश सरकार की नीति स्पष्ट थी और उसके प्रतिरोध में जागरूक कौशल से आबोहवा तैयार करनी थी। शायद यही कारण है कि 'भारतमित्र' की संपादकीय टिप्पणी में राजभक्ति का मूलम्मा भी दिखाई पड़ता है।

अभ्युदय

अभ्युदय एक ऐतिहासिक साप्ताहिक पत्र है जिसकी शुरूआत पं. मदन मोहन मालवीय ने की थी। सन् 1907 में बसंत पंचमी के दिन हिंदी पत्रकारिता

ने नया उदय देखा। यह उदय मालवीय जी के समाचार पत्र 'अभ्युदय' के रूप में हुआ था, यह पत्र साप्ताहिक था। मालवीय जी ने 'अभ्युदय' के लिए जो संपादकीय नीति तैयार की थी, उसका मूल तत्त्व था स्वराज। महामना ने 'अभ्युदय' में ग्रामीण लोगों की समस्याओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। जिसका उदाहरण 'अभ्युदय' के पृष्ठों पर लिखा यह वाक्य था- 'कृपा कर पढ़ने के बाद अभ्युदय किसी किसान भाई को दे दीजिए'।

उद्देश्य

मालवीय जी की पत्रकारिता का ध्येय ही राष्ट्र की स्वतंत्रता था, जिसके लिए वे जीवनपर्यंत प्रयासरत रहे। उन्होंने 'अभ्युदय' में कई क्रांतिकारी विशेषांक प्रकाशित किए। इनमें 'भगत सिंह अंक' व 'सुभाष चंद्र बोस' विशेषांक भी शामिल हैं। जिसके कारण 'अभ्युदय' के संपादक कृष्णकांत मालवीय को जेल तक जाना पड़ा, 'अभ्युदय' के क्रांतिकारी लेखों में मालवीय जी की छाप दिखाई पड़ती थी।

गांवों से संबंधित विषयों को समाचार पत्र में स्थान देने के अलावा लेखकों को मानदेय देने का प्रचलन भी मालवीय जी ने ही प्रारंभ किया था। 'अभ्युदय' में प्रकाशित पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेख के साथ ही उन्होंने लेखकों को मानदेय देने की शुरूआत की थी। उनका यह कार्य इसलिए भी प्रशंसनीय था क्योंकि उस समय 'अभ्युदय' की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं थी।

हिन्दोस्थान

हिन्दोस्थान 19 वीं सदी में कालाकांकर रियासत से प्रकाशित होने वाला एक दैनिक समाचार पत्र था। कालाकांकर नरेश राजा रामपाल सिंह ने नवंबर, 1858 ई. में आपने कालाकाँकर से ही 'हिंदोस्थान' नाम का हिंदी दैनिक निकाला जिसका साप्ताहिक अंग्रेजी संस्करण भी इसी नाम से निकलता था। इन दोनों पत्रों के संपादक राजा रामपाल सिंह स्वयं ही रहे परंतु संपादन का काम पं. मदनमोहन मालवीय, पं. प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त आदि करते थे। अंग्रेजी साप्ताहिक के संपादन के लिए आप एक अँगरेज सहकरी को इंग्लैंड से लाए थे। 'हिंदोस्थान' में शब्दों की वर्तनी सामान्य से भिन्न रहती थी, जैसे 'जितना' को 'ज्यतना', 'कितना को 'क्यतना', 'मैनेजर' को 'म्यनेजर'।

कवि वचन सुधा

कवि वचन सुधा भारतेन्दु हरिशचंद्र द्वारा सम्पादित एक हिन्दी समाचारपत्र था। इसका प्रकाशन 15 अगस्त 1867 को वाराणसी आरम्भ हुआ जो एक क्रांतिकारी घटना थी। यह कविता-केन्द्रित पत्र था। इस पत्र ने हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता को नये आयाम प्रदान किए। हिन्दी के महान समालोचक डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं- 'कवि वचन सुधा का प्रकाशन करके भारतेन्दु ने एक नए युग का सूत्रपात किया।'

आरम्भ में भारतेन्दु 'कवि वचन सुधा' में पुराने कवियों की रचनाएँ छापते थे, जैसे चंद बरदाई का रासो, कबीर की साखी, जायसी का पद्मावत, बिहारी के दोहे, देव का अष्टयाम और दीनदयालु गिरि का अनुराग बाग। लेकिन शीघ्र ही पत्रिका में नए कवियों को भी स्थान मिलने लगा। पत्रिका के प्रवेशांक में भारतेन्दु ने अपने आदर्श की घोषणा इस प्रकार की थी -

खल जनन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै।
अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै।।
बुध तजहि मत्सर, नारि नर सम होंहि, जग आनंद लहै।
तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै।

'कवि वचन सुधा' में साहित्य तो छपता ही था, उसके अलावा समाचार, यात्रा, ज्ञान-विज्ञान, धर्म, राजनीति और समाज नीति विषयक लेख भी प्रकाशित होते थे। इससे पत्रिका की जनप्रियता बढ़ती गई। लोकप्रिया इतनी कि उसे मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक कर दिया गया। प्रकाशन के दूसरे वर्ष यह पत्रिका पाक्षिक हो गई थी और 5 सितंबर, 1873 से साप्ताहिक।

कवि वचन सुधा के द्वितीय प्रकाशन वर्ष में मस्टहेड के ठीक नीचे निम्नलिखित पद छपता था -

निज-नित नव यह कवि वचन सुधा सकल रस खानि।
पीवहुं रसिक आनंद भरि परमलाभ जिय जानि।
सुधा सदा सुरपुर बसै सो नहिं तुम्हरे जोग।
तासों आदर देहु अरु पीवहु एहि बुध लोग।

भारतेन्दु की टीकाटिप्पणियों से अधिकरी तक घबराते थे और 'कविवचनसुधा' के 'पंच' पर रुष्ट होकर काशी के मजिस्ट्रेट ने भारतेन्दु के पत्रों को शिक्षा विभाग के लिए लेना भी बंद करा दिया था। सात वर्षों तक 'कविवचनसुधा' का

संपादक-प्रकाशन करने के बाद भारतेन्दु ने उसे अपने मित्र चिंतामणि धड़फले को सौंप दिया और 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' का प्रकाशन 15 अक्टूबर, 1873 को बनारस से आरम्भ किया। 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के मुखपृष्ठ पर उल्लेख रहता था कि यह 'कविवचनसुधा' से संबद्ध है।

आज

आज हिन्दी भाषा का एक दैनिक समाचार पत्र है। इस समय 'आज' वाराणसी, कानपुर, गोरखपुर, पटना, इलाहाबाद, तथा रांची से प्रकाशित हो रहा है। इस पत्र की स्थापना भारत के महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी शिव प्रसाद गुप्त ने 5 सितम्बर 1920 को की थी। कुछ वर्षों (1943 से 1947 तक) को छोड़कर पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर 1920 से 1955 तक 'आज' के सम्पादक रहे।

हिन्दी-समाचार पत्रों के इतिहास में 'आज' का प्रकाशन उल्लेखनीय घटना थी। काशी के बाबू शिवप्रशाद गुप्त हिन्दी में ऐसे दैनिक पत्र की कल्पना लेकर विदेश भ्रमण से लौटे (1919 ई) जो 'लन्दन टाइम्स' जैसा प्रभावशाली हो। गुप्तजी ने ज्ञानमण्डल की स्थापना की और 5 सितम्बर 1920 ई. को 'आज' का प्रकाशन हुआ और प्रकाशजी इसके प्रथम सम्पादक बने। 1924 ई से लेकर 13 अगस्त 1942 ईं तक पराड़करजी 'आज' के प्रधान सम्पादक रहे। इन तीन दशकों में 'आज' और पराड़करजी ने हिन्दी पत्रकार-कला को नया स्वरूप, नई गति और नई दिशा प्रदान की। 'आज' ने हिन्दी पत्रकारिता का मानदण्ड स्थापित किया। दिल्ली से काशी तक अपना हिन्दी दूरमुद्रण यन्त्र लगाने वाला यह पहला पत्र था। 'आज' ने हिन्दी को अनेक नये शब्द प्रदान किए। इनमें सर्वश्री, श्री, राष्ट्रपति मुद्रास्फीति, लोकतन्त्र, स्वराज्य, वातावरण, कार्रवाई, अन्तर्राष्ट्रीय और चालू जैसे शब्द हैं। लोकमान्य तिलक की प्रेरणा से जन्मा 'आज' महात्मा गाँधी के आन्दोलनों का अग्रदूत बना। सत्यग्रहियों की नामावलियों को छापने का साहस केवल 'आज' ने किया। ब्रिटिश शासनकाल में सरकार के कोप व दमन के कारण 'आज' का प्रकाशन रुका तो साइक्लोस्टाइल में 'रणभेरी' का प्रकाशन कर पराड़करजी ने राष्ट्रीय जागरण की गति को मन्द पड़ने नहीं दिया।

'आज' के अग्रलेखों और टिप्पणियों ने 'आज' के महत्त्व को बढ़ाया। 'आज' के अग्रलेख लेखकों में सर्वश्री सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव और श्रीप्रकाश भी थे। सन् 1930 के बाद पं कमलापति त्रिपाठी भी सम्पादकीय लेखकों में शामिल हो गए। पराड़करजी तथा कमलापतिजी के प्रभावी अग्रलेखों

ने इस पत्र को हिन्दी का श्रेष्ठ दैनिक बना दिया। भाषा तथा शैली की दृष्टि से भी 'आज' ने असंख्य पाठकों को अच्छी हिन्दी सिखाई। 'आज' में 'खुदा की राह पर' शीर्षक से नियमित व्यंग्य का स्तम्भ रहता था जिसके लेखकों में सूर्यनाथ तकरु और बेढब बनारसी प्रमुख थे। 'आज' से बेचन शर्मा 'उग्र' का साहित्यिक जीवन प्रारम्भ हुआ। 'उग्र' इसमें व्यंग्य लिखते थे। प्रेमचन्द, जयशंकरप्रसाद, डॉ. भगवानदास जैसे मनीषी भी इसमें लिखते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन और समाज सुधार का यह प्रबल समर्थक रहा है। 'आज' में वर्मा, थाइलैण्ड, मारिशस स्थित संवाददाताओं के समाचार नियमित रूप से छपते रहते हैं। गाँव की चिठ्टी, चतुरी चाचा की चिठ्ठी इसके विशेष गोचर रहे हैं। जिलों और नगरों के विशेष संस्करण निकालना 'आज' की अपनी विशेषता है। 'आज' के सम्पादकों के नाम हैं- सर्वश्री प्रकाश, बाबूराव विष्णु पराडकर, कमलापति त्रिपाठी, विद्याभास्कर, श्रीकांत ठाकुर, रामकृष्ण रघुनाथ बिडिलकर। वर्तमान में शार्दूल विक्रम गुप्त इस पत्र के सम्पादक हैं।

वर्तमान साहित्य

वर्तमान साहित्य हिन्दी की एक पत्रिका है। यह 'साहित्य, कला और सोच की पत्रिका' (मासिक) के रूप में प्रकाशित होती रही है। कुछ समय के लिए यह पत्रिका त्रैमासिक भी हुई थी। 'वर्तमान साहित्य' ने तीन दशक से अधिक समय तक एक सफल पत्रिका के रूप में प्रकाशित होते रहने की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है।

सम्पादन एवं प्रकाशन

'वर्तमान साहित्य' का प्रकाशन एक मासिक साहित्यिक पत्रिका के रूप में सन् 1984 में इलाहाबाद से आरंभ हुआ। इसके संस्थापक संपादक विभूति नारायण राय हैं। बाद में इसका प्रकाशन '109, रिछपालपुरी, पोस्ट बॉक्स नं.13, गाजियाबाद-1' से होने लगा। लंबे समय तक इस पत्रिका के संपादक मंडल में से.रा. यात्री, विभूतिनारायण राय, ओम प्रकाश गर्ग, हरीशचन्द्र अग्रवाल, सूरज पालीवाल एवं प्रियदर्शन मालवीय शामिल रहे हैं। काफी समय तक कविता संबंधी क्षेत्र में इसे लीलाधर मंडलोई एवं संस्कृति क्षेत्र हेतु अजीत राय का विशेष सहयोग मिलता रहा है। लम्बे समय तक इसके प्रबंध संपादक रघुनाथ शर्मा के साथ घनश्याम मुरारी श्रीवास्तव भी रहे। काफी समय तक इसका प्रकाशन इसके

संपादकीय कार्यालय 'यतेंद्र सागर, प्रथम तल 1-2, मुकुंद नगर, हापुड़ रोड, गाजियाबाद-1' से होते रहा है। बाद में कुँवरपाल सिंह भी इसके संपादक रहे। नमिता सिंह ने भी इसका सम्पादन किया। अजय बिसारिया एवं राजीवलोचन नाथ शुक्ल सह-संपादक के रूप में जुड़े। डॉ. राजीव श्रीवास्तव प्रबंध-संपादक रहे। इसका प्रकाशन '28, एमआईजी, अवन्तिका-प, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001' के पते से होने लगा। इस समूह के बाद पुनः विभूतिनारायण राय ही मुख्य संपादक एवं प्रकाशक रहे तथा इसका संपादन नोएडा से और प्रकाशन पूर्ववत् अलीगढ़ से होते रहा। भारत भारद्वाज भी कार्यकारी संपादक के रूप में इससे जुड़े।

बीच में कुछ समय के लिए इस पत्रिका की निरंतरता बाधित भी हुई थी तथा इसकी आवर्तिता में भी परिवर्तन हुआ था। सामान्यतः यह मासिक पत्रिका रही है, परंतु सन् 1993 से '94 तक में कहानी, कविता, आलोचना एवं महिला लेखन पर केंद्रित महाविशेषांकों की शृंखला के कारण इसको काफी आर्थिक क्षति भी पहुँची तथा निरंतरता बाधित हो गयी। अप्रैल '93 के बाद 8 महीने तक इस मासिक पत्रिका का कोई अंक नहीं आ पाया था। फिर मई-दिसंबर 1993 अंक के रूप में इसका 'आलोचना विशेषांक' प्रकाशित हुआ। सन् 1994 के भी अंत में जनवरी-दिसंबर '94 अंक के रूप में इसका 'महिला लेखन विशेषांक' प्रकाशित हुआ। सन् 1995 में इसका प्रकाशन बाधित रहा। 1996 से कुछ वर्षों तक यह त्रैमासिक रूप में पुनः अपने मूल उद्‌गम स्थल इलाहाबाद से प्रकाशित हुई थी। भारत भारद्वाज के शब्दों में 'पिछले वर्षों प्रकाशित महाविशेषांक, विशेषांकों की शृंखला ने भले ही वर्तमान साहित्य की आर्थिक कमर तोड़ दी है, पत्रिका की आवृत्ति (फिलहाल त्रैमासिक) भी बदल गई है, पत्रिका फिर अपने मूल उद्‌गम-स्थल इलाहाबाद पहुँच गई है, लेकिन न पत्रिका का तेवर बदला है और न संपादकीय चयन दृष्टि। स्तर भी बरकरार है।...'वर्तमान साहित्य' अभी भी हिंदी की दो-तीन श्रेष्ठ लघुपत्रिकाओं में से एक है। रचनाओं की स्तरीयता के कारण ही नहीं, विविधता के कारण भी।' इसके बाद पत्रिका पुनः मासिक रूप में नियमित हो गयी तथा इसका प्रकाशन पूर्वोक्त संपादक एवं प्रबंधक समूह द्वारा यतेंद्र सागर, गाजियाबाद से होने लगा।

'1983 में जब यह पत्रिका निकली थी, 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'सारिका' और 'दिनमान' जैसी पत्रिकाएँ बंद होने की कगार पर थीं। 'कल्पना'

पहले ही बंद हो चुकी थी। 'हंस' (संपादक राजेन्द्र यादव) का पुनः प्रकाशन शुरू नहीं हुआ था। 'नया ज्ञानोदय', 'कथादेश', 'वागर्थ', 'परिकथा', 'पाखी' आदि पत्रिकाएँ तो बाद में निकलीं। ऐसी स्थिति में 'वर्तमान साहित्य' का प्रकाशन साहित्यिक परिदृश्य पर एक सार्थक हस्तक्षेप था।'

महत्त्वपूर्ण विशेषांक

अपनी लम्बी सर्जनात्मक यात्रा में समय-समय पर 'वर्तमान साहित्य' के अनेक विशेषांक प्रकाशित हुए। इनमें से अनेक विशेषांक अपने वृहद् आकार-प्रकार के कारण 'महाविशेषांक' की श्रेणी में आते हैं। अनेक महाविशेषांक प्रकाशित कर 'वर्तमान साहित्य' ने अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है।

कहानी महाविशेषांक

'वर्तमान साहित्य' के अप्रैल एवं मई 1991 के दो अंकों के रूप में दो खंडों में नियोजित वृहदाकार 'कहानी महाविशेषांक' का प्रकाशन हुआ था, जिसके अतिथि संपादक थे रवीन्द्र कालिया। इसे 'कहानी पर केंद्रित बीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा आयोजन' कहा गया था। इसमें नयी-पुरानी पीढ़ी के अड़सठ कहानीकारों की कहानियाँ समायोजित की गयी थीं। इसके दोनों खंडों में कहानियों पर केंद्रित कुल चार समीक्षात्मक आलेख थे। सुरेन्द्र चौधरी के 'उत्तर शती की कथा यात्रा' तथा उपेन्द्रनाथ अश्क के 'महिला कथा लेखन की अर्धशती' जैसे आलेखों के साथ परमानन्द श्रीवास्तव एवं शुकदेव सिंह के कहानी के 50 साल की यात्रा पर सर्वेक्षणपरक आलेख थे। इसमें पर्याप्त ऐसी कहानियाँ थीं जो लंबे समय तक चर्चित रहीं।

कविता विशेषांक

'वर्तमान साहित्य' के अप्रैल-मई 1992 (संयुक्तांक) के रूप में 'कविता विशेषांक' का प्रकाशन हुआ था। इसके अतिथि संपादक राजेश जोशी थे। समकालीन कविता की चार पीढ़ियों के कवियों के साथ कुछ अन्य वैचारिक सामग्रियों को समेटे 364 पृष्ठों का यह विशेषांक 'समकालीन कविता की प्रवृत्तियों की सही पहचान की दिशा में एक सार्थक प्रयास था'।

आलोचना विशेषांक

'वर्तमान साहित्य' के मई-दिसंबर 1993 (संयुक्तांक) के रूप में 'आलोचना विशेषांक' का प्रकाशन हुआ था। कुल 125 पृष्ठों के सामान्य आकार के इस विशेषांक के अतिथि संपादक थे डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र। यथासाध्य परिश्रमपूर्वक निकाले गये इस अंक में विजयदेव नारायण साही एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी से लेकर शिवकुमार मिश्र, परमानन्द श्रीवास्तव, प्रो. राजनाथ, धनंजय वर्मा, मैनेजर पांडेय, डॉ. रघुवंश, गिरिराज किशोर, मधुरेश एवं रचनाकार शिवमूर्ति तक के विभिन्न विषयों-मुद्दों पर केन्द्रित आलेख समायोजित किये गये थे। अन्य कई महत्त्वपूर्ण सामग्रियों के साथ इसी अंक में विजेन्द्र नारायण सिंह का विवादास्पद आलेख श्आलोचना और आलोचक-चरित्र' भी प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डॉ. रामविलास शर्मा की समीक्षा-दृष्टि की सक्षम एवं सकारात्मक पड़ताल करते हुए भी 'सट्टेबाज' जैसे फूहड़ शब्द का भी प्रयोग कर डाला था। हालाँकि डॉ. शर्मा के लिए यह भी लिखा था कि 'उनकी सट्टेबाजी (पॉलिमिक्स) भी बहुतों की आलोचना से श्रेष्ठतर है।' इसमें उन्होंने नामवर सिंह पर काफी नकारात्मक टिप्पणियाँ की थीं।

महिला लेखन विशेषांक

महाविशेषांकों के क्रम में 'वर्तमान साहित्य' की आर्थिक स्थिति डावाँडोल होते जाने के बावजूद जनवरी-दिसंबर '94 अंक के रूप में 'महिला लेखन विशेषांक' का प्रकाशन हुआ। इसकी अतिथि संपादिका थीं नासिरा शर्मा। उषा प्रियंवदा, सूर्यबाला, सुधा अरोड़ा आदि लेखिकाओं की कहानियों के साथ इसमें जयदेव तनेजा एवं सुधीश पचौरी जैसे लेखकों के आलेख भी संकलित किये गये थे। कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र की 150वीं जयंती पर केंद्रित अंक

'वर्तमान साहित्य' ने फरवरी 1999 में कम्युनिस्ट घोषणापत्र की 150 वर्ष पूरे होने पर विशेषांक प्रकाशित किया। इस विशेषांक के सन्दर्भ में अजय तिवारी ने लिखा है कि 'दूरदर्शन के माध्यम से कुबेर दत्त ने और 'वर्तमान साहित्य' के माध्यम से विभूति नारायण राय ने कम्युनिस्ट घोषणापत्र की 150वीं जयंती को हिंदी के लिए अविस्मरणीय बना दिया। उनके इस कार्य का महत्त्व और बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि वामपंथी लेखक संगठनों ने इस अवसर पर कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया।'

'शताब्दी साहित्य' शृंखला के विशेषांक

इस यात्रा-क्रम में इस पत्रिका द्वारा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य हुआ शताब्दी-विशेषांकों की शृंखला के रूप में। 'हिंदी साहित्यिक पत्रिका के पिछले सौ वर्षों के इतिहास में यह पहली बार संभव हुआ कि किसी पत्रिका ने एक वर्ष के भीतर लगातार पांच विशेषांक...' प्रकाशित किये। बीसवीं शताब्दी के साहित्य एवं कला-माध्यमों पर केन्द्रित इस शृंखला के अंतर्गत 'शताब्दी कथा विशेषांक' (जनवरी-फरवरी 2000), 'शताब्दी पंजाबी साहित्य विशेषांक' (मार्च-अप्रैल 2000), 'शताब्दी कविता विशेषांक' (मई-जून 2000), 'शताब्दी नाटक विशेषांक' (जुलाई-अगस्त 2000), 'बांग्ला साहित्य–शताब्दी विशेषांक' (सितंबर-अक्टूबर 2000), 'शताब्दी सिनेमा विशेषांक' (फरवरी-मार्च 2002), 'शताब्दी आलोचना पर एकाग्रश-1,2,3 (मई, जून, जुलाई 2002), आदि के रूप में उपलब्धियों का एक मानदण्ड कायम कर दिया गया। इन विशेषांकों के स्थायी महत्त्व के कारण पुस्तक-रूप में भी इनका प्रकाशन 'कथा-साहित्य के सौ बरस', 'पंजाबी साहित्य के सौ बरस', 'कविता के सौ बरस', 'नाटक के सौ बरस', 'सिनेमा के सौ बरस', 'आलोचना के सौ बरस' आदि नामों से प्रायः यथावत होते गया।

शताब्दी कथा विशेषांक

बीसवीं शताब्दी के हिन्दी कथा साहित्य पर केन्द्रित 'शताब्दी कथा विशेषांक' का प्रकाशन इस पत्रिका के वर्ष-17, अंक-1-2 (संयुक्तांक), जनवरी-फरवरी 2000 अंक के रूप में हुआ। इसके संयोजक-संपादक के रूप में असगर वजाहत का नाम था परन्तु संपादकीय पत्रिका के संस्थापक संपादक विभूतिनारायण राय ने लिखा था। सह संपादक थे गोबिन्द प्रसाद। इस विशेषांक में हिन्दी कहानी एवं हिन्दी उपन्यास दोनों के विभिन्न आयामों को समेटते हुए अनेक आलेख प्रकाशित किये गये हैं।

हिन्दी कहानी के विभिन्न दौरों तथा स्थितियों को दर्शाने वाले कई आलेख संकलित किये गये हैं। इसमें हिन्दी की पहली कहानी के रूप में अजय तिवारी ने रेवरेंड जे. न्यूटन की कहानी 'जमींदार का दृष्टांत' को विभिन्न तर्कों के साथ प्रस्तुत किया है। सदी के श्रेष्ठ उपन्यासों एवं कहानियों के रूप में 'मील के पत्थर–उपन्यास' शीर्षक के अंतर्गत दस उपन्यासों तथा 'मील के पत्थर–कहानियाँ'

शीर्षक के अंतर्गत दस कहानियों पर केंद्रित विवेचनात्मक आलेख संयोजित किये गये हैं। 'सदी का कथाकार' के रूप में प्रेमचन्द को चुनकर उन पर मैनेजर पांडेय का आलेख दिया गया है। प्रेमचंद की मृत्यु के बाद 'जमाना' से चुनी हुई सामग्री भी लिप्यंतरण सहित प्रस्तुत की गयी है। 'दस्तावेज' के अंतर्गत आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं रामचंद्र शुक्ल तथा निराला के आलेखों के अतिरिक्त 'कफन' का लिप्यंतरण सहित मूल पाठ तथा 'जमींदार का दृष्टान्त' (रेवरेण्ड जे. न्यूटन की कहानी) भी, उसकी प्राप्ति की टिप्पणी सहित, प्रस्तुत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. नामवर सिंह, प्रोफेसर शमीम हनफी, अमरकान्त, कृष्ण बलदेव वैद, राजेंद्र यादव एवं उदय प्रकाश के साक्षात्कार भी समायोजित हैं।

शताब्दी पंजाबी साहित्य विशेषांक

वर्तमान साहित्य की 'शताब्दी साहित्य माला' के अंतर्गत अपेक्षाकृत सबसे लघु आकार के इस विशेषांक (पाठ्य-सामग्री 256 पृष्ठों में) का प्रकाशन 'वर्तमान साहित्य' के मार्च-अप्रैल 2000 अंक के रूप में हुआ। इसके संपादक थे रामसिंह चाहल। इस विशेषांक में पंजाबी साहित्य पर केन्द्रित चार आलेखों के अतिरिक्त चुनी हुई 17 कहानियाँ एवं 38 कवियों की कविताएँ दी गयी हैं। इसके अतिरिक्त एक लघु नाटक के साथ निबंध, डायरी एवं आत्मकथा विधा की एक-एक रचनाएँ तथा चार साक्षात्कारों के साथ पंजाबी कविता पर एक लघु परिचर्चा भी समायोजित की गयी है।

शताब्दी कविता विशेषांक

बीसवीं शताब्दी की कविता पर केंद्रित 'शताब्दी कविता विशेषांक' इस पत्रिका के 'मई-जून 2000' अंक के रूप में प्रकाशित हुआ। इसके संपादक थे सुप्रसिद्ध कवि-समीक्षक लीलाधर मंडलोई तथा सहसंपादक थे गोबिन्द प्रसाद। इस वृहदाकार अंक में शताब्दी के कवि रूप में निराला को चुनकर उन पर केंद्रित बहुमुखी सामग्रियाँ दी गयी हैं। उसके बाद भारतेंदु पर केंद्रित आलेख के साथ-साथ प्रथम दलित कवि हीरा डोम की एकमात्र उपलब्ध सुप्रसिद्ध कविता 'अछूत की शिकायत' पर केंद्रित आलेख के बाद श्रीधर पाठक से लेकर कुंवर नारायण तक विभिन्न महत्त्वपूर्ण कवियों की चुनिंदा कविताओं पर केंद्रित आलेख संयोजित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल की हिंदी कविता के विभिन्न आयामों एवं विभिन्न दौरों को विवेचित करने वाले अनेक आलेख

समायोजित किये गये हैं। साथ ही सुभद्रा कुमारी चौहान एवं महादेवी वर्मा पर केंद्रित आलेखों के अतिरिक्त काव्यभाषा और भावबोध, लम्बी कविताओं की परंपरा, लोकप्रिय हिंदी कविता आदि के साथ 50 बरस की स्त्री कविता तथा दलित कविता आदि विषयों पर केंद्रित आलेख भी संयोजित हैं। इस महाविशेषांक के अंतिम अंश में 13 विद्वानों से की गयी बातचीत भी प्रस्तुत हैं।

शताब्दी नाटक विशेषांक

बीसवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य पर केन्द्रित महाविशेषांकों की श्रृंखला में चौथी कड़ी के रूप में 'शताब्दी नाटक विशेषांक' का प्रकाशन 'वर्तमान साहित्य' के वर्ष 17, संयुक्तांक 7-8 (जुलाई-अगस्त 2000) के रूप में हुआ। नाटक के विभिन्न आयामों पर केन्द्रित इस विशेषांक के संपादक थे अजीत पुष्कल एवं हरीशचन्द्र अग्रवाल। इस महत्त्वपूर्ण विशेषांक में नाटक तथा रंगमंच के विकास पर केन्द्रित विभिन्न विशेषज्ञों के आलेखों के साथ-साथ इप्टा आंदोलन और पृथ्वी थिएटर, जनम, नुक्कड़ नाटक आदि से सम्बद्ध आलेख भी संयोजित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय एवं भारतेन्दु नाट्य अकादमी पर केंद्रित आलेखों के अतिरिक्त लोकनाट्य, रासलीला, रामलीला, नाचा, नौटंकी, विदेशिया शैली, इंद्रासनी, पुतुल कला आदि पर केंद्रित आलेख इसके वैशिष्ट्य में बहुआयामी गुणात्मक वृद्धि करते हैं। विभिन्न क्षेत्रों की रंगयात्रा पर केंद्रित आलेखों के अतिरिक्त 'परदे के पीछे' शीर्षक अनुभाग में रंगकर्म के विभिन्न आयामों को भी विवेचित किया गया है। बकौल संपादक 'हमने कोशिश की है कि हमारा यह अंक रंगकर्मियों को उत्प्रेरित करे। रंगकर्म से जुड़े मुद्दों पर सामग्री देने की पहल की गई है।' अंतिम अंश में 'बतकही' शीर्षक के अंतर्गत नाटक एवं रंगमंच के अनेक विशेषज्ञों के साक्षात्कार भी प्रकाशित किये गये हैं।

बांग्ला साहित्य : शताब्दी विशेषांक

'वर्तमान साहित्य' के शताब्दी साहित्य विशेषांकों की श्रृंखला में पाँचवी कड़ी के रूप में 'बा्ला साहित्य–शताब्दी विशेषांक' (बा्ला साहित्य के सौ बरस) का प्रकाशन वर्ष-17, अंक 9-10 (संयुक्तांक), सितंबर-अक्टूबर 2000 के रूप में हुआ। इसके संपादक थे डॉ. रामशंकर द्विवेदी। कुल 400 पृष्ठों के इस विशेषांक में 9 पृष्ठों के संपादकीय के बाद सर्वप्रथम बा्ला कहानी,

उपन्यास, कविता एवं मंच-नाटक के सौ वर्षों के सर्वेक्षणपरक चार आलेख संपादक डॉ. रामशंकर द्विवेदी द्वारा लिखित हैं। इसके बाद उज्ज्वल कुमार मजूमदार लिखित 'बां्ला निबन्धों की साम्प्रतिक दशा' शीर्षक आलेख भी दिया गया है। इसके बाद अन्नदाशंकर राय, आशापूर्णा देवी एवं विमल कर से साक्षात्कार, समरेश वसु के आत्मकथ्य एवं विमल कर लिखित 'तरुण बंगाली कथाकारों की मानसिकता' शीर्षक समीक्षा आदि का समायोजन हुआ है। पुनः अनेक विशिष्ट कविताओं एवं कहानियों से संवलित इस विशेषांक में सुनील गंगोपाध्याय का आत्मकथांश, शीर्षेन्दु मुखोपाध्याय के उपन्यास 'चक्र' का आरंभिक अंश एवं 'जीवनानन्द समग्र' पर प्रभात कुमार दास द्वारा लिखित 16 पृष्ठों की समीक्षा भी सम्मिलित की गयी है।

शताब्दी सिनेमा विशेषांक

मुख्यतः बीसवीं शताब्दी के हिन्दी सिनेमा पर केंद्रित तथा अंशतः विश्व सिनेमा एवं कुछ अन्य भाषाओं के सिनेमा पर भी दृष्टिपात करने वाला 'वर्तमान साहित्य' का यह 'शताब्दी सिनेमा विशेषांक' (फरवरी-मार्च, 2002) सिनेमा पर केन्द्रित लेखन के क्षेत्र में बहुआयामी एवं बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करता है। इस विशेषांक के अतिथि संपादक हैं मृत्युंजय। इसमें सर्वप्रथम 'दस्तावेज' खंड के अंतर्गत जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, रामवृक्ष बेनीपुरी, मुल्कराज आनंद एवं बलराज साहनी के आलेख दिये गये हैं। इसके बाद विश्व सिनेमा के अंतर्गत आद्यंत प्रासंगिकता के आधार पर विश्व सिनेमा के सर्वश्रेष्ठ 12 फिल्मों का चयन कर उन पर टिप्पणी की गयी है।

'मूल्यांकन' खंड के अंतर्गत ए के हंगल, डॉ. चमनलाल एवं शरद रंजन शरद के आलेख दिये गये हैं जिनमें मुख्यतः हिन्दी सिनेमा की प्रवृत्तियों पर टिप्पणी की गयी है। इस विशेषांक के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खंडों में एक है 'प्रक्रिया' खंड, जिसमें फिल्म निर्माण की प्रक्रिया से संबंधित पूरे दर्जनभर आलेख दिये गये हैं। सत्यजित राय से लेकर चेतन आनंद तक के द्वारा लिखे गये इन आलेखों में फिल्म निर्माण के संदर्भ में ऑफ स्क्रीन की बहुआयामी सामग्री प्रस्तुत हुई हैं। 'कालखंड' शीर्षक खंड के अंतर्गत दो आलेख हैं 'मूक युग गूंगा नहीं था' तथा 'अंतिम दशक की फिल्में... दर्शक का विद्रोह'। यह अंक सिनेमा के संदर्भ में अभिनेता-पक्ष की अपेक्षा निर्देशकीय पक्ष पर केंद्रित है। इसके 'व्यक्तित्त्व' शीर्षक समृद्ध खंड के अंतर्गत कुल 29 लेखों में आरंभिक समय

से लेकर आधुनिक समय तक के कुल 20 निर्देशकों के कार्य एवं उपलब्धियों पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किये गये हैं। 'पहलू' खंड के अंतर्गत सिनेमा के संदर्भ में स्त्री, दलित एवं अपराध विषय पर केंद्रित आलेख दिये गये हैं। 'गीत-संगीत' खंड के अंतर्गत सुप्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु खरे, नन्दकिशोर नंदन, सुमनिका सेठी एवं आचार्य सारथी के आलेख प्रस्तुत किये गये हैं। 'कहानी' खंड के अंतर्गत दो आलेख हैं।

इसके अतिरिक्त कमलेश्वर, मस्तराम कपूर, सागर सरहदी एवं वेद राही लिखित संस्मरण भी संकलित किये गये हैं। शताब्दी के विशिष्ट व्यक्तित्त्व के रूप में बलराज साहनी एवं नूरजहाँ पर केंद्रित आलेख दिये गये हैं। इस अंक में हिन्दी के अतिरिक्त भोजपुरी, मैथिली, हरियाणवी एवं विशेष खंड के रूप में असमिया सिनेमा पर केंद्रित आलेख भी समायोजित किये गये हैं। 'परिशिष्ट' के अंतर्गत दो सूचनात्मक आलेख हैं।

प्रथम आलेख 'सदी की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ' के अंतर्गत 7 जुलाई 1896 को लुमिये ब्रदर्स द्वारा मुंबई के वाटसन होटल में प्रदर्शित 'एराइवल ऑफ ए ट्रेन, दि सी बाथ' तथा 'लेडीज एंड सोल्जर्स ऑन व्हील्स' फिल्मों की सूचना से लेकर सन् 2000 तक की विशिष्ट सिनेमाई घटनाओं की सूचना प्रस्तुत की गयी है। इसी के अंत में 'स्टारडस्ट हीरो होंडा सहस्राब्दी पुरस्कार' के माध्यम से हिन्दी सिनेमा के क्षेत्र में आद्यंत मान्य सर्वोत्तम अभिनेता से लेकर सर्वोत्तम गायिका तक की सूची प्रस्तुत की गयी है। इस खंड के दूसरे आलेख 'साहित्यिक कृतियों पर बनी हिन्दी फिल्में' के अंतर्गत मूल साहित्यिक कृति का नाम, उस पर बनी फिल्म का नाम तथा उसके निर्देशक के नामों की सूची प्रस्तुत की गयी है।

शताब्दी आलोचना पर एकाग्र

'वर्तमान साहित्य' के विशेषांकों कीशृंखला में मील का पत्थर है 'शताब्दी आलोचना पर एकाग्र' महाविशेषांक। इसमें इसके अतिथि सम्पादक अरविन्द त्रिपाठी की आलोचनात्मक अन्तर्दृष्टि एवं व्यवस्थापन क्षमता का उत्तम परिचय मिलता है। तीन खण्डों में प्रकाशित यह महाविशेषांक वस्तुतः इस पत्रिका के तीन अंकों कीशृंखला है। 'वर्तमान साहित्य' के इस शताब्दी आलोचना विशेषांक के तीनों अंक इस पत्रिका के वर्ष-19, अंक-5,6 एवं 7 के रूप में क्रमशः मई, जून एवं जुलाई 2002 ई. में प्रकाशित हुए थे।

इस वृहदाकार आयोजन के प्रथम खण्ड में 'हिन्दी आलोचना के नवरत्न' के रूप में 'आलोचकों के बीच से आलोचना-मूर्धन्यों की खोज करके उनके सम्यक् मूल्यांकन की कोशिश अपने समय में सक्रिय प्रतिष्ठित आलोचकों द्वारा की गई है।' इसी खण्ड में 'प्रमुख आलोचनात्मक और वैचारिक कृतियाँ' शीर्षक अनुभाग के अन्तर्गत ऐसी शीर्ष स्थानीय कृतियों की समीक्षाएँ प्रस्तुत की गयी हैं, 'जिनके बिना आलोचना और विचार की दुनिया आज असंभव है। इन्हीं कृतियों से बीसवीं सदी की हिन्दी आलोचना का परिसर समृद्ध हुआ है।'

इसके द्वितीय खण्ड में 'विवाद और वाद' तथा 'संवाद' शीर्षक अनुभागों में 'ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का विवाद', 'कथा में गाँव बनाम शहर की बहस' तथा आधुनिकता, मार्क्सवाद आदि से सम्बद्ध विषयों-मुद्दों से लेकर रचना, आलोचना के विभिन्न आयामों के साथ 'साहित्य में दलित विमर्श' तथा उत्तर आधुनिकता तक पर श्रेष्ठ आलोचकों-विचारकों के 48 आलेख संकलित किये गये हैं। सुप्रसिद्ध कवि-समीक्षक मदन कश्यप के शब्दों में 'त्रिपाठी ने यहाँ गहरे संपादकीय विवेक का परिचय दिया है और महज इन कुछ आलेखों को इस तरह प्रस्तुत किया है कि सदी की आलोचना का पूरा चेहरा उभर कर आ जाए।' इसी खण्ड के 'मूल्यांकन' अनुभाग में 'छायावाद के पुरस्कर्ता–मुकुटधर पांडेय', रामचन्द्र शुक्ल, नलिन विलोचन शर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, नेमिचन्द्र जैन, नामवर सिंह, देवीशंकर अवस्थी, मलयज तथा निर्मल वर्मा के मूल्यांकन के साथ-साथ 'सदी की नाट्यालोचना' एवं स्त्री आलोचना पर भी आलेख संयोजित किये गये हैं।

इस महाविशेषांक के तृतीय खण्ड में 'साक्षात्कार और वार्तालाप' शीर्षक के अन्तर्गत 18 प्रमुख आलोचकों-विचारकों से प्रखर वैचारिक मुद्दों पर बातचीत समायोजित है। इसके अतिरिक्त इसमें शिवदान सिंह चौहान द्वारा प्रदीप सक्सेना को लिखे गये छह पत्र एवं जगदीश गुप्त का एक पत्र भी संकलित हैं।

अन्य विशेषांक

शताब्दी साहित्य माला के महाविशेषांकों के बाद भी समयानुकूल आवश्यक मुद्दों एवं व्यक्तियों पर विभिन्न अंकों को केंद्रित कर उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करने का कार्य 'वर्तमान साहित्य' के द्वारा जारी रहा है। यशपाल पर केन्द्रित अंक (अक्टूबर-दिसंबर 2003, अतिथि संपादक- कुँवरपाल सिंह) तथा रांगेय राघव पर केंद्रित अंक (फरवरी-मार्च 2005, संपादक- कुँवरपाल सिंह,

नमिता सिंह) आकार-प्रकार से महाविशेषांक ही थे। इसके अतिरिक्त भी सुभद्रा कुमारी चौहान पर केंद्रित अंक (अक्टूबर 2005, संपादक- कुँवरपाल सिंह, नमिता सिंह), जैनेन्द्र कुमार पर केंद्रित अंक (दिसंबर 2005, संपादक- कुँवरपाल सिंह, नमिता सिंह) से लेकर 'दुर्लभ साहित्य विशेषांक'-1,2 (वर्ष 31, अंक 8-9, अगस्त-सितंबर 2014 एवं अंक 10-11, अक्टूबर-नवंबर 2014, संपादक- विभूति नारायण राय, भारत भारद्वाज) तक के रूप में विभिन्न आयामों का समावेश इस पत्रिका के कलेवर में होते रहा है।

आजकल

आजकल भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा लम्बे समय तक हिन्दी एवं उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पत्रिका का नाम है। फिलहाल यह पत्रिका हिन्दी भाषा में भारत सरकार के प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली से प्रकाशित होती है।

यह पत्रिका साहित्यिक अभिरूचि के सामान्य एवं विशिष्ट दोनों वर्गों के पाठकों को ध्यान में रखकर समय-समय पर विविध विषयक विशेषांकों का प्रकाशन करती है। इस पत्रिका के अधिकांश विशेषांक इसके सामान्य अंकों के आकार का ही होता है, बस उसमें प्रकाशित सामग्री संबंधित व्यक्ति या विषय पर केंद्रित होती हैं, परंतु कुछ विशेषांक सामान्य अंकों की अपेक्षा बहुत अधिक पृष्ठ संख्या से युक्त भी होते हैं। उदाहरण के लिए काशी विशेषांक, महादेवी वर्मा जन्मशती विशेषांक, सन् 1857 के स्वतंत्रता-संग्राम पर केंद्रित विशेषांक, दिनकर जन्मशती विशेषांक एवं सिनेमा के सौ वर्ष के नाम लिये जा सकते हैं।

प्रमुख विशेषांक

गालिब विशेषांक (दिसंबर 1997)
देवेन्द्र सत्यार्थी पर केंद्रित (मार्च 1999)
रामवृक्ष बेनीपुरी पर केंद्रित (अगस्त 1999)
गजल विशेषांक (मार्च 2000)
केदारनाथ अग्रवाल पर केंद्रित (सितंबर 2000)
महिला-लेखन पर विशेष (मई 2001)
शैलेश मटियानी पर केंद्रित (अक्टूबर 2001)
रामविलास शर्मा पर केंद्रित (मई 2002)
देवेन्द्र सत्यार्थी पर केंद्रित (मई 2003)

भगवती चरण वर्मा पर केंद्रित (अगस्त 2003)
काशी विशेषांक (फरवरी 2006)
बाल साहित्य पर विशेष (नवंबर 2006)
महादेवी वर्मा जन्मशती अंक (मार्च 2007)
कमलेश्वर पर विशेष (अप्रैल 2007)
1857 के स्वतंत्रता संग्राम पर विशेषांक (मई 2007)
हजारीप्रसाद द्विवेदी पर केंद्रित (अक्टूबर 2007)
बाल साहित्य पर विशेष (नवंबर 2007)
स्त्री विमर्श पर केंद्रित (मार्च 2008)
शास्त्रीय संगीत पर केंद्रित (जुलाई 2008)
स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में (अगस्त 2008)
दिनकर जन्मशती विशेषांक (अक्टूबर 2008)
देवेन्द्र सत्यार्थी पर केंद्रित (दिसंबर 2008)
विष्णु प्रभाकर पर केंद्रित (जुलाई 2009)
बाल साहित्य पर विशेष (नवंबर 2009)
गणतंत्र विशेषांक (जनवरी 2010)
त्रिलोचन विशेषांक (अप्रैल 2010)
उपेन्द्रनाथ अश्क पर केंद्रित (दिसंबर 2010)
सन् 2011 के विशेषांक
कवियों के कवि (शमशेर बहादुर सिंह पर केंद्रित) - जनवरी
फैज जन्मशती विशेषांक - फरवरी
स्त्री-विमर्श - मार्च
अज्ञेय 'अरे यायावर रहेगा याद' (अज्ञेय पर केंद्रित) - अप्रैल
केदारनाथ अग्रवाल पर केंद्रित - मई
नागार्जुन जन्मशती विशेषांक - जून
उदात्त मानवता के मनीषी भगवतशरण उपाध्याय - जुलाई
भुवनेश्वर पर केंद्रित - अगस्त
असरारुल हक मजाज पर केंद्रित - अक्टूबर
गोपाल सिंह नेपाली पर केंद्रित - नवंबर
राधाकृष्ण एवं आरसी प्रसाद सिंह पर केंद्रित - दिसंबर
सन् 2012 के विशेषांक

श्रीलाल शुक्ल पर केंद्रित (फरवरी)
मंटो पर केंद्रित (मई)
विष्णु प्रभाकर पर केंद्रित (जून)
रामविलास शर्मा पर केंद्रित (सितंबर)
सिनेमा के सौ वर्ष (अक्टूबर)
बाल साहित्य पर विशेष (नवंबर)

विज्ञान कथा

विज्ञान कथा हिन्दी की विज्ञानकथाओं को समर्पित एकमात्र त्रैमासिक पत्रिका है, जो भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति फैजाबाद के तत्त्वावधान में यह विगत बारह वर्षों से अनवरत रूप से प्रकाशित हो रही है। इसके मुख्य सम्पादक हैं डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय हैं, जबकि डॉ.अरविन्द मिश्र व श्री हरीश गोयल सह सम्पादक हैं। इसका प्रथम अंक नवम्बर 2002 में प्रकाशित हुआ था।

अरविंद मिश्र, अरविन्द दुबे, देवेन्द्र मेवाड़ी, राजीव रंजन उपाध्याय, जाकिर अली रजनीश, हरीश गोयल, शुकदेव प्रसाद, जीशान हैदर जैदी, मनीष मोहन गोरे, साबिर हुसैन, कल्पना कुलश्रेष्ठ, अमित कुमार, बुशरा अलवेरा, मनोज पटैरिया, इरफान ह्यूमन, डॉ. शशि सिंह, विनीता सिंघल, विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी, प्रज्ञा गौतम पत्रिका के प्रमुख लेखकों में हैं।

आविष्कार

आविष्कार हिंदी की एक विज्ञान पत्रिका है। यह नेशनल रिसर्च डेवलेपमेंट कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित होती है। इसका मुख्य उद्देश्य सूचना का प्रसार करना और नई प्रौद्योगिकी, खोज, नवीनताओं, बौद्धिक संपदा अधिकार से जुड़े मुद्दों आदि के बारे में आम जनता के बीच जागरूकता पैदा करना है और छात्रों, वैज्ञानिकों, तकनीशियनों, उभरते उद्यमियों आदि के बीच खोज, नवीनता तथा उद्यमिता की भावना का विकास करना है। हिन्दी में विज्ञान पत्रिका आविष्कार का प्रकाशन 1971 में शुरू हुआ था। आविष्कार जनहित के चालू मुद्दों के साथ विज्ञान, प्रौद्योगिकी, खोज, नवाचारों और बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दों पर केंद्रित रहता है।

संपूर्ण प्रासंगिक आलेखों के अलावा पत्रिका में भिन्न नियमित कॉलम भी रहते हैं–विविधा, वैज्ञानिकों का बचपन, कुछ रोचक कुछ प्रेरक प्रसंग, विज्ञान

साहित्य चर्चा, बौद्धिक संपदा की बातें, आविष्कार और नवाचार, खेल-खेल में विज्ञान, समाचारिकी और एनआरडीसी की प्रौद्योगिकी-आपके लिए। विविधा कॉलम में भिन्न एसएंडटी विषयों पर छोटे फीचर प्रकाशित होते हैं।

वैज्ञानिकों का बचपन में वैज्ञानिकों, आविष्कारकों, नया करने वालों आदि के बचपन पर आलेख होते हैं ताकि उन परिस्थितियों के बारे में बताया जा सके जहां से वे आगे बढ़े और अपनी सफलता तक पहुँचे। इस पत्रिका में वैज्ञानिकों, आविष्कारकों, नया करने वालों आदि की जीवनी भी प्रकाशित की गई है। कुछ रोचक, कुछ प्रेरक में दिलचस्प और प्रेरक कथाएं कही गई हैं। यह भी वैज्ञानिकों, आविष्कारकों, नया करने वालो आदि पर केंद्रित है। विज्ञान साहित्य चर्चा कॉलम में विज्ञान व तकनालाजी पर आई नई पुस्तक की समीक्षा छपती है। बौद्धिक संपदा की बातें में बौद्धिक संपदा अधिकारों पर विभिन्न विषयों पर चर्चा होती है।

'खेल खेल में विज्ञान' स्कूली बच्चों का एक कॉलम है। इसमें विज्ञान के बुनियादी सिद्धांत समझाए जाते हैं। 'समाचारिकी' में विज्ञान व तकनालाजी के क्षेत्र में प्रगति से संबंधति खबरे प्रकाशित होती हैं। एनआरडीसी की 'प्रौद्योगिकी आपके लिए' उद्यमियों को प्रौद्योगिकी के बारे में अद्यतन जानकारी देती है, जो एनआरडीसी के पास व्यापारीकरण के लिए उपलब्ध है।

अखण्ड ज्योति

अखण्ड ज्योति, भारत की सात से अधिक भाषाओं में प्रकाशित एक मासिक पत्रिका है, जो प्रेरणाप्रद, आध्यात्मिक एवम् सामाजिक विषयों पर विभिन्न समसामयिक लेखों के साथ-साथ जीवन के प्रत्येक विषय से सम्बन्धित समस्या के समाधानों की ओर प्रेरित तथा मार्गदर्शित करती है। अखंड ज्योति संस्थान द्वारा इसे 1938 में शुरू किया गया था। 1950 से ये बिना रुके मथुरा से प्रकाशित हो रही अखिल विश्व गायत्री परिवार के संस्थापक, महान कर्मयोगी पं श्रीराम शर्मा आचार्य इस पत्रिका के संस्थापक हैं। यह व्यापक रूप से सामाजिक मुद्दों, व्यक्तित्त्व विकास और वैज्ञानिक आध्यात्मिकता को कवर करता है। यह अखिल विश्व गायत्री परिवार की मुख्य पत्रिका है।

पत्रिका का उद्घाटन अंक वसंत पंचमी जनवरी 1938 को प्रकाशित किया गया था। आगरा से एक छोटे से परिसर के साथ हिंदी में पत्रिका शुरू की गई थी। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण कच्चे माल की अनुपलब्धता के कारण प्रकाशन को जल्द ही रोकना पड़ा। जनवरी 1940 में 500 प्रतियों के साथ प्रकाशन फिर से

शुरू हुआ। 1941 में यह मथुरा में स्थानांतरित हो गया। तब से आज तक यह बिना किसी रुकावट के जारी है। पत्रिका अब 7 से अधिक भाषाओं में प्रकाशित होती है। प्रकाशकों का दावा है कि इसका प्रचलन 15 लाख से अधिक है।

पत्रिका के पहले संपादक, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक सेनानी और सक्रिय पत्रकार थे। उन्होंने हिंदी दैनिक 'सैनिक' में श्री कृष्णदत्त पालीवाल की सहायता की थी, जहाँ वे दैनिक कॉलम 'मत्त प्रलाप' लिखते थे। उन्होंने प्राचीन हिंदू धर्मग्रंथों के भाष्य सहित तीन हजार दो सौ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। 1990 में, अखिल विश्व गायत्री परिवार की सह-संस्थापक श्रीमती भगवती देवी शर्मा ने संपादन का कार्य संभाला। प्रणव पंड्या, निदेशक, ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान 1994 में इस पत्रिका के मुख्य संपादक बने और अभी भी सेवारत हैं।

भारत दर्शन

न्यूजीलैंड से प्रकाशित 'भारत-दर्शन' इंटरनेट पर विश्व का पहला हिन्दी प्रकाशन था। इसके पश्चात भारत से दैनिक जागरण और तत्पश्चात वेबदुनिया इंटरनेट पर प्रकाशित हुए। भारत दर्शन हिन्दी की एक ऑनलाइन वेब पत्रिका है। यह न्यूजीलैंड से प्रकाशित होने वाली एक हिन्दी साहित्यिक पत्रिका है और हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में प्रयासरत है। इसका ध्येय है उच्च स्तरीय साहित्य व लेखन को बढ़ावा देना व लुप्त होती हुई हिन्दी विधाओं को जीवित रखना है।

भारत-दर्शन का पहला मुद्रित अंक सितंबर 1996 में प्रकाशित हुआ था। पाठकों के असीम स्नेह के चलते इसी अंक का द्वितीय संस्करण अक्टूबर-नवम्बर 1996 प्रकाशित करना पड़ा था। इसके पहले अंक के द्वितीय संस्करण के समय ही इसका आईएसएसएन 1173-9843 ले लिया गया था। भारत-दर्शन का मुद्रण भी पारंपरिक 'ऑफसेट प्रिंटिंग' न होकर 'डिजिटल' था। पहला अंक ए 5 के आकार का, 'श्वेत-श्याम' (Black on White) व 8 पृष्ठ का था। इसके पश्चात पत्रिका द्विमासिक के रूप में प्रकाशित होती रही। इसी बीच 1997 में पत्रिका का इंटरनेट संस्करण भी उपलब्ध करवा दिया गया। लगभग 10 वर्षों तक भारत-दर्शन के दोनों संस्करण एक साथ चलते रहे। 2007 में इसका मुद्रित संस्करण स्थगित कर दिया गया और पूरी ऊर्जा के साथ इसका वेब प्रकाशन

जारी रखा गया। यह पत्रिका इस समय इंटरनेट पर सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली हिन्दी साहित्यिक पत्रिका है। भारत-दर्शन कर्म में विश्वास रखता है और फल की इच्छा किए बिना, अपने नन्हें कदमों से लम्बे रास्ते पर निरंतर आगे बढ रहा है। यदि हिन्दी भाषा के विकास में हम किंचित भी कुछ कर पाए तो अपने प्रयास को सफल समझेंगे।

9

भारत के प्रमुख हिन्दी पत्रकार

प्रताप नारायण मिश्र

भारतेन्दु मंडल के प्रमुख लेखक, कवि, पत्रकार प्रताप नारायण मिश्र (सितंबर, 1856-जुलाई, 1894) पर उनके सहयोगी रहे हिंदी के विद्वान गोपाल राम गहमरी का आत्मीय संस्मरण।

स्व. भारतेन्दु के समकक्ष कवि जिन पं. प्रताप नारायण मिश्र का संस्मरण लिख रहा हूं वे जब मुझे चिट्ठी भेजते थे तब मोटो की तरह ऊपर "खुदादारमचेगमदारंभ" यह वाक्य लिखा करते थे। मिश्र जी उन्नाव जिले के बेल्थर गांव के रहने वाले थे। बाद को कानपुर में आए। उनके वहां कई मकान थे और वहीं 'सतघरा' महल्ले में रहते थे। उनका दर्शन मुझे कालाकांकर में हुआ था। जब मैं 1892 ई. में कालाकांकर नरेश तत्रभवान राजा रामपाल सिंह की आज्ञा से 'हिंदोस्थान' के संपादकीय विभाग में काम करने को पहुँचा, तब वहां साहित्यकारों की एक नवरत्न कमेटी-सी हो गई थी। उस समय वहां पं. प्रताप नारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं. राधारमण चौबे, पं. गुलाबचन्द चौबे, पं. रामलाल मिश्र, बाबू शशिभूषण चटर्जी, पं. गुरुदत्त शुक्ल और स्वयं राजा साहब आदि लोग थे।

मुझसे मिश्र जी का पत्रालाप और पहले से था, लेकिन उनका दर्शन वहीं पहले-पहल हुआ। मैं रात को वहां पहुँचा और बाबू बालमुकुन्द गुप्त के यहां ठहरा था। मेरा उनका (गुप्तजी का) पत्र द्वारा परिचय उसी समय से था जब मैं बंबई में सेठ गंगाविष्णु खेमराज के यहां था और मेरा 'श्री वेंकटेश्वर प्रेस' में काम करते समय 'हिन्दोस्थान' में छपें त्रिपटी के महन्त के आचरण-संबंधी एक लेख

पर गुप्त जी से विवाद हो उठा था। गुप्त जी में यह गुण था कि जो उनकी भूल दिखाता था उस पर वे अनखाते नहीं थे, प्रसन्न होते थे। उसी के फलस्वरूप मुझे राजा साहब के यहां जाना पड़ा था।

जब सवेरे मैं उठकर दातून कर रहा था तभी उनके चौतरे पर चढ़ते हुए खद्दर का बहुत लम्बा कुर्ता और धोती पहने, कंधों पर तेल चुचआते, लंबे बाल लहराते, झूमते हुए एक देवता ने कहा, "तुम्हूं बालमुकुंदवा की तरह सवेरे-सवेरे लकड़ी चबात हो।"

मैं तो उनका रूप, उनकी चाल, उनकी लंबी-ऊंची नाक, उनका उज्ज्वल रूप देखकर धक् से रह गया। उनका रूप निहारने के सिवा मुझे उस समय और कुछ कहते नहीं बना। वे अपनी बात पूरी कर बैठक में चले गए। मैं जल्दी-जल्दी प्रातः क्रिया निपटाकर भीतर गया। जिस खाट पर वे देवता बैठे थे उसी पर मुझे बिठाकर नम्रता से बोले- "आपने मुझे पहचाना न होगा। मेरा एक बौड़म कागज है, जो हर महीने आपके यहां भी जाया करता है। उसका नाम 'ब्राह्मण' है।"

इसके आगे उनको कुछ कहने की जरूरत ही नहीं रही। मैंने उठकर सादर प्रणाम किया, लेकिन उन्होंने फिर से उसी सम्मान से बिठाकर अपना स्नेह दिखाया और बाबू बालमुकुंद गुप्त भी, जो इतनी देर से मुस्कराते हुए 'हिंदोस्थान' का आलेख लिख रहे थे, समालाप में शामिल हुए। उसी दिन पंडित जी का मुझे पहले-पहल साक्षात् दर्शन हुआ था। तब से मेरे ऊपर मिश्र जी का स्नेह बहुत बढ़ा, वे मुझे अपने लड़के की तरह प्यार करने लगे। उनके साथ में कालाकांकर के जंगलों में बहुत घूमता था। वहां स्वास्थ्यकर वायु के सिवा मकोय खाने को खूब मिलता था। मैं घूमने का सदा से आदी हूं।

अपराह्न का समय हम लोगों का कालाकांकर के जंगलों में ही बीतता था। 'हिंदोस्थान' दैनिक 'आज' का आधा केवल चार पेज ही निकलता था। बाबू बालमुकुंद गुप्त अग्रलेख के सिवा टिप्पणियां भी लिखते थे। बाकी समाचार, कुछ साहित्य और स्वतंत्र स्तंभ के लिए मेरे ऊपर भार था। पं. प्रताप नारायण मिश्र 'हिंदोस्थान' पत्र के काव्य भाग के संपादक थे। वे फसली लेखक थे। जब कोई फसल जैसे जन्माष्टमी, पित्रपक्ष, दशहरा, दीपावली, होली आते तब इन अवसरों पर हम लोग उनसे कविता लिया करते थे। पं. राधारमण चौबे और गुलाबचंद जी अंग्रेजी अखबारों का सार संकलन करते थे। इंग्लिशमैन, पायनियर, मार्निंगपोस्ट और सिविल मिलिटरी गजट उन दिनों एंग्लो इंडियन अखबारों में मुख्य थे। उनका मुंहतोड़ जवाब राजा रामपाल सिंह 'हिंदोस्थान' में दिया करते थे।

आजकल हिंदी में दैनिक पत्र बहुत निकलते हैं। काशी, कलकत्ता, दिल्ली, लाहौर, इलाहाबाद आदि से निकलने वाले विशाल हिंदी दैनिक पत्रों के दर्शन जैसे इन दिनों हिंदी पाठकों को हुआ करते हैं, उन दिनों वैसे नहीं थे। हिंदी के प्रेमी दैनिक पत्रों के लिए तरसते थे। मासिक और साप्ताहिक पत्रों के लिए तो हिंदी की दुनिया में कमी नहीं थी, लेकिन दैनिक पत्र तो हिंदी का एक ही 'हिंदोस्थान' ही था।

उसमें एक बड़ी खूबी थी। यह कि वह दैनिक, राजनैतिक विषयों से जैसे भरा-पूरा रहता था, वैसे ही साहित्य से ही संपन्न रहता था। आजकल हिंदी दैनिकों में राजनैतिक लेखों के आगे साहित्यिक विषय काव्य, नाटक आदि की चर्चा बहुत कम रहती है। किसी हफ्ते में एक-दो लेख निकल आते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि राजनीतिक लेख जिस अधिकता से आजकल दैनिकों में निकलते हैं, वैसे इनमें साहित्य के लेखों की अधिकता नहीं देखी जाती।

पं. प्रताप नारायण मिश्र में कई अनोखे गुण थे। कविता उनकी बहुत ऊंचे दर्जे की होती थी। भारतेन्दु ने भी उनके काव्य की बढ़ाई की थी। नाटक और रूपक भी बड़ी ओजस्विनी भाषा में लिखते थे। अपने लेख में जहां जिसका वर्णन करते थे, वहां उसको मानो मूर्तिमान वहां खड़ा कर देते थे। कलिकौतुक नाटक, जुआरी, खुआरी रूपक आदि उनकी लिखी पुस्तिकाओं के पढ़ने वाले इसके साक्षी हैं। बंकिम बाबू के उपन्यासों के अनुवाद उन्होंने हिंदी में किए थे। उनकी पुस्तक बांकीपुर के 'खड्गविलास प्रेस' में छपी है।

उस प्रेस के स्वामी मिश्र जी की पुस्तकों को छापने पर भी उनके प्रचार में उदासीन ही रहे। भारतेन्दुजी की सब पुस्तकों को छापने का अधिभार भी 'खड्गविलास प्रेस' के स्वत्वाधिकारी को है, लेकिन उन पुस्तकों के प्रचार का उद्योग नहीं देखने में आया। भारतेन्दुजी के पुस्तकों का प्रचार तो काशी की नागरी प्रचारिणी ने भी प्रकाशन करके किया, भारत जीवन प्रेस से भी भारतेन्दुजी की पुस्तकें प्रकाशित हुईं, लेकिन मिश्र जी की पुस्तकों का प्रचार आज कहीं नहीं दीख पड़ता। स्कूल और विद्यालयों की कोर्स-बुकों में उनके लेख और कविताओं का प्रचार कुछ हद तक है, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में उनकी कीर्ति लोप सी हो रही है।

पं. प्रताप नारायण मिश्र सत्य भाषी थे। उनके मुंह से भूलकर भी असत्य कभी सुनने को नहीं मिला। वे बड़े निर्भीक और बड़े हाजिर जवाब थे।

कालाकांकर में प्रवाास काल में पितृपक्ष में आग्रह करने पर उन्होंने 'तृष्यन्ताम' शीर्षक से लंबी कविता लिखी। उसमें उन्होंने समाज नीति, राजनीति और धर्म सब भर दिया। उन्होंने कचहरियों की देशा को देखकर उसमें लिखा है-

अब निज दुखहू रोय सकत नाहिं,
प्रजा खरीदे बिन इस्टाम।

पंडित जी अपने कान हिलाया करते थे। जब दो-चार मित्र इकट्ठे होते तब कहने पर पशुओं की तरह कान हिलने लगते थे। हंसी-दिल्लगी में भी कभी झूठ नहीं बोलते थे। एक बार भादों के महीने में वे अपने हाथों में मेंहदी रचाए हुए आए। मैंने पूछा, "पंडित जी, तीज में आप मेंहदी रचाते हैं?" उन्होंने छूटते ही कहा, "अरे भाई! मेंहदी न रचाऊं तो मेहरिया मारन लगे। यह उसी की आज्ञा से तीज की सौगात है।"

मिश्र जी बड़े हंसोड़ थे। कविता तो चलते-चलते करते थे। एक बार कानपुर के मित्र-मंडली के आयोजन से एक नाटक खेला गया। उसमे हिंदी के बड़े-बड़े उद्भट लेखकों ने भाग लिया। शब्दकोषों के रचयिता राधा बाबू भी उसमे थे। प्रसिद्ध कवि और सुलेखक राय देवी प्रसाद पूर्ण का भी उसमें सहयोग था।

मिश्र जी नास बहुत सूंघते थे। सुघनी भरा बेल सदा अपने अंदर खद्दर के कुर्तेवाले पाकेट में रखते थे और जब चाहा बेल निकालकर हथेली पर नास उड़लते और सीधे नाक में सुटक जाते थे। एक बार उसी नाटक में राधा बाबू पियक्कड़ बनकर आये और झूम-झूम कर कहने लगे-

कहां गई मोरि नास की पुड़िया,
कहां गई मेरी बोतल।
जिसको पीके ऐसे चलिहौं,
जै लड्डू कोतल।
चलो दिल्ली चलें हरे-हरे खेतन की सैर करें।

इसे पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने अपने ऊपर ताना समझा। उस समय वे नेपथ्य में मछली बेचने वाली मल्लाहिन का स्वांग भर चुके थे। झट स्टेज पर आकर बोले-

बाम्हन छत्री सभी पियत हैं,
बनिया आगरवाला।
हो मल्लाहिन पिउ लयी तो

क्या कोई हंसेगा साला।

चलो दिल्ली चले हरे-हरे खेतन की सैर करें।

मुंहतोड़ जवाब की कविता सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए।

पंडित जी कविता में अपना उपनाम 'बरहमन' रखते थे, इसी से उन्होंने अपने मासिक पत्र का नाम 'ब्राह्मण' रखा था। उर्दू शायरी भी उनकी बड़ी चुटीली होती थी। उन्होंने नीचे लिखी पुस्तकें लिखी हैं-

श्रृंगार बिलास, मन की लहर, प्रेम प्रश्नावली, कलिकौतुक रूपक, कलिप्रभाव नाटक, हठी हमीर, गौ संकट, जुआरी-जुआरी, लोकोक्ति शतक, दंगल खंड, रसखान शतक, तृष्यन्ताम्, ब्राडला स्वागत, भारत दुर्दशा, शैव सर्वस्व, मानस विनोद, वर्णमाला, शिशु विज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा, प्रताप संग्रह।

और नीचे लिखी पुस्तकों का अनुवाद किया-

राजसिंह, इंदिरा, युगलांगुलीय, सेनवंश व सूबे बंगाल का इतिहास, नीतिरत्नावली, शाकुन्तल, वर्ण परिचय, कथावल संगीत, चरिताष्टक, पंचामृत।

कालाकांकर प्रवास में उन्होंने ब्राडला-स्वागत और तृष्यन्ताम् नाम से कविताएं लिखी थीं।

मिश्र जी हिंदी की दीन-दशा पर बड़ा दुख करते और साथ ही बंगला उन्नतावस्था पर बहुत प्रसन्न होते थे। वे कहा कहते थे कि देशी भाषाओं में बंग भाषा का साहित्य पर खूब भूरा-पूरा है। इसका कारण यह है कि उसके लेखक धनी-मनी और समृद्धशाली तथा ऊंचे पदों पर पहुँचकर भी अपनी मातृभाषा के प्रचार का खूब उद्योग करते हैं। उसके लेखक अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में ऊंचा ज्ञान प्राप्त कर उन-उन भाषाओं के सब उपयोगी विषय अपनी मातृभाषा में लाकर साहित्य भण्डार भरने में सदा सहायक होते हैं। उस भाषा के पाठक भी बहुत हैं। उन दिनों बंग भाषा में 'दैनिक चन्द्रिका' निकलती थी। उसमें समाचार और राजनैतिक लेखों के सिवा साहित्यिक लेख भी खूब होते थे। पंडित जी ने राजा रामपाल सिंह को वही दिखाकर 'हिंदोस्थान' में साहित्य स्तम्भ का कालम सन्निवेश कराया था।

पंडित जी कहा करते थे- भारतेन्दु के पास धन था। उनकी कीर्ति धन-बल से ही थोड़े ही दिनों में खूब फैली। मेरे पास भी रुपया होता तो मैं भी हिंदी में बहुत कुछ काम करता। हिंदी में पाठकों की संख्या इतनी कम है कि उनके भरोसे कोई ग्रंथकार उत्साहित होकर आगे नहीं बढ़ सकता। वे दिन भी कभी आएंगे जब हिंदी के पाठक बंगला के पाठकों की तरह खूब बढ़ेंगे, जिनके

भरोसे हिंदी के ग्रंथकार फलेंगे-फूलेंगे और उदर-भरण की चिंता से मुक्त होकर हिंदी में ग्रंथ-रत्न संग्रह करके गरीबिनी हिंदी को उन्नत करेंगे। शायद मेरे मरने के बाद वे दिन आयें। कालाकांकर के जंगल में घूमते हुए एक बार मुझसे उन्होंने कहा था- "बच्चा, मेरे पास एक अनमोल वस्तु है। जिसे मैंने बेदाम लिया है, लेकिन उसकी तुलना में संसार की दौलत भी पलड़े पर रखी जाए तो वह हल्की होगी। उसको हम भी बेदाम देने को तैयार हैं, लेकिन कोई लेने वाला नहीं मिलता।" मैं अचकचाकर उनका मुंह ताकने लगा और पूछा, "वह कौन सी चीज है, पंडित जी? जरा मुझे भी बताइए।"

पंडित जी ने कहा, "यों नाम जानकर क्या करोगे? तुम लेते हो तो अलबत्ते मैं देने को तैयार हूं।" मैंने कहा, "इतना महान पदार्थ, जिसकी तुलना में दुनिया भर की संपत्ति हल्की है, मैं भला कहीं पा सकता हूं।"

पंडित जी बोले, "नहीं, वह कोई ऐसी भारी या नायाब चीज नहीं है, जिसके बोझ से तुम पिस जाओगे। वह संसार में अतुलनीय है और अनमोल होने पर भी ऐसी है कि जो जब चाहे ले ले। उसमें कुछ दाम नहीं लगेगा, न कुछ बोझ ही उठाना पड़ेगा।"

मैं तो बिल्कुल न समझकर अचरज में आ गया। कहा, "अगर मेरे साध्य का हो, मैं ग्रहण कर सकता हूं तो ऐसा अनमोल पदार्थ लेने को तैयार हूं।" उन्होंने भूत झाड़ने वाले ओझाओं की तरह अकड़कर कहा, "ले बच्चा! ये सत्य भाषण है।" मैं तो सकते में आ गया। और कुछ देर तक विस्मय में पड़े रहकर फिर बोला, "पंडित जी, है तो जरूर यह अनमोल और जगत में इसकी तुलना में कुछ भी नहीं है, लेकिन बहुत ही कठिन ही नहीं, बल्कि असाध्य भी है।" उन्होंने कहा, "नहीं बच्चा! यह असाध्य नहीं और कष्ट साध्य भी नहीं। तुम चाहो तो बड़ी सुगमता से इसे सिद्ध कर लोगे।"

मैंने कहा, "पंडित जी! रात-दिन मैं झूठ बोला करता हूं। यहां तक कि बेजरूरत झूठ बोलने की बान-सी पड़ गई है। जिसका झूठ तो ओडन-डासन और चबैना है वह कैसे सत्य भाषण कर सकता है?" उन्होंने उसी दम से कहा, "इसका रास्ता मैं बताए देता हूं। तुम आज से ही मन में सत्य बोलने की ठान लो और जब मुंह से इच्छा या अनिच्छा से झूठ बोल जाओ तब याददाश्त लिख लिया करो और मुझे संध्या को बतला दिया करो कि आज इतना झूठ बोला। बस, इसके सिवा और कुछ भी उपाय दरकार नहीं है।"

मैं उस घटना के बाद वाले अपने अनुभव से कहता हूं, उनकी ये बात बिल्कुल सत्य है। उस दिन से मैं नम्बर लिखने लगा और महीने भर नहीं बीता कि अभ्यासवश अनजाने अर्थात इच्छा विरुद्ध जो झूठ निकल जाता था वही रह गया था। स्वयं अपने मन में रुकावट हो गई और मैं उनका इस विषय में चेला हो गया।

एक बार राजा रामपाल सिंह 'हिंदोस्थान' पत्र के लिए अग्रलेख लिखा रहे थे। जो कुछ वे बोले जाते थे उसको लिखने में जो उनसे दोबारा कुछ भी पूछता था उस पर बहुत बिगड़ उठते थे। मैं तेज लिखता था। इस काम के लिए वे सदा मुझे बुलाया करते थे। सफर में भी मुझे साथ रखते थे। एक बार वे अशुद्ध बोल गए, लेकिन मैंने शुद्ध लिख लिया। जब समाप्त होने पर सुनने लगे तो जहां मैंने सुधारकर लिखा था उसको सुनते ही अशुद्ध कहकर उसे सुधारने को कहा। पंडित जी वहीं बैठे थे। उन्होंने कहा कि लड़के ने शुद्ध लिखा है। इस पर राजा साहब बिगड़कर पंडित जी से बोले, "आप बड़े गुस्ताख हैं।" पंडित जी ने छूटते ही कहा, "अगर सच्ची बात कहना आपके दरबार में गुस्ताखी है तो मैं सदा गुस्ताख हूं।" राजा साहब को और क्रोध आया और गर्म होकर बोले, "निकल जाव यहां से।"

पंडित जी बोले, "हम यहां से चले।" यह कहकर उसी दम बारादरी से उठे और चले गए। फिर कभी उनके यहां नहीं गए। और थोड़े दिन में अपना हिसाब चुकाकर कानपुर चले गए। बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं. रामलाल मिश्र आदि किसी की भी बात उन्होंने नहीं सुनी।

पंडित जी कभी स्नान नहीं करते थे। मित्रों के आग्रह करने पर टाल जाते थे। जब कभी कोई त्योहार या बड़ा पर्व आता, बहुत उद्योग करने पर कभी-कभी स्नान कर लेते थे। कालाकांकर में उनके डेरे के सामने ही थोड़ी दूर पर गंगा जी बहती थीं, लेकिन अपने मन में उन्होंने कभी स्नान नहीं किया। जब मित्र-मंडली उनको स्नान कराने पर तुल जाती थी तब भी बड़ा समर लेना पड़ता था।

एक बार उन्हें लोग टांगकर गंगा तट पर ले गए। किनारे जाकर भी भागने लगे। तब सबने उन्हें उठाकर गंगा में फेंकना चाहा। उन्होंने कहा, "अच्छा गंगा में ऐसा डालना कि मेरा पांव पहले गंगा में न पड़कर मस्तक ही पड़े।" तब वैसा ही किया गया। कालाकांकर में मिश्र जी को तीस रुपये मासिक दिए जाते थे। उस समय वह तीस रुपया उनके निर्वाह के लिए काफी थे। कानपुर से मकानों

का किराया आया करता था। पंडित जी के कालाकांकर में रहते समय पंडित श्रीधर पाठक की पुस्तक 'एकान्तवासी योगी' का प्रकाशन हुआ और खड़ी बोली में व्यवहृत हो इस पर बड़ा विवाद छिड़ा। 'हिंदोस्थान' में 'स्वतंत्र स्तंभ' नाम का एक अलग कालम था। उसमें खड़ी बोली की कविता के पक्ष और विपक्ष के लेख सालाना प्रकाशित किए जाते थे।

पाठक जी के पक्ष में मुजफ्फरपुर की कलक्टरी के पेशकार बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री मुख्य थे। उन्होंने विलायत से सुंदरतापूर्वक खड़ी बोली काव्य छपवाकर यहां मंगाया और बिना मूल्य वितरित किया। खड़ी बोली की कविता का प्रचार ही उनका मुख्य उद्देश्य था। इसके सिवा गढ़वाल के पं. गोविंद प्रसाद मिश्र खड़ी बोली में कविता करके उत्साह बढ़ाते थे। लेकिन विपक्ष में बड़े-बड़े प्रभावशाली कवियों ने कलम उठाए थे।

पं. प्रताप नारायण मिश्र खड़ी बोली की कविता के विरोधियों में प्रधान थे। लखनऊ के 'रतिक पंथ' के संपादक से लेखक व सुकवि पं. शिवनाथ शर्मा भी खड़ी बोली की कविता के विरोधी थे। लेकिन राष्ट्रभाषा के प्रचार को और जिस भाषा का साधारण बोल-चाल में प्रचार है उसको कविता में भी अधिकार देना उसकी और राष्ट्रभाषा दोनों की उन्नति के लिए परमावश्यक है, इस विचार से प्रेरित होकर सबको खड़ी बोली की कविता के आगे अवनत होना पड़ा। इसके सिवा पं. श्रीधर पाठक ने भी यह सत्य प्रमाणित कर दिया कि उत्तम और रोचक लालित्य पूर्ण कविता करना कवि की शक्ति पर निर्भर है, भाषा पर नहीं।

तब पंडित जी ने राष्ट्रभाषा की उन्नति का ध्यान करके कह दिया, "अच्छी बात है। आप कविता कर चलिए। मैं भी उस पर रोड़ा-कंकड़ फेंकता चलूंगा। लेकिन, याद रखिए, यह सड़क ऐसी सुंदर नहीं बनेगी कि कवि की निरंकुश शक्ति बेरोक-टोक दौड़ सके।"

पाठक जी ने कहा, "हम इंजीनियरों को आप जैसे कंकड़ फेंकने वाले खचिवाहों की बहुत जरूरत है। आप उसे फेंकते चलिए। देखिएगा, यह सड़क ऐसी सुंदर और उत्तम बनेगी कि कवि लोग बे-रोक इस पर सरपट दौड़ेंगे।"

मिश्र जी की आत्मा स्वर्ग लोक से यह देखकर खूब प्रसन्न होती होगी कि खड़ी बोली काव्य किस उन्नत दिशा को प्राप्त है और कैसे-कैसे उद्भट कवि इन दिनों हुए हैं जिनकी मर्यादा और काव्य शक्ति के आगे अब बिरले ही किसी कवि की ब्रज-भाषा की कविता में रुचि देखी जाती है। पंडित जी का जन्म

आश्विनी कृष्ण नौमी को संवत 1913 वि. में हुआ था। अड़तालीस वर्ष की उम्र में आप अषाढ़, शुक्ल चौथ को संवत 1951 वि. में परलोकवासी हो गए।

रचनाएँ

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों के महान प्रचारक और व्याख्याता थे। वह प्रेम को परमधर्म मानते थे। हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान उनका प्रसिद्ध नारा था। समाजसुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक हिंदी निबंधों को परंपरा को पुष्ट कर हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिये रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य-पद्य-रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैं–

(क) नाटक–गो संकट, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर। जुआरी-खुआरी (प्रहसन)। संगीत शाकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतम्' का अनुवाद)।

(ख) निबंध संग्रह निबंध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा

(ग) अनूदित गद्य कृतियाँ–राजसिंह, अमरसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुरीय, चरिताष्टक, पंचामृत, नीतिरत्नमाला,बात

(घ) कविता–प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, ब्रैडला स्वागत, दंगल खंड, तृप्यन्ताम्, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

वर्ण्य-विषय

मिश्रजी के निबंधों में विषय की पर्याप्त विविधता है। देव-प्रेम, समाज-सुधार एवं साधारण मनोरंजन आदि मिश्रजी के निबंधों के मुख्य विषय थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में हर प्रकार के विषय पर निबंध लिखे। जैसे - घूरे के लत्ता बीने-कनातन के डोल बांधे, समझदार की मौत है, आप, बात, मनोयोग, बृद्ध, भौं, मुच्छ, ह, ट, द आदि। मिश्रजी 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के कट्टर समर्थक थे, अतः उनकी रचनाओं में इनके प्रति विशेष मोह प्रकट हुआ है।

भाषा

खड़ीबोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्रजी ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्रजी ने भारतेंदु का अनुसरण किया

और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेंदुजी के समान ही मिश्रजी भाषा की कृत्रिमता से दूर रहे। उनकी भाषा स्वाभाविक है। उसमें पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, आदि के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय भाषा और गंभीर हो गई है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्रजी बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी-सी लगा दी है।

शैली

मिश्रजी की शैली वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक है।

विचारात्मक शैली- साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्रजी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट भी मिलता है। इस शैली की भाषा संयत और गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश देखिए-इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है। और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।

व्यंग्यात्मक शैली - इस शैली में मिश्रजी ने अपने हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्रजी की प्रतिनिधि शैली है, जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य-विनोद प्रिय व्यक्ति थे। अतः प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और विनोदपूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ-साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं।

विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। एक उदाहरण देखिए-दो-एक बार धोखा खाके धोखेबाजों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी-फुंदनी जोड़ कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली वरंच 'गुरु गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे।

समालोचना

मिश्रजी भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के मौलिक निबंध लेखक और नाटककार थे। हिंदी गद्य के विकास में मिश्रजी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य शुक्ल जी ने पं. बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्रजी को भी महत्त्व देते हुए अपने हिंदी-साहित्य के इतिहास में लिखा है- पं. प्रतापनारायण मिश्र और पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।

बाबूराव विष्णु पराड़कर

बाबूराव विष्णु पराड़कर (16 नवम्बर 1883 - 12 जनवरी 1955) हिन्दी के जाने-माने पत्रकार, साहित्यकार एवं हिन्दीसेवी थे। उन्होंने हिन्दी दैनिक 'आज' का सम्पादन किया। भारत की आजादी के आंदोलन में अखबार को बाबूराव विष्णु पराड़कर ने एक तलवार की तरह उपयोग किया। उनकी पत्रकारिता ही क्रांतिकारिता थी। उनके युग में पत्रकारिता एक मिशन हुआ करता था। एक जेब में पिस्तौल, दूसरी में गुप्त पत्र 'रणभेरी' और हाथों में 'आज', 'संसार' जैसे पत्रों को संवारने, जुझारू तेवर देने वाली लेखनी के धनी पराडकरजी ने जेल जाने, अखबार की बंदी, अर्थदंड जैसे दमन की परवाह किए बगैर पत्रकारिता का वरण किया। मुफलिसी में सारा जीवन न्यौछावर करने वाले पराडकर जी ने आजादी के बाद देश की आर्थिक गुलामी के खिलाफ धारदार लेखनी चलाई। मराठीभाषी होते हुए भी हिंदी के इस सेवक की जीवनयात्रा अविस्मरणीय है।

सम्पादकाचार्य पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर भारत, भारतीय और भारतीयता के उन्नायक थे। राष्ट्र की मुक्ति और समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए इन्होंने 50 वर्षो तक प्रचंड साधना की। राष्ट्रीय जागरण, राष्ट्रभाषा की गौरव वृद्धि के लिए पराड़कर जी सतत स्मरणीय है।

पराड़कर जी का जन्म काशी के एक मराठा परिवार ने हुआ था। इनके पूर्वज पूना के निवासी थे। इनके पिता विष्णुराव अपनी बाल्यावस्थ्या में ही काशी चले आए। वे बिहार के विभिन्न विद्यालयों में अध्यापक थे। यद्यपि पराड़कर जी ने अक्षर-ज्ञान काशी में प्राप्त किया किन्तु छपरा और भागलपुर में उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा मिली। वे मात्र 15 के ही थे की पिताजी का देहावसान हो गया। पढाई

छोड़कर उन्हें परिवार के भरण-पोषण का मार्ग ढूँढना पढ़ा। कलकत्ता से प्रकाशित "हिंदी बंगवासी" के लिए एक उपसम्पादक का विज्ञापन पराड़कर जी ने कहीं देख लिया। इनके प्रार्थना पत्र को देखकर सम्पादक हरिकृष्ण जौहर ने इन्हे कलकत्ता बुला लिया। कलकत्ता में पराड़कर जी के मामा सखाराम गणेश देउस्कर पहले ही से "हितवती" के प्रधान सम्पादक पद पर कार्यरत थे। मामा के सानिध्य में इनके व्यक्तित्त्व का विकास हुआ। हिंदी, अंग्रेजी और बंगला भाषा में निष्णात होने का स्वर्णिम अवसर पराड़कर जी को कलकत्ता में ही प्राप्त हुआ।

स्वाध्याय की आदत के चलते इनका बौद्धिक विकास हुआ तथा पत्रकरोचित लेखन में इन्हे दक्षता प्राप्त हुई। "हिंदी बंगवासी" के संचालक प्रतिक्रियावादी नीतिवाले थे परिणामस्वरुप पराड़कर जी से मतभेद हो गया और उन्हें पत्र से हटना पड़ा। इसके पश्चात पराड़कर जी "हितवार्ता" के हिंदी संस्करण के संपादन में जुट गए। पत्रकारिता का दायित्व निभाने के साथ वे नेशनल कालेज ने हिंदी और मराठी के अध्यापन का कार्य भी करने लगे। यह कॉलेज क्रन्तिकारी युवकों का केंद्र था जिसके प्राचार्य योगी अरविन्द घोष थे। क्रांतिधर्मिता पराड़कर जी के रग-रग में समां गई। मामा देउस्कर की बंगला पुस्तक "देशेर कथा" के अनुवाद के पराड़कर की मुख्य भूमिका थी। "देश की बात" के प्रकाशन होते ही ग्रंथ जब्त हो गया जबकि मूल पुस्तक की और किसी की दृष्टि नहीं गयी थी।

क्रन्तिकारी युवकों से तादातम्य होने पर पराड़कर जी के विचार प्रखर होते गए जिसका प्रकाशन "भारत मित्र" में होता था। वर्ष 1916 में क्रन्तिकारी पराड़कर गिरफ्तार हुए। राजबंदी के रूप में लगभग साढ़े तीन वर्षो तक वे बंगाल के विविध जेलों में थे। वे अकसर कहा करते थे कि "मैं गुप्त समितियों मैं कार्य करने के लिए ही कलकत्ता गया था, पत्रकार बनने नहीं। पत्रकरिता तो मेरे गले पढ़ गयी।"

वर्ष 1920 में जेल से मुक्त होने पर पराड़कर जी काशी लौट आए तथा ज्ञानमंडल से सम्बद्ध हो गए। राष्ट्ररत्न शिवप्रसाद गुप्त जब विश्व-भ्रमण कर काशी लौटे तो उनके मन में हिंदी में एक सर्वांग सुन्दर दैनिक निकालने कि बात आयी। उन्होंने पराड़कर जी को लोकमान्य तिलक के पास पुणे भेजा ताकि पत्र के लिए निर्देश प्राप्त हो सके। इस सन्दर्भ में पराड़कर जी ने "आज" के पहले अंक में लिखा "यहाँ हम इतना ही कह देना आवश्यक समझते है कि "आज" कि जो नीति निर्धारित की गयी है, उससे स्वर्गवासी लोकमान्य की सहानभूति

थी। लोकमान्य के दर्शन करने तथा पत्र की नीति के सम्बन्ध में आपके उद्देश्य लेने के लिए इसका लेखक गत सौर ज्येष्ठ मास के अन्त में पुणे गया था। उस समय "आज" की नीति के सम्बन्ध में आपसे बहुत कुछ बातें हुई थीं तथा आपने अनेक बहुमूल्य उपदेश भी दिए थे। पर सबसे प्रधान उपदेश यही कि स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करो, लोगों को उनके स्वाभाविक अधिकार बता दो तथा धर्म का कर्त्तव्य पालन करते हुए भी यदि विन उपस्थित हो तो उसकी परवाह मत करो और ईश्वर के न्याय पर विश्वास रखो। यह उपदेश पालन करना हमारे जीवन का उद्देश्य होगा।" पराड़कर जी ने अपनी डायरी में लिखा "ऐसी ही परतन्त्रता" विषनदि, मांगल्याविंध्यवंसिनी।"

मराठी में लिखित उनकी निम्नलिखित पंक्तिया स्वतंत्रता कि महता को प्रतिपादित करती है "मृत जे ज्यानां जिवन्त करिते सुधा, बोलती सारे। मृत राष्ट्राणां जीवतं, करिते स्वतंत्रता अनुभव रे। मृनुनी हयन्तो-स्वतंत्रता ही सुधाची भुलोकिं ची, अथवा जाण सुधा असैती स्वतंत्रता स्वर्गीची।" जिसका मतलब यह है कि मृत व्यक्ति को जीवित करने की शक्ति जिसमें है, उसे लोग अमृत कहते हैं। राष्ट्र को जीवित करने की शक्ति जिसमें है, उसे स्वतंत्रता कहते हैं। स्वतंत्रता पृथ्वी ही नहीं स्वर्ग की भी सुधा है।

इसी स्वतंत्रता की ध्वनि कपन अनुग्रहित करने के लिए पराड़कर जी ने शब्दों में सामर्थ्य भर दिया ताकि बहरे फिरंगियों तक अपनी बातें पहुँचायी जा सकें। लगता है निम्नलिखित पंक्तियों को उन्होंने आजादी के पूर्व अच्छी तरह समझ लिया था- "शब्दों में सामर्थ्य का भरें नया अंदाज। बहरे कानों को हुए अब अपनी आवाज।"

5 सितम्बर, 1920 को "आज" की सम्पादकीय टिप्पणी में उन्होंने लिखा था- "हमारा उद्देश्य अपनी देश के लिए सर्व प्रकार से स्वातंत्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते है। हमारा लक्ष्य है की हम अपने देश के गौरव को बढ़ावें, अपने देशवासियो में स्वाभिमान-संचार करें। उनको ऐसा बनावें कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो यह अभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है।"

यही कारण था की उनकी सम्पादकीय पंक्तिया मंत्रवत सिद्ध हुईं। क्रन्तिकारी पराड़कर जी ने भारत की स्वाधीनता हेतु सर्वस्व अर्पित करने का संदेश नवयुवको को दिया। सन 1920 से 1942 तक काशी के क्रन्तिकारी आंदोलन के अग्रणी नेता वे ही थे। काशी में क्रन्तिकारी दल की स्थापना के मूल

में श्री पराड़कर जी ही थे। आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार वे प्रखर उग्र राष्ट्रवादी थे- "पराड़कर जी उग्र राष्ट्रवादी थे और बंगाल के विप्लववादियों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। काशी आने पर भी उनका यह पुराना सम्बन्ध नहीं टूटा और समय-समय पर क्रांतिकारी उनसे सलाह लिया करते थे।"

"रणभेरी" के सम्पादन द्वारा पराड़कर जी ने राष्ट्रीय आंदोलन को एक अप्रतिम शक्ति प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। महर्षि अरविन्द घोष, रासबिहारी बोस, शिवराम राजगुरु सदृश क्रांतिकारियों के सानिध्य में श्री पराड़कर जी ने कलम के साथ-साथ तलवार की पूजा की। उनकी मनोभावना जानने के लिए 25 मार्च 1931 को प्रकाशित "आज" के अग्रलेख की निम्नलिखित पंक्तिया प्रस्तुत हैं- "सरदार भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव सोमवार को संध्या समय फाँसी पर लटका दिये गए। साधारणत फाँसी सवेरे दी जाती है।

इस अवसर पर किसी कारण से शाम को दी गई। सारे देश ने दया के लिए प्रार्थना की। लाहौर के कानूनपेशा लोगों ने अन्त तक उन्हें बचाने का यत्न किया, पर सब व्यर्थ हुआ, इस पर अधिक कहना-सुनना व्यर्थ है। हृदय का रक्त मुँह में लाकर इतना अवश्य कहेंगे की यह प्रश्न तीन आदमियों के प्राणों का ही नहीं था, प्रश्न था राष्ट्र की प्रार्थना का, वह प्रार्थना अस्वीकृत हो गयी। भारतीय आकाश में प्रेम का जो सूर्योदय हुआ था, वह फिर से मेघाछन्न हो गया। हम तो इतना ही कहेंगे की ब्रिटिश शासकों का हृदय बदलने का जो प्रमाण हम ढूंढ रहे थे, वह हमें नहीं मिला। अब भी देश में नौकरशाही प्रथा प्रबल है।"

वर्ष 1930 में सरकारी आर्डिनेंस के विरुद्ध "आज" का प्रकाशन बंद हो गया। राष्ट्रीय आंदोलन से सुपरिचित कराने के निमित्त पराड़कर जी ने "आज के समाचार" बुलेटिन निकाला जिसके बंद होने पर "रणभेरी" नाम की भूमिगत पत्रिका निकाली गई। पत्र का लक्ष्य था- "रणभेरी बज उठी बीरवर पहनो केसरिया बाना"

"रणभेरी" का प्रकाशन कर पराड़कर जी ने क्रांतिकारी पत्रकारिता का प्रयोग कर स्वतंत्रता संग्राम को उद्देलित किया। 16 अगस्त 1930 की "रणभेरी" में पराड़कर जी ने लिखा- "रणभेरी उसके (पुलिस के) सर पर बजेगी और तब तक बजती रहेगी जब तक काले कानून रहेंगें और काशी में देशभक्ति रहेगी। डरा-धमका कर लोगों को देशद्रोही बनाने का जमाना गया।" वर्ष 1925 में वृन्दावन में हिंदी साहित्य सम्मलेन हुआ।

इसी अवसर पर हिंदी सम्पादक सम्मलेन का भी आयोजन हुआ। इस अवसर पर संपादकाचार्य पराड़कर जी ने पत्रकारिता के सन्दर्भ में जो अभिमत प्रकट किया वह आज भी उपयोगी और पत्रकारिता-जगत हेतु माननीय है "हमारे समाचारपत्रों की वर्तमान अवस्था यद्यपि संतोषजनक नहीं है पर भविष्य उज्ज्वल है, पर यही बात सम्पादको के भविष्य के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती, इसका कारण मैं आगे चलकर बताऊँगा। पहले पत्रों का प्रचार अधिक न होने के कारणों पर विचार करना आवश्यक है। मेरी अल्पमति के अनुसार इसके मुख्य तीन कारण हैं-(1) पत्रों का समाज के प्रतिबिम्ब न होना (2) धनाभाव और (3) जनता में, विशेषकर हिंदी भाषियों में साक्षरता का अल्प प्रचार। पत्रों का समाज के प्राकृत जीवन से सम्बद्ध ना होने को मैं सबसे बड़ा कारण इसलिए समझता हूँ कि इसके निराकरण का उपाय बहुत-कुछ हमारे ही हाथ में है पर हम उधर ध्यान नहीं देते।

समाचारपत्र, समाज का प्रतिबिम्ब भी होना चाहिए और उसे अपने पाठको के सामने उच्च आदर्श भी रखने चाहिए। समाज कि प्राकृत अवस्था का वर्णन, गुण-दोष विवेचन, सुधार-मार्ग प्रदर्शन और मनोरंजन, यह सब समाचारपत्रों का कर्त्तव्य है। आजकल हमारे अच्छे सम्पादक आदर्श की ओर ही अधिक ध्यान देते हैं, अपने पत्रों को समाज का प्रतिबिम्ब बनाने कि ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। विदेशी और अर्द्ध-विदेशी समाचार समितियाँ जो समाचार देती हैं, वे भी हमारी टीका-टिप्पणी के विषय होते हैं। समाचार संग्रह के हमारे स्वतंत्र साधन नहीं है। जो समाचार उपयुक्त समाचार समितियों से मिलते है, प्राय: वह लड़ाई-झगड़ों के और ऊपरी आंदोलनों के ही होते हैं और प्राय: नौकरशाही रंग में रंग होते है। हम और गहरे जाने का प्रयत्न नहीं करते। हमारे पाठक किन-किन श्रेणियों के हैं, उनका रहन-सहन कैसा है, उनकी जीविका के साधन क्या है, उनको जीवन-संग्राम में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनका आमोद-प्रमोद क्या है, उनकी रूचि कैसी है, वह क्या सोचते है और क्या चाहते हैं इन बातों का हम सम्पादको को बिलकुल पता नहीं रहता।

यदि मेरे किसी आदरणीय भाई को इन बातों का ज्ञान हो भी तो उसे कार्य में परिणित होते देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ है। इन बातों का हम पता लगाया करें। लोगों को वही समाचार दें जो वह चाहते हैं और उनके जीवन संग्राम में सहायक बनने का प्रयत्न करें तो हमारे पत्रों का प्रचार देखते-देखते बढ़ जाएगा। समाचारपत्र पढ़ना लोगों के डेली लाइफ का अंग बन जायेगा। यह अभाव

केवल हिंदी पत्रों में नहीं है, इंडो-इंग्लिश, बंगला, मराठी, गुजरती, उर्दू आदि जिन-जिन भाषाओं के पत्र देखने का मुझे अवसर मिला है, सबमें यही दिखाई देता है।"

"संसार" और पराड़कर जी सन् 1943 से 14 अगस्त, 1947 तक पराड़कर जी 'संसार' के प्रधान सम्पादक थे। "संसार" के अग्रलेखों ने पाठकों में नवीन जागृति पैदा की। स्वतंत्रता, आंदोलन में मर-मिट जाने की भावना भरने में 'संसार' अग्रणी पत्र था- "किसी के कान गढ़ता, चलो दिल्ली, चलो दिल्ली। सुनाई अब यही पड़ता, चलो दिल्ली, चलो दिल्ली।"

ज्वालामुखी के मुख पर दलन, दासता, दोहन और दकियानूसी जर्जर अवस्थाओं के विरुद्ध विद्रोह की ध्वजा उड़ाना तो युग-युग में मानव-जाति की विशेषता रही है। दंड और दमन का समय लड़ चुका। पत्रकार के रूप में पराड़कर जी की दूरदर्शिता को स्पष्ट करने के निमित 25 मई 1944 को "संसार" में प्रकाशित उनकी पंक्तियां दृष्टद्रव्य हैं- "फिर भी हम समझते है की भारत में अरुणोदय होने जा रहा है। इसका कारण यह है की समस्या जब अत्यंत जटिल और असह्य हो जाती है तब उसका निपटारा हो ही जाता है। रोग आप अपनी दवा बन जाता है। हमारा विश्वास है कि रोग से भारत मुक्ति पा जाएगा, भय का स्थान आत्म-विश्वास ग्रहण करेगा-जगत में भारत अपना पद पा जाएगा।"

15 अगस्त 1947 के आज के लेख में पराड़कर जी ने लिखा स्वतंत्र होने के साथ-साथ हमारे कंधों पर जितना भरी उत्तरदायित्व आ गया है उसे हमें न भूलना चाहिए। पत्रकारिता और पराड़कर जी की उक्तियाँ -"अपने पत्र की भाषा और अंग्रेजी दोनों का अच्छा ज्ञाता हुए बिना भारतीय भाषा के पत्रों का उपसम्पादक तो क्या संवाददाता होना भी कठिन है। पत्र बेचने के लाभ से अश्लील समाचारों को महत्त्व देकर तथा दुराचरण मूलक अपराधों का चित्ताकर्षक वर्णन कर हम परमात्मा की दृष्टि में अपराधियों से भी बड़े अपराधी ठहर रहे है, इस बात को कभी भी न भूलना चाहिए।"

वैसे सामान्य तौर पर देखा जाय तो सम्पादक में साहित्य और भाषा ज्ञान के अतिरिक्त भारत के इतिहास का सूक्ष्म और संसार के इतिहास का साधारण ज्ञान तथा समाज शास्त्र, राजनीती शास्त्र और अंतर्राष्ट्रीय विधानों का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है। समाज के जीवन में जिन प्रश्नों पर उचित निर्णय की आवश्यकता होती है और जिन निर्णयों पर समाज का जीवन अन्त में निर्भर रहता

है, उनके बारे में जनता को योग्य जानकारी कराना, उनके सम्बन्ध में जनमत का निर्माण और नेतृत्व करना, उस मत को प्रकट करना उससे अधिक से अधिक लाभ जनता को पहुँचाना एक आदर्श पत्रकार का कर्त्तव्य है।

आजादी के बाद पराड़कर जी ने पत्रकारिता को नए भारत के निर्माण के लिए युवाओं को प्रेरित करने का जरिया बनाया। सटीक व छोटे वाक्यों के द्वारा बढ़ी खूबसूरती से जनता तक अपनी बात पहुँचाने में बाबूरावजी को महारत हासिल थी। अपनी इसी महारत के चलते पराड़कर जी ने "आज", "भारतमित्र" और "'संसार" नामक समाचारपत्रों को एक नई बुलंदियों तक पहुँचाया। वाराणसी में 12 जनवरी 1955 को पराड़कर जी ने इस दुनिया को अलविदा कह दिया। वाराणसी में 12 जनवरी 1955 को हिंदी पत्रकारिता में मील का पत्थर कहे जाने वाले बाबूराव विष्णु पराड़कर जी ने इस दुनिया को अलविदा कह दिया।

पत्रकारिता के प्रेरणा स्रोत

पराड़कर जी का पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण सन् 1906 में हिंदी बंगवासी में सहायक संपादक के रूप में हुआ था किंतु उसमें आत्मसंतोष न होने के कारण उन्होंने महान क्रांतिकारी योगी अरविंद घोष के नेशनल कालेज में हिंदी और मराठी का अध्यापन भी शुरू कर दिया। बंगवासी के प्रबंधक को यह बात जँची नहीं और उसने ऐसा करने से मना किया किंतु बंगवासी के माध्यम से कांग्रेस की खिल्ली उड़ानेवाले और कटु आलोचना करनेवाले प्रबंध संपादक की बात यह उग्र राष्ट्रीय व्यक्तित्त्व भला कैसे सहन कर सकता था? उन्होंने आत्महनन के मूल्य पर नौकरी करना उचित नहीं समझा और नौकरी छोड़ दी द्य सन् 1907 में उन्होंने " हितवार्ता " का संपादक पद सँभाला। यह पत्र उनके अनुकूल था क्योंकि इसमें उन्हें राजनीतिक विषयों पर गंभीर समीक्षात्मक लेख प्रस्तुत करने का मौका मिलता था।

" हितवार्ता" में रहने के दौरान पराड़कर जी ने नेशनल कालेज का अध्यापन कार्य नहीं छोड़ा, बल्कि उसमें उन्होंने हिंदी अध्यापन के लिए पं अंबिका प्रसाद वाजपेयी को भी बुला लिया था, किंतु जब नेशनल कालेज भी गवर्नमेंट के प्रभाव क्षेत्र में आ गया तो अंततः उन्हें कालेज छोड़ना ही पड़ा। पराड़कर जी के जीवनी लेखक लक्ष्मीशंकर व्यास लिखते हैं कि महर्षि अरविंद घोष का नेशनल कालेज एक प्रकार से तत्कालीन क्रांतिकारियों का एक प्रधान केंद्र बन गया था। पराड़कर जी इस कालेज में हिंदी-मराठी का अध्यापन-कार्य

करते थे साथ ही यहाँ उनका क्रांतिदलवालों से भी संपर्क होता था। अध्यापन के समय पराड़कर जी छात्रों को फ्रांस और रूसी क्रांति का इतिहास बताते हुए इस बात पर बल देते थे कि देश के युवकों पर भारतमाता की स्वतंत्रत का भारी उत्तरदायित्व है। हमारा देश परतंत्र है,इसे स्वतंत्र करना चाहिए।

सन् 1910 में हितवार्ता के प्रकाशन के बंद होने के बाद पराड़कर जी ने भारतमित्र में पं अंबिका प्रसाद वाजपेयी के साथ काम करना शुरू कर दिया। इन दोनों तपस्वियों ने मिलकर भारतमित्र के स्तर को बहुत उन्नत किया था। प्रतिदिन यह पत्र 4000 की संख्या में छपता था। दुर्भाग्यवश उन्ही दिनों कोलकाता के तत्कालीन डिप्टी पुलिस सुपरिंटेंडेंट की हत्या हो गई और 1 जुलाई 1916 को क्रांतिकारी दल में कार्य करने के अपराध में उन्हें साढ़े तीन वर्ष का कारावास हो गया द्य किन्तु ,प्रमाण के अभाव में जनता के भावी प्रतिकार की आशंका से मजबूर होकर अंग्रेज सरकार ने 1920 में उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। भारतमित्र के तत्कालीन संपादक पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे ने उनसे भारतमित्र के संपादन हेतु अनुरोध किया किंतु पराड़कर जी ने स्वीकार नहीं किया और काशी चले गए।

काशी में उन दिनों हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए बाबू शिवराम प्रसाद गुप्त ने 'ज्ञानमंडल ' की स्थापना की थी। उन्होंने पराड़कर जी से अपने प्रकाशन से एक दैनिक पत्र का संपादन- भार उठाने के लिये आग्रह किया और उस आग्रह पर पराड़कर जी ने पुनः अपने पत्रकार रूप को ग्रहण किया। इस प्रकार 'काशी' से इनके संपादन में 'आज' निकला और बीच में कई बार 'आज' से संबंध टूटते रहने के बावजूद इनके पत्रकार- जीवन का अधिक समय 'आज' में ही बीता। इनके क्रांतिकारी-काल की उपलब्धियों में से इनके द्वारा 'संसार' का संपादन और 'रणभेरी' का प्रकाशन भी है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी उनकी लेखनी सामाजिक पुनर्जागरण में सार्थक भूमिका निबाहती रही।

सम्मान और पुरस्कार

पराड़कर जी सन् 1925 में वृंदावन साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आयोजित प्रथम संपादक सम्मेलन के सभापति बनाये गये थे। इस अवसर पर उन्होंने हिंदी पत्रकारिता के अतीत और वर्तमान पर ही नहीं , उसके भविष्य की रूपरेखा भी एक युगद्रष्टा की भाँति प्रस्तुत की थी। सन् 1938 में आज हिंदी-

साहित्य सम्मेलन के सत्ताईसवें अधिवेशन के सभापति चुने गए थे। सन् 1953 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने इन्हें हिंदी सेवा के लिये 1501 रु. का 'महात्मा गांधी पुरस्कार' दिया था।

हिंदी की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा

पराड़कर जी के हिन्दी प्रेम के बारे में कृष्णबिहारी मिश्र लिखते हैं कि हिंदी के पुराने पंडितों से इनका संबंध था। इतना ही नहीं , हिंदी के अनेक श्रेष्ठ लेखकों के निर्माण में पराड़कर जी का योग रहा है। हिंदी के सभी पुराने-नए श्रेष्ठ लेखक पराड़कर जी का सम्मान करते थे। पराड़कर जी केवल हिंदी के पत्रकार ही नहीं थे, बल्कि अहिंदीभाषी परिवार में जन्म ले उन्होंने हिंदी को जो समर्थन दिया तथा हिंदी भाषा और साहित्य को अपनी अनवरत साधना द्वारा जो समृद्धि दी,उसके लिए हिंदी संसार पर उनका अशेष ऋण है। चूँकि उनका कई देशी भाषाओं पर अधिकार था इसलिए हिंदी का वे अधिक उपकार कर सके।

हिंदी की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का पक्ष समर्थन करते हुए पराड़कर जी ने लिखा था कि "यह सारे देश की भाषा है। इसमें प्रांतीय अभिमान बिल्कुल नहीं है, जो बात अन्य भाषाओं के संबंध में नहीं कही जा सकती। यही नहीं हिंदी में प्रांतीय अभाव के साथ-साथ इसमें अन्य प्रांतों के संबंध में अवज्ञासूचक कोई शब्द भी नहीं है, यह भी इसकी राष्ट्रीयता का एक प्रमाण है। इसके लेखकों का लक्ष्य हिंद होता है, कोई प्रांत विशेष नहीं। हिंदी राष्ट्र के लिए राष्ट्र के मुँह से बोलती है क्योंकि वह राष्ट्र की भाषा है।"

लोकप्रिय अग्रलेख

चरखे का संदेशा, समस्या और समाधान, महात्मा गाँधी की पुकार और क्रांतिकारियों की फाँसी आदि लेख पराड़कर जी के लोकप्रिय अग्रलेखों में से हैं। 'चरखे का संदेशा' में पराड़कर जी ने चरखा, एकता और अछूतोद्धार का संदेश घर-घर पहुँचाने की अपील की है। उनका विश्वास है कि यदि हम अन्न और वस्त्र के मामले में स्वतंत्र हो जायँ तो कोई संदेह नहीं कि स्वराज्य हम हासिल कर लेंगे। 'महात्मा गांधी की पुकार' में महात्मा गाँधी के मार्मिक भाषणों का उदाहरण देते हुए उन्होंने भारत की जिंदादिली और गांधी जैसे नेता के नेतृत्व को ईश्वर की कृपा का परिचायक बतलाया है। 'क्रांतिकारियों की फाँसी' में जिस शैली में यथार्थ को सहज ढंग से पराड़कर जी ने प्रस्तुत किया है , उसे

पढ़कर कलेजा टूक-टूक हो जाता है। निरंकुश अंग्रेजी साम्राज्य को निर्भीकता से चुनौती देने की क्षमता पराड़कर जी के संपादकीय लेखों में बराबर होती थी।

29 अक्तूबर'1930 से 8 मार्च 1931 तक सरकारी नीति के विरोध में संपादकीय स्थल को खाली रखकर उस पर उनका केवल यह वाक्य होता था-"देश की दरिद्रता, विदेश जाने वाली लक्ष्मी, सिर पर बरसाने वाली लाठियाँ, देशभक्तों से भरनेवाले कारागार- इन सबको देखकर प्रत्येक देशभक्त के हृदय में जो अहिंसामूलक विचार उत्पन्न हों,वही संपादकीय विचार है।"

संपादक और पत्रकारिता : ज्ञान सीमा और धर्म

संपादकों के लिए अक्षंक्षित न्यूनतम ज्ञान सीमा के संदर्भ में पराड़कर जी की मान्यता थी कि एक संपादक के लिए साहित्य, भाषा विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा अंतर्राष्ट्रीय विधानों का सामान्य ज्ञान होना अनिवार्य है। उनके अनुसार किसी भी समाचार-पत्र के मुख्यतः दो धर्म होते हैं-एक तो समाज का चित्र खींचना और दूसरे सदुपदेश देना। इस दूसरे धर्म पर पराड़कर जी ज्यादा बल देते थे। उनकी यह मान्यता थी कि देश की सच्ची सेवा इसी शिक्षा धर्म के द्वारा की जा सकती है।

यही कारण था कि वे अपने पत्रों में हमेशा ऊँचे चरित्रों एवं ऊँचे आदर्शों को स्थान दिया करते थे। आज की सर्वांगतः अपराध पत्रकारिता की कल्पना उन्होंने भविष्यद्रष्टा की भाँति पाँच दशक पूर्व ही कर ली थी और कहा था कि "भ्रातृभाव से मैं आप सब संपादकों से प्रार्थना करता हूँ कि परमेश्वर ने आपको जो बड़ा पद दिया है उसका सदुपयोग कीजिए और समाज को सदा उन्नत करते रहना अपना धर्म समझिए।

पराड़कर जी ने स्वतंत्रता संग्राम के एक उग्र क्रांतिकारी और एक सफल राष्ट्रीय पत्रकार के दायित्व का सफल निर्वहन किया है। आपने हिंदी पत्रकारिता को राष्ट्रीय जागरण का ही माध्यम नहीं बनाया है, वरन् भाषा और साहित्य के उत्थान में भी ऐतिहासिक भूमिका दी है। डा संपूर्णानंद ने इनकी हिंदी सेवा का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि दुःखमय कौटुंबिक जीवन, अच्छिद्र आर्थिक कष्ट, निरंतर राजनीतिक संघर्ष-इन सबके बीच में रहते हुए पराड़कर जी ने हिंदी पत्रकारिता को जो अमूल्य निधि प्रदान की, उससे हिंदी जगत जल्दी उऋण नहीं हो सकता।

गणेश शंकर विद्यार्थी

अपनी बेबाकी और अलग अंदाज से दूसरों के मुंह पर ताला लगाना एक बेहद मुश्किल काम होता है। कलम की ताकत हमेशा से ही तलवार से अधिक रही है और ऐसे कई पत्रकार हैं जिन्होंने अपनी कलम से सत्ता तक की राह बदल दी। गणेश शंकर विद्यार्थी भी ऐसे ही पत्रकार रहे हैं जिन्होंने अपने कलम की ताकत से अंग्रेजी शासन की नीव हिला दी थी।

26 सितंबर 1890 को कानपुर में जन्मे गणेश शंकर विद्यार्थी एक निडर और निष्पक्ष पत्रकार तो थे ही, एक समाज-सेवी, स्वतंत्रता सेनानी और कुशल राजनीतिज्ञ भी थे. गणेश शंकर विद्यार्थी एक ऐसे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे जो कलम और वाणी के साथ-साथ महात्मा गांधी के अहिंसक समर्थकों और क्रांतिकारियों को समान रूप से देश की आजादी में सक्रिय सहयोग प्रदान करते रहे।

गणेश शंकर विद्यार्थी की शिक्षा-दीक्षा मुंगावली (ग्वालियर) में हुई थी। इन्होंने उर्दू-फारसी का अध्ययन किया। वह आर्थिक कठिनाइयों के कारण एंट्रेंस तक ही पढ़ सके, किन्तु उनका स्वतंत्र अध्ययन अनवरत चलता ही रहा। अपनी लगन के बल पर उन्होंने पत्रकारिता के गुणों को खुद में सहेज लिया था। शुरू में गणेश शंकर जी को एक नौकरी भी मिली थी पर अंग्रेज अधिकारियों से ना पटने के कारण उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य करने के कारण उन्हें पांच बार सश्रम कारागार और अर्थदंड अंग्रेजी शासन ने दिया। विद्यार्थी जी के जेल जाने पर 'प्रताप' का संपादन माखनलाल चतुर्वेदी व बालकृष्ण शर्मा नवीन करते थे. उनके समय में श्यामलाल गुप्त पार्षद ने राष्ट्र को एक ऐसा बलिदानी गीत दिया जो देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक छा गया। यह गीत 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा' है। इस गीत की रचना के प्रेरक थे अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी. जालियावाला बाग के बलिदान दिवस 13 अप्रैल 1924 को कानपुर में इस झंडागीत के गाने का शुभारंभ हुआ था।

विद्यार्थी जी की शैली में भावात्मकता, ओज, गाम्भीर्य और निर्भीकता भी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। उनकी भाषा कुछ इस तरह की थी जो हर किसी के मन पर तीर की भांति चुभती थी। गरीबों की हर छोटी से छोटी परेशानी को वह अपनी कलम की ताकत से दर्द की कहानी में बदल देते थे।

गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम दंगे में निस्सहायों को बचाते हुए 25 मार्च, 1931 ई. को हुई। गणेश शंकर जी की मृत्यु देश के लिए एक बहुत बड़ा झटका रही। गणेशशंकर विद्यार्थी एक ऐसे साहित्यकार रहे हैं जिन्होंने देशा में अपनी कलम से सुधार की क्रांति उत्पन्न की।

सम्पादन कार्य

इसके बाद कानपुर में गणेश जी ने करेंसी ऑफिस में नौकरी की, किन्तु यहाँ भी अंग्रेज अधिकारियों से इनकी नहीं पटी। अत: यह नौकरी छोड़कर अध्यापक हो गए। महावीर प्रसाद द्विवेदी इनकी योग्यता पर रीझे हुए थे। उन्होंने विद्यार्थी जी को अपने पास 'सरस्वती' के लिए बुला लिया। विद्यार्थी जी की रुचि राजनीति की ओर पहले से ही थी। यह एक ही वर्ष के बाद 'अभ्युदय' नामक पत्र में चले गये और फिर कुछ दिनों तक वहीं पर रहे। इसके बाद सन 1907 से 1912 तक का इनका जीवन अत्यन्त संकटापन्न रहा। इन्होंने कुछ दिनों तक 'प्रभा' का भी सम्पादन किया था। 1913, अक्टूबर मास में 'प्रताप' (साप्ताहिक) के सम्पादक हुए। इन्होंने अपने पत्र में किसानों की आवाज बुलन्द की।

लोकप्रियता

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर विद्यार्थी जी के विचार बड़े ही निर्भीक होते थे। विद्यार्थी जी ने देशी रियासतों की प्रजा पर किये गये अत्याचारों का भी तीव्र विरोध किया। गणेशशंकर विद्यार्थी कानपुर के लोकप्रिय नेता तथा पत्रकार, शैलीकार एवं निबन्ध लेखक रहे थे। यह अपनी अतुल देश भक्ति और अनुपम आत्मोसर्ग के लिए चिरस्मरणीय रहेंगे। विद्यार्थी जी ने प्रेमचन्द की तरह पहले उर्दू में लिखना प्रारम्भ किया था। उसके बाद हिन्दी में पत्रकारिता के माध्यम से वे आये और आजीवन पत्रकार रहे। उनके अधिकांश निबन्ध त्याग और बलिदान सम्बन्धी विषयों पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त वे एक बहुत अच्छे वक्ता भी थे।

साहित्यिक अभिरुचि

पत्रकारिता के साथ-साथ गणेशशंकर विद्यार्थी की साहित्यिक अभिरुचियाँ भी निखरती जा रही थीं। आपकी रचनायें 'सरस्वती', 'कर्मयोगी', 'स्वराज्य',

'हितवार्ता' में छपती रहीं। आपने 'सरस्वती' में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सहायक के रूप में काम किया था। हिन्दी में 'शेखचिल्ली की कहानियाँ' आपकी देन हैं। 'अभ्युदय' नामक पत्र जो कि इलाहाबाद से निकलता था, से भी विद्यार्थी जी जुड़े। गणेश शंकर विद्यार्थी ने अंततोगत्वा कानपुर लौटकर 'प्रताप' अखबार की शुरूआत की। 'प्रताप' भारत की आजादी की लड़ाई का मुख-पत्र साबित हुआ। कानपुर का साहित्य समाज 'प्रताप' से जुड़ गया। क्रान्तिकारी विचारों व भारत की स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया था-प्रताप। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के विचारों से प्रेरित गणेशशंकर विद्यार्थी 'जंग-ए-आजादी' के एक निष्ठावान सिपाही थे। महात्मा गाँधी उनके नेता और वे क्रान्तिकारियों के सहयोगी थे। सरदार भगत सिंह को 'प्रताप' से विद्यार्थी जी ने ही जोड़ा था। विद्यार्थी जी ने राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा प्रताप में छापी, क्रान्तिकारियों के विचार व लेख प्रताप में निरन्तर छपते रहते।

भाषा-शैली

गणेशशंकर विद्यार्थी की भाषा में अपूर्व शक्ति है। उसमें सरलता और प्रवाहमयता सर्वत्र मिलती है। विद्यार्थी जी की शैली में भावात्मकता, ओज, गाम्भीर्य और निर्भीकता भी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। उसमें आप वक्रता प्रधान शैली ग्रहण कर लेते हैं। जिससे निबन्ध कला का ह्रास भले होता दिखे, किन्तु पाठक के मन पर गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। उनकी भाषा कुछ इस तरह की थी, जो हर किसी के मन पर तीर की भांति चुभती थी। गरीबों की हर छोटी से छोटी परेशानी को वह अपनी कलम की ताकत से दर्द की कहानी में बदल देते थे।

पत्रकारिता के पुरोधा

विद्यार्थी जी का बचपन विदिशा और मुंगावली में बीता। किशोर अवस्था में उन्होंने समाचार पत्रों के प्रति अपनी रुचि को जाहिर कर दिया था। वे उन दिनों प्रकाशित होने वाले भारत मित्र, बंगवासी जैसे अन्य समाचार पत्रों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करते थे। इसका असर यह हुआ कि पठन-पाठन के प्रति उनकी रुचि दिनों दिन बढ़ती गई। उन्होंने अपने समय के विख्यात विचारकों वाल्टेयर, थोरो, इमर्सन, जान स्टुअर्ट मिल, शेख सादी सहित अन्य रचनाकारों की कृतियों का अध्ययन किया। वे लोकमान्य तिलक के राष्ट्रीय दर्शन से बेहद

प्रभावित थे। महात्मा गांधी ने उन दिनों अंग्रेजों के खिलाफ अहिंसात्मक आंदोलन की शुरूआत की थी, जिससे विद्यार्थी जी सहमत नहीं थे, क्योंकि वे स्वभाव से उग्रवादी विचारों के थे। विद्यार्थी जी ने मात्र 16 वर्ष की अल्प आयु में 'हमारी आत्मोसर्गता' नामक एक किताब लिख डाली थी। वर्ष 1911 में भारत के चर्चित समाचार पत्र 'सरस्वती' में उनका पहला लेख 'आत्मोसर्ग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था, जिसका संपादक हिन्दी के उद्‌भूत, विद्धान, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा किया जाता था। वे द्विवेदी के व्यक्तित्त्व एवं विचारों से प्रभावित होकर पत्रकारिता के क्षेत्र में आये। श्री द्विवेदी के सान्निध्य में सरस्वती में काम करते हुए उन्होंने साहित्यिक, सांस्कृतिक सरोकारों के प्रति अपना रुझान बढ़ाया। इसके साथ ही वे महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के पत्र 'अभ्युदय' से भी जुड़ गये। इन समाचार पत्रों से जुड़े और स्वाधीनता के लिए समर्पित पंडित मदन मोहन मालवीय, जो कि राष्ट्रवाद की विचारधारा का जन जन में प्रसार कर सके।

'प्रताप' का प्रकाशन

अपने सहयोगियों एवं वरिष्ठजनों से सहयोग मार्गदर्शन का आश्वासन पाकर अंतत: विद्यार्थी जी ने 9 नवम्बर 1913 से 'प्रताप' नामक समाचार पत्र का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया। इस समाचार पत्र के प्रथम अंक में ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि हम राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन, सामाजिक आर्थिक क्रांति, जातीय गौरव, साहित्यिक सांस्कृतिक विरासत के लिए, अपने हक अधिकार के लिए संघर्ष करेंगे। विद्यार्थी जी ने अपने इस संकल्प को प्रताप में लिखे अग्रलेखों को अभिव्यक्त किया जिसके कारण अंग्रेजों ने उन्हें जेल भेजा, जुर्माना किया और 22 अगस्त 1918 में प्रताप में प्रकाशित नानक सिंह की 'सौदा ए वतन' नामक कविता से नाराज अंग्रेजों ने विद्यार्थी जी पर राजद्रोह का आरोप लगाया व 'प्रताप' का प्रकाशन बंद करवा दिया। आर्थिक संकट से जूझते विद्यार्थी जी ने किसी तरह व्यवस्था जुटाई तो 8 जुलाई 1918 को फिर प्रताप की शुरूआत हो गई। प्रताप के इस अंक में विद्यार्थी जी ने सरकार की दमनपूर्ण नीति की ऐसी जोरदार खिलाफत कर दी कि आम जनता प्रताप को आर्थिक सहयोग देने के लिए मुक्त हस्त से दान करने लगी। जनता के सहयोग से आर्थिक संकट हल हो जाने पर साप्ताहिक प्रताप का प्रकाशन 23 नवम्बर रु. 1990 से दैनिक समाचार पत्र के रूप में किया जाने लगा। लगातार अंग्रेजों के विरोध में लिखने से प्रताप की

पहचान सरकार विरोधी बन गई और तत्कालीन मजिस्टेट मि. स्ट्राइफ ने अपने हुक्मनामें में प्रताप को 'बदनाम पत्र' की संज्ञा देकर जमानत की राशि जप्त कर ली। अंग्रेजों का कोपभाजन बने विद्यार्थी जी को 23 जुलाई 1921, 16 अक्टूबर 1921 में भी जेल की सजा दी गई परन्तु उन्होंने सरकार के विरुद्ध कलम की धार को कम नहीं किया। जेलयात्रा के दौरान उनकी भेंट माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सहित अन्य साहित्यकारों से भी हुई।

बाल गंगाधर तिलक

बाल गंगाधर तिलक एक भारतीय राष्ट्रवादी, शिक्षक, समाज सुधारक, वकील और एक स्वतन्त्रता सेनानी थे। ये भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के पहले लोकप्रिय नेता हुए, ब्रिटिश औपनिवेशिक प्राधिकारी उन्हें 'भारतीय अशान्ति के पिता' कहते थे। उन्हें, 'लोकमान्य' का आदरणीय शीर्षक भी प्राप्त हुआ, जिसका अर्थ हैं लोगों द्वारा स्वीकृत (उनके नायक के रूप में)।

लोकमान्य तिलक जी ब्रिटिश राज के दौरान स्वराज के सबसे पहले और मजबूत अधिवक्ताओं में से एक थे, तथा भारतीय अन्त:करण में एक प्रबल आमूल परिवर्तनवादी थे। उनका मराठी भाषा में दिया गया नारा 'स्वराज्य हा माझा जन्मसिद्ध हक्क आहे आणि तो मी मिळवणारच' (स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूँगा) बहुत प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कई नेताओं से एक करीबी सन्धि बनाई, जिनमें बिपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, अरविन्द घोष और वी. ओ. चिदम्बरम पिल्लै शामिल थे।

समाचार पत्र का प्रकाशन

इसके बाद उन्होंने दो साप्ताहिक समाचार पत्रों, मराठी में केसरी और अंग्रेजी में द मराठा, के माध्यम से लोगों की राजनीतिक चेतना को जगाने का काम शुरू किया। इन समाचार पत्रों के जरिये ब्रिटिश शासन तथा उदार राष्ट्रवादियों की, जो पश्चिमी तर्ज पर सामाजिक सुधारों एवं संवैधानिक तरीके से राजनीतिक सुधारों का पक्ष लेते थे, कटु आलोचना के लिए वह विख्यात हो गए। उनका मानना था कि सामाजिक सुधार में जनशक्ति खर्च करने से वह स्वाधीनता के राजनीतिक संघर्ष में पूरी तरह नहीं लग पाएगी। उन पत्रों ने देसी पत्रकारिता के क्षेत्र में शीघ्र ही अपना विशेष स्थान बना लिया। विष्णु शास्त्री

चिपलूनकर ने इन दोनों समाचारपत्रों के लिए दो मुद्रणालय भी स्थापित किए। छपाई के लिए 'आर्य भूषण' और 'ललित कला' को प्रोत्साहन देने के वास्ते 'चित्रशाला' दी गई। इन गतिविधियों में कुछ समय के लिए पाँचों व्यक्ति पूरी तरह व्यस्त हो गए। उन्होंने इन कार्यों को आगे बढ़ाया। 'न्यू इंग्लिश स्कूल' ने शीघ्र ही स्कूलों में पहला स्थान प्राप्त कर लिया। 'मराठा' और 'केसरी' भी डेक्कन के प्रमुख समाचारपत्र बन गए।

देशप्रेमियों के इस दल को शीघ्र ही अग्निपरीक्षा में होकर गुजरना पड़ा। केसरी और मराठा में प्रकाशित कुछ लेखों में कोल्हापुर के तत्कालीन महाराजा शिवाजी राव के साथ किए गए व्यवहार की कठोर आलोचना की गई थी। राज्य के तत्कालीन प्रशासक 'श्री एम. डब्ल्यू. बर्वे' ने इस पर मराठा और केसरी के संपादक के रूप में क्रमशः तिलक और श्री आगरकर के विरुद्ध मानहानि का मुकदमा चला दिया। कुछ समय बाद इन लोगों की कठिनाइयाँ और बढ़ गईं क्योंकि जब यह मामला विचाराधीन था, तभी 'श्री वी.के. चिपलूनकर' का देहांत हो गया। उसके बाद 'तिलक' और 'आगरकर' को दोषी पाया गया। उन्हें चार-चार महीने की साधारण कैद की सजा सुना दी गई।

लाला जगत नारायण

लाला जगत नारायण भारत के प्रसिद्ध पत्रकार तथा हिन्द समाचार समूह के संस्थापक थे। अस्सी के दशक में जब पूरा पंजाब आतंकी माहौल से सुलग रहा था, उस दौर में भी कलम के सिपाही एवं देश भावना से प्रेरित लाला जी ने अपने बिंदास लेखन से आतंकियों के मंसूबों को उजागर किया और राज्य में शांति कायम करने के भरसक प्रयास किए परन्तु 9 सितम्बर सन् 1981 को इन्हीं आतंकियों ने सच्चे देशभक्त एवं निडर पत्रकार लाला जी की हत्या कर दी।

स्वतंत्रता संग्राम में भाग

लाला जगत नारायन अपनी कानून की पढ़ाई को बीच में छोड़ कर गांधीजी के नेतृत्व वाले असहयोग आंदोलन में सम्मलित हो गये। 1921 से 1942 तक जितने भी आंदोलन हुए जगत नारायन ने उनमें सक्रिय भाग लिया। जगत नारायण को आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने के आरोप में पांच-छह बार अपनी जमानत भी गंवानी पड़ी थी। उस समय के प्रमुख नेताओं डॉक्टर सत्यपाल, डॉक्टर सैफुद्दीन किचलू आदि से उनका निकट संबंध था।

हिन्द समाचार समूह के संस्थापक

देश के आजाद होने के उपरांत सन् 1948 में लाहौर से पलायन कर लाला जगत नारायन ने जालंधर में 'हिन्द समाचार' नामक उर्दू दैनिक अखबार का शुभारम्भ किया, लेकिन तत्काल समय में उर्दू के अखबार को ज्यादा लोकप्रियता नहीं मिल पाई और सन् 1965 में लाला जी ने 'पंजाब केसरी' दैनिक हिन्दी समाचार पत्र की स्थापना कर डाली, जिसे पहले उत्तर भारत के राज्यों तथा बाद में मध्य एवं पूर्व और पश्चिम राज्यों में भी खूब लोकप्रियता मिली। लाला जी आर्य समाजी विचारधारा में विश्वास रखते थे और वे अपने जीवन काल में हमेशा ही आदर्श परिवार एवं आदर्श समाज स्थापना तथा नैतिक कर्त्तव्य एवं योगदान के लिए प्रेरणा स्रोत रहे।

सम्मान

स्वतंत्रता सेनानी तथा 'पंजाब केसरी' समाचार पत्र समूह के संस्थापक लाला जगत नारायण जी की अपने जीवन काल में सच्ची देशभक्ति एवं समाज सेवा हेतु सन् 2013 में भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने उनके सम्मान में डाक टिकट जारी किया।

मृत्यु

अस्सी के दशक में जब पूरा पंजाब आतंकी माहौल से सुलग रहा था, उस दौर में भी कलम के सिपाही एवं देश भावना से प्रेरित लाला जी ने अपने बिंदास लेखन से आतंकियों के मंसूबों को उजागर किया और राज्य में शांति कायम करने के भरसक प्रयास किए, परन्तु 9 सितम्बर सन् 1981 को इन्हीं आतंकियों ने सच्चे देशभक्त एवं निडर पत्रकार लाला जी की हत्या कर दी।

रामहरख सिंह सहगल

रामहरख सिंह सहगल अपने समय के जानेमाने पत्रकार और क्रांतिकारी भावनाओं के व्यक्ति थे। उस समय की अद्वितीय मासिक पत्रिका 'चांद' के वे संस्थापक और संपादक थे। राष्ट्रीय आंदोलन को गति देने के उद्देश्य से चांद का 'फांसी अंक' निकाल कर इस अंक की 10000 प्रतियां छापी गई थीं, जिसे अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया था।

काका कालेलकर

काका कालेलकर भारत के प्रसिद्ध गांधीवादी स्वतंत्रता सेनानी, शिक्षाविद, पत्रकार और लेखक थे। काका कालेलकर देश की मुक्ति के लिए सशस्त्र संघर्ष के पक्षपाती थे। 1915 ई. में गाँधी जी से मिलने के बाद ही इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन गाँधी जी के कार्यों को समर्पित कर दिया। गुजराती भाषा पर भी इनका अच्छा ज्ञान था। 1922 में ये गुजराती पत्र 'नवजीवन' के सम्पादक भी रहे थे।

जीवन-परिचय

काका कालेलकर का जन्म सन् 1885 ई. में महाराष्ट्र के सतारा जिले में हुआ था। ये बड़े प्रतिभासम्पन्न थे। मराठी इनकी मातृभाषा थी, पर इन्होंने संसकृत, अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, और बँगला भाषाओं का भी गम्भीर अध्ययन कर लिया था। जिन राष्ट्रीय नेताओं एवं महापुरुषों ने राष्ट्र भाषा के प्रचार-प्रसार में विशेष उत्सुकता दिखायी, उनकी पंक्ति में काका कालेलकर का भी नाम आता हैं। इन्होंने राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत माना है। महात्मा गाँधी के सम्पर्क से इनका हिन्दी-प्रेम ओर भी जागृत हुआ। दक्षिण भारत, विशेषकर गुजरात में इन्होंने हिन्दी का प्रचार विशेष रूप से किया। प्राचीन भारतीय संसकृति, नीति, इतिहास, भूगोल आदि के साथि ही इन्होंने युगीन समस्याओं पर भी अपनी सशक्त लेखनी चलायी। इन्होंने शान्ति निकेतन में अध्यापक, साबरमती आश्रम में प्रधानाध्यापक और बड़ौदा में राष्ट्रीय शाला के आचार्य के पद पर भी कार्य किये। गाँधी जी की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में निर्मित 'गाँधी संग्रहालय' के प्रथम संचालक यही थे।

स्वतंत्रता सेनानी होने के कारण अनेक बार जेल भी गये। संविधान सभा के सदस्य भी ये रहे। सन् 1952 से 1957 ई. तक राज्यसभा के सदस्य तथा अनेक आयोगों के अध्यक्ष रहे। भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' राष्ट्र भाषा प्रचार समिति ने 'गाँधी पुरस्कार' से कालेलकर जी को सम्मानित किया है। ये रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं पुरुषोत्तमदास टण्डन के भी सम्पर्क में रहे। इनका निधन 21 अगस्त 1981 ई. को हो गया।

साहित्यिक परिचय

काका कालेलकर मराठीभाषी होते हुए भी हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के प्रति जो रुचि प्रदर्शित की, वह हिन्दी-भाषियों के लिए अनुकरणीय है। इनका

हिन्दी-साहित्य निबन्ध, जीवनी, संस्मरण, यात्रावृत्तांत आदि गद्य-विधाओं के रूप में उपलब्ध होता है। इनहोंने हिन्दी एवं गुजराती में तो अनेक रचनाओं का सृजन किया ही, साथि ही हिन्दी भाषा में अपनी कई गुजराती रचनाओं का अनुवाद भी किया। इनकी रचनाओं पर अनेक राष्ट्रीय नेताओं एवं साहित्यकारों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

तत्कालीन समस्याओं पर भी इन्होंने कई सशक्त रचनाओं का सृजन किया। कालेलकर जी की रचनाओं में भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों की झलक दिखायी देती है। व्यक्ति के जीवन के अनतर्तम तक इनकी पैठ थी, इसलिए जब ये किसी के जीवन की विवेचना करते थरे तो रचना में उसका व्यक्तित्व उभर आता था।

कुशल संवाददाता

महाशय राजपाल ने स्वयं एक पुस्तक की भूमिका में यह लिखा है कि 'वे बहुत तीव्रगति से लिखते थे।' उस युग में भारतीय भाषाओं में टंकण मशीनें व शीघ्रलिपि का प्रचलन अभी नहीं हुआ था। अतः सुलेख व शीघ्र लिखने वाले लेखकों को कार्यालय में प्राथमिकता दी जाती थी। पुराने आर्य-पत्रों को उलटने-पलटने से आश्चर्यजनक तथ्य हमारे सामने आता है। आर्य समाज बच्छोवाली लाहौर का 29वाँ वार्षिकोत्सव था। महाशय जी 'सद्धर्म प्रचारक' के संवाददाता के रूप में इसमें सम्मिलित हुए। इन्होंने इस उत्सव के समय व्याख्यानों-प्रवचनों की आदि की विस्तृत रिपोर्ट तैयार की। अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों सहित यह वृत्तान्त 'सद्धर्म प्रचारक' को प्रकाशनार्थ दिया था। राजपाल जी का कार्यक्षेत्र पंजाब रहा। उनकी व्यक्तिगत स्थिति ऐसी थी कि वह दूर-दूर नहीं जा सकते थे, परंतु उनका कार्य ऐसा था कि उनका नाम देशव्यापी हो गया था। देश की सीमाओं को भी लांघकर विदेशों में जहाँ-जहाँ भी आर्यसमाजी हैं, वहाँ-वहाँ आर्य साहित्य के कारण महाशय राजपाल जी का व्यक्तित्त्व व्यापक हो गया।